उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-117
मानवाधिकार

खंड–1 मानवाधिकार एवं कर्त्तव्य : मौलिक तत्त्व

इकाई–1 मानव अधिकार का अर्थ एवं प्रकृति 3–14

इकाई–2 मौलिक तत्व (सहअस्तित्व, समूह, राज्य, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, भ्रातत्व) 15–34

इकाई–3 अधिकार और कर्त्तव्य के बीच संतुलन की आवश्यकता, स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व 35–45

खंड–2 मानवाधिकारः दार्शनिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

इकाई–1 मानव अधिकार का इतिहास 49–58

इकाई–2 मानव अधिकार का सिद्धान्त 59–69

इकाई–3 मानव अधिकार आंदोलन 70–74

खण्ड–3 अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास

इकाई–1 1948 का सार्वभौमिक घोषणापत्र 76–83

इकाई–2 अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदायें, नागरिक और राजनीतिक अधिकार 1966 84–91

इकाई–3 अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थायें 92–100

खण्ड–4 भारत में मानव अधिकार और कर्त्तव्य

इकाई–1 विकास : स्वतंत्रता आन्दोलन, संविधान निर्माण 102–116

इकाई–2 भारतीय संविधान 117–125

इकाई–3 मौलिक कर्त्तव्य व अधिकार 126–132

खण्ड–5 मानवाधिकारों का संरक्षण

इकाई 1 राष्ट्रीय स्तर पर (सर्वोच्च न्यायालय, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग) 135-154

इकाई 2 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग 155-180

इकाई–3 प्रान्तीय स्तर पर (राज्य महिला आयोग एवं लोकायुक्त की भूमिका) 181-191

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रोफेसर सत्यकाम — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 संतोषा कुमार — निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 अनुराधा अग्रवाल — आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 राजपाल बुदानिया — आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. आनन्दा नन्द त्रिपाठी — सह आचार्य समाज विज्ञान विद्याशखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. त्रिविक्रम तिवारी — सहायक निदेशक/सह आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव — सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो0 बी.एल. शाह — आचार्य, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (खण्ड–1)
डॉ० अंशुमन मिश्र — सह–आचार्य, विधि विभाग, इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज (खण्ड–2)
डॉ0 एम.पी. तिवारी — (से0नि0) राजनीति विज्ञान विभाग, ए.डी.सी., प्रयागराज (खण्ड–3, इकाई 2)
डॉ० साधना श्रीवास्तव — असि. प्रोफेसर, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (खण्ड–3, इकाई 1 और 3)
डॉ० सतीश चन्द्र जैसल — असि. प्रोफेसर मानविकी विद्याशाखा उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (खण्ड–4, इकाई 2 और 3 खण्ड–5 इकाई 2)
डॉ० कंचन — असि. प्रोफेसर, हेमवती नन्दन बहुगुणा राजकीय महिला महाविद्यालय, नैनी, प्रयागराज (खण्ड–5 इकाई 1 और 3)

सम्पादक

डॉ0 ए.के. वर्मा — सेवानिवृत्त प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, भमुआ, फतेहपुर
डॉ. आनन्दानन्द त्रिपाठी — सह आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव — सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

2023 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2023

ISBN-978-81-973595-5-2

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविगालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट :पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।

प्रकाशन –उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

प्रकाशक –कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ०प्र० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2024

मुद्रक – चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा० लि० 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड प्रयागराज

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई–1 मानव अधिकार का अर्थ एवं प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 मानवाधिकारों का उद्‌भव के बारे में जान सकेगें

1.3 संयुक्त राष्ट्र संघ

1.4 संयुक्त राष्ट एवं मानवाधिकार तथा मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा

1.5 संयुक्त राष्ट्र का चार्टर

1.6 संयुक्त राष्ट्र की महासभा एवं मानवाधिकार

1.7 सुरक्षा परिषद् एवं मानवाधिकार

1.8 संयुक्त राष्ट्र सचिवालय एवं मानवाधिकार

1.9 आर्थिक और सामाजिक परिषद्

1.10 अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय एवं मानवाधिकार

1.11 मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा

1.12 अन्तर्राष्ट्रीय अनुबंध

1.13 विशिष्ट मानव अधिकारों के साधन

1.14 समकालीन मानव अधिकारों का अर्थ

1.15 मानवाधिकारों की प्रकृति

1.16 सारांश

3.17 बोध प्रश्न

1.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.18 कुछ उपयोगी पुस्तके

1.0 उद्‌देश्य

उद्‌देश्य इस प्रकार है :

- मानवाधिकारों के उद्‌भव के साथ–साथ संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार के सम्बन्ध में भूमिका समझ सकेंगे;
- मानवाधिकारों का अर्थ; तथा
- मानवाधिकार की प्रकृति के पहलू जान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

नागरिकों के अधिकारों और कर्त्तव्यों से सम्बन्धित विचार उतने ही पुराने हैं जितनी कि राज्य की अवधारणा, परन्तु मानव अधिकारों की अवधारणा ने पश्चिम की महान् क्रांतियों की उदारवादी लोकतांत्रिक परम्पराओं के उदय के साथ मूर्त रूप ग्रहण करना शुरू किया। समसामयिक मानव अधिकारों के "आदर्शों" और "मानकों" का इतिहास जानने के लिए ब्रिटेन के मैग्नाकार्टा (1215), अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा (1776), व्यक्ति व नागरिकों के अधिकारों की फ्रेंच घोषणा (1789) और बोल्शेविक क्रांति (1917) को जानना आवश्यक है। मैग्नाकार्टा ने मूलभूत

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

राजनीतिक और संवैधानिक अधिकार प्रदान किये, जिन्होंने इंग्लैण्ड में संवैधानिक सरकार के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। अमेरिकी और फ्रेंच घोषणाओं ने मौलिक नागरिक और राजनीतिक अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं जैसे– स्वतंत्रता, समानता (कानून के समक्ष) और भ्रातृत्व; विचार, मानव गरिमा और लोकतांत्रिक सरकार की स्वतंत्रता को स्वर प्रदान किया। उसके बाद 1917 की महान् अक्टूबर क्रांति हुई। इस क्रांति के साथ आर्थिक सुरक्षा और सामाजिक न्याय की मांग समाजवादी आंदोलनों का प्रमुख अंग बन गई। साम्यवादी आन्दोलन ने सामाजिक–आर्थिक अधिकारों पर जोर दिया। इस घटना ने यूरोप के गैर–साम्यवादी राज्यों में और अन्यत्र मानव अधिकारों के विचार को प्रभावित किया।

यद्यपि मानव अधिकारों के लिए संघर्ष 18वीं और 19वीं शताब्दी का प्रमुख लक्षण था, किन्तु यह अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप 20वीं सदी में ही प्राप्त कर सका। राष्ट्रों के मध्य बढ़ती परस्पर निर्भरता, पश्चिमी साम्राज्यवाद के उदय और दोनों विश्व युद्धों ने इस प्रक्रिया को और सुदृढ़ बनाया। नाजीवाद जैसी शक्तियों के उदय और साम्यवाद के प्रसार जैसी अन्य बातों के निरन्तर भय ने पश्चिमी उदारवादी लोकतांत्रिक राज्यों को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त "बिल ऑफ राइट्स" की घोषणा करने के लिए प्रेरित किया।

1.2 मानवाधिकारों का उद्भव

समाज की प्रारम्भिक अवस्था में मानव के अधिकारों की विचारधारा की धारणा का अभाव था। तद्समय का व्यक्ति केवल आत्म–सुरक्षा की धारणा को पहचानता था एवं स्वच्छंद रूप से यत्र–तत्र भ्रमण करता था। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की गरिमा को नहीं पहचानता था। परिवार, समुदाय और समाज जैसी सुव्यस्थित पद्धति नहीं थी। व्यक्तियों में सामाजिक सम्बन्धों का अभाव था, सम्पत्ति पर "बल" का आधिपत्य था। इस अन्तर्भूत सत्य को मान्यता नहीं थी कि प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा है, महत्ता है, अस्मिता और वर्चस्व है। इस प्रकार के अस्थिरता के वातावरण में व्यक्तियों के असुरक्षित जीवन–यापन करने से अनेक कष्टों का जन्म हुआ। फलतः व्यक्ति एक–दूसरे व्यक्ति के संसर्ग में आने के लिए बाध्य हुआ और व्यक्तियों के समूह का प्रादुर्भाव मानवाधिकारों को मान्यता दिलवाने के लिए हुआ। व्यक्ति से मानव बनने के उपरान्त संगठित समुदाय में समुदाय को संचालित करने के लिए 'सत्ता' का प्रादुर्भाव हुआ। सत्ता के अस्तित्व में आते ही समाज में रहने वाले व्यक्तियों ने सत्ताधारियों से अधिकारों की मांग प्रारम्भ की। सत्ताधारी पक्ष की राजसत्ता की लालसा ने अधिकारों की लड़ाई को जन्म दिया। यह संघर्ष चिरकाल तक क्रमशः विभिन्न समाजों में चलता रहा और आज भी विभिन्न रूपों में प्रभावी है।

मानव के अधिकारों के प्रतिबिम्ब को सर्वप्रथम हम्मूराबी की विधि संहिता (2130–2008 ई.पू.) में देखा जा सकता है। इस संहिता में न्याय प्रशासन, विवाह और परिवार के अधिकारों का उल्लेख मिलता है। सम्बन्धित अधिकारों की मान्यता से यह सिद्ध होता है कि मानव के रूप में विकास के प्रथम स्तर में वैवाहिक सम्बन्धों को नियमित करना, परिवार का सृजन करना तथा दैहिक एवं सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए अधिकारों को मान्यता दी गई। ये अधिकार समाज की प्रारम्भिक अवस्था में उससे पूर्व की पूर्व सामाजिक अवस्था के व्यक्ति को मानव के रूप में परिणत करने के उस समय के सर्वांगीण विकास के अधिकार थे। उस समय मानव सभ्यता सीमित थी, इसलिए मानवाधिकार भी सभ्यता के अनुरूप ही थे।

यूनानी सभ्यता में मानव के अधिकारों को प्राकृतिक अथवा नैसर्गिक अधिकारों के रूप में आंकलित किया गया है। उन्होंने प्रत्येक मानव प्राणी के लिए अधिकारों को उसके अन्तर्जगत के जन्मजात प्राकृतिक अधिकार माना है। इनमें से मुख्य अधिकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विधि के समक्ष समता और सभी का समान आदर आदि थे। इनको उन्होंने आयसोजोरिया, आयरोबोमिया और आयसोटिमिया नामों से सम्बोधित किया।

रोमन दर्शन में भी मानवाधिकारों को प्राकृतिक अधिकारों के रूप में मान्यता दी गई जिनहें शुभ, नैतिक, न्यायपूर्ण, युक्तिसंगत, सार्वभौम, अपरिवर्तनीय और शाश्वत प्राकृतिक सिद्धांतों पर आधारित माना गया है। सिसरो ने कहा है कि प्राकृतिक विधि सदैव समान है। इसके किसी भी भाग को परिवर्तित करना पाप है। इसलिए इसके सम्पूर्ण भाग को निरसित करना असम्भव है। उन्होंने कहा सभी राष्ट्रों के लिए सभी कालों में प्राकृतिक विधि ही वैध है। रोमन दर्शन प्राकृतिक विधि के रूप में मानवीय विधिक अधिकारों को सदैव आवश्यक और अनिवार्य मानता है।

निष्कर्षतः यह कहना समीचीन होगा कि मानवाधिकारों का उद्भव व्यक्ति के अस्तित्व में आने के साथ ही प्रारम्भ हुआ है लेकिन इसका स्वरूप सभ्यता के साथ–साथ परिवर्तित होता गया है। परिवर्तन की प्रक्रिया के

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

कारण इसके सम्बोधन में भी परिवर्तन आता गया है, इसलिए प्रारम्भ का आत्मरक्षा का अधिकार, समाज के अस्तित्व में आने के समय प्राकृतिक अधिकार के रूप में सामाजिक समझौते का अधिकार बना और इसे ही राज सत्ताओं के जन्म के पश्चात् राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और विधिक अधिकार कहा गया।

1.3 संयुक्त राष्ट्र संघ

संयुक्त राष्ट्र संघ स्थापना के समय से ही मानव अधिकारों की प्रगति के लिए निरन्तर चिन्तित रहा है। इसके संस्थापक सदस्य राज्यों ने अनुभव कर लिया था कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा, अन्य बातों के अलावा, मानव अधिकारों को मान्यता देने व लागू करने पर निर्भर करती है। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता और खुशहाली की रक्षा करने के अलावा कुछ और नहीं था। संस्थापक सदस्यों को इस बात का स्पष्ट ज्ञान था कि मानव अधिकारों की अवहेलना करके वे किसी न्यायपूर्ण विश्व व्यवस्था की स्थापना नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने इसके संवर्द्धन और संरक्षण के विश्वास पर एक नये संगठन की आधारशिला रखने के लिए सहमति व्यक्त की।

सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु किसी प्रभावशाली संगठन के लिए बड़ी शक्तियों में कोई सहमति नहीं हो पाई, क्योंकि इनमें से प्रत्येक राज्य में मानव अधिकारों की अपनी–अपनी समस्यायें थीं। अमेरिका में वैध रूप से मान्य जातीय भेदभाव, फ्रांस और ब्रिटेन के औपनिवेशिक साम्राज्य तथा सोवियत रूस की समस्या इसी प्रकार की समस्याएं थी। फिर भी चार्टर ने समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों के आदर्शों को वैध अवधारणात्मक आधारशिला प्रदान की।

चार्टर का प्रस्तावना घोषणा करता है कि– "संयुक्त राष्ट्र के लोग मौलिक अधिकारों, व्यक्ति की गरिमा और योग्यता, स्त्री और पुरूषों तथा छोटे और बड़े राष्ट्रों के समान अधिकारों में दृढ़ विश्वास बनाये रखने का संकल्प करते हैं।" सभी के लिए जाति, लिंग, भाषा या धर्म के भेदभाव के बिना मानव अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं का संवर्द्धन करना और उन्हें प्रोत्साहन देना संयुक्त राष्ट्र के चार आधार उद्देश्यों में से एक है (अनुच्छेद– एक) अनुच्छेद 55 और 56 में सभी सदस्यों ने इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निजी और संयुक्त रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ सहयोग करने का वायदा किया। चार्टर में मानव अधिकारों और स्वतंत्रताओं को यथार्थ रूप प्रदान करने का उत्तरदायित्व महासभा, आर्थिक और सामाजिक परिषद् और प्रन्यास परिषद्/न्यासधारिता परिषद् को प्रदान किया गया। संक्षेप में, चार्टर को मानव अधिकारों और स्वतंत्रता का 'मैग्नाकार्टा' माना जाता है।

साधारणतया, विद्वान विधिवेत्ता, शिक्षाविद् तथा सदस्य राष्ट्र–राज्य इन घोषणाओं की प्रायः यह कहकर उपेक्षा करते हैं कि इन्हें कानूनी शक्ति प्राप्त नहीं है। इनकी शिकायत है कि चार्टर इस प्रकार अधिकारों की परिभाषा करने और उन्हें सूचीबद्ध करने तथा उनके क्रियान्वयन हेतु साधन उपलब्ध कराने में असफल हो चुका है। किन्तु यह स्थिति केवल मानव अधिकारों के प्रावधानों की ही नहीं है। कई और अन्य ऐसे दायित्व हैं, जिनके प्रवर्तन के साधन चार्टर में उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु इनकी वैधता असंदिग्ध है।

संयुक्त राज्य के 32वें राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी0 रूजवेल्ट (1905–1945) ने सर्वप्रथम 'मानव अधिकार' पद–बंध को गढ़ा। प्रख्यात मानवाधिकार लेखक मेहर रूजवेल्ट को नहीं, प्रस्तुत जिम्मी कार्टर को सर्वप्रथम 'मानव अधिकार' पदबंध का प्रयोक्ता बताते हैं। द्वितीय विश्व युद्धोत्तर वर्षों में यदि किसी को 'मानव–अधिकार' पदबंध को लोकप्रिय बनाने का श्रेय जाता है, तो वह राष्ट्रपति रूजवेल्ट की पत्नी एलिनोर रूजवेल्ट थी। लेडी रूजवेल्ट ने ही दो वर्षों के अथक परिश्रम के पश्चात् घोषणापत्र को अन्तिम रूप दिया, जिसके पश्चात् आयोग ने मानवाधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीय घोषणापत्र जारी किया।

1.4 संयुक्त राष्ट एवं मानवाधिकार तथा मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा

संयुक्त राष्ट्र का मूल उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति स्थापित करने के लिए कारगर उपायों के लिए कार्यवाही करना है। इस कार्यवाही ने दो विश्व युद्धों की विभीषिका की पुनरावृत्ति को रोका है। विश्व शान्ति की कार्यवाही का प्रारम्भ संयुक्त राष्ट्र के चार्टर 1945 के प्रभावी होने के पश्चात् माना जाता है। विश्व युद्धों के प्रभाव के कारण विश्व स्तर पर मानवीय जीवन व गरिमा के अक्षुण्ण सिद्धांतों का ह्रास हुआ, जिसके कारण मानव को मानव से विभाजित करने वाली विश्व वैमनस्यता ने जन्म लिया। इस प्रकार की वैमनस्यता को समाप्त करने के लिए विश्व समुदाय के सभी व्यक्तियों को समता के विधिक मापदण्ड के आधार पर समान अधिकार उपलब्ध

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

कराना तथा सभी व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास करना संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख कार्य है।

संयुक्त राष्ट्र का एक महत्तर दायित्व मानवाधिकारों की संरक्षा करना है। इस दायित्व के निर्वाह के उपबंध का उल्लेख संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में किया गया है। संयुक्त राष्ट्र की महासभा, सुरक्षा परिषद, सचिवालय, आर्थिक और सामाजिक परिषद् और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय इस उपादान अर्थात् मानवाधिकारों की संरक्षा के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करते हैं। संयुक्त राष्ट्र ने विश्व स्तर पर मानवाधिकारों को संरक्षित रखने के लिए मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को पारित किया है। जिसे मानवाधिकारों की रक्षा के लिए "मैग्नाकार्टा" की संज्ञा दी जाती है। मानवाधिकारों के संदर्भ में इसका क्रमबद्ध उल्लेख निम्नानुसार किया जा सकता है।

1.5 संयुक्त राष्ट्र का चार्टर

चार्टर की उद्देशिका से परिलक्षित होता है कि संयुक्त राष्ट्र की स्थापना युद्ध के कारण मानवीय कष्टों के निवारण के लिए हुई है। इसलिए युद्ध विधि के रूप में मानवीय विधि को सृजित करना संयुक्त राष्ट्र का एक श्रेष्ठ एवं सहज दायित्व है। उद्देशिका में मानव की मूल स्वतंत्रता, अधिकार, प्रतिष्ठा, लिंग की समता के अधिकार तथा राष्ट्रों के मध्य समता में विश्वास अभिव्यक्त किया गया है। जीवन में आत्मिक विकास की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करने तथा सामाजिक उन्नति को प्रश्रय देना संयुक्त राष्ट्र का लक्ष्य माना गया है। चार्टर के अनुच्छेद 1 में आत्मनिर्णय के सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार अनुच्छेद 1(3) के अन्तर्गत प्रत्येक राष्ट्र को स्वतंत्रता रूपी मूल मानवाधिकार प्राप्त करने तथा उसे बनाए रखने का अधिकार प्राप्त है।

सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय समस्याओं के निवारण, मानवीय अधिकारों और मानवीय स्वतंत्रताओं को लिंग, भाषा, धर्म और जाति के भेदभाव के बिना प्रोत्साहन देना संयुक्त राष्ट्र का दूसरा लक्ष्य है। अनुच्छेद 2 में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र तथा उसके सदस्य अनुच्छेद 1 में उल्लिखित उपबंधों के पालन के लिए सभी सदस्य राष्ट्रों में समानता और उनकी संप्रभुता को बनाए रखेंगे। सभी सदस्य राष्ट्र एक दूसरे के प्रति सद्भावना से कार्य करेंगे। सभी सदस्य राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की क्षेत्रीय अखण्डता और राजनैतिक स्वतंत्रता को चुनौती नहीं देंगे। संयुक्त राष्ट्र स्वयं भी किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में संयुक्त राष्ट्र पर बाध्यता आरोपित की गई है कि वह मानवाधिकारों को लागू करेगा और उनके अनुपालन करने को मान्यता देगा। प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है कि वह मानवाधिकारों को लागू करने में संयुक्त राष्ट्र का सहयोग करेगा। जाति, लिंग, भाषा या धर्म में विभेद के बिना संयुक्त राष्ट्र मूल स्वतंत्रताओं और मानवाधिकारों को प्रोत्साहन देगा। चार्टर के अनुच्छेद 68 के अन्तर्गत मानवाधिकारों के लिए आयोग का गठन किया जा सकता है तथा अनुच्छेद 62(2) के अनुसार मानवाधिकारों को प्रोत्साहन देने के लिए संस्तुति की जा सकती है। चार्टर के इन उपबंधों का उपयोग करते हुए संयुक्त राष्ट्र के द्वारा मानवाधिकार आयोग के गठन के लिए आर्थिक और सामाजिक परिषद् को संस्तुति की गई। इस संस्तुति के आधार पर मानवाधिकार आयोग की स्थापना हुई। इस आयोग द्वारा सन् 1946 में अपनी रिपोर्ट आर्थिक और सामाजिक परिषद् को प्रस्तुत की गई।

आयोग की संस्तुतियों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र के उपबंधों के अनुरूप मानवाधिकारों के विश्व स्तर पर दृढ़तापूर्वक लागू करने के लिए देशीय न्यायालयों ने भी श्लांघनीय कार्य किया। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के उपबंधों के अंतर्गत अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने 27 जनवरी, 1947 से 10 फरवरी, 1947 तक के अपने प्रथम सत्र में अधिकार पत्र (बिल ऑफ राइट्स) तैयार करने के लिए समिति बनाई गई।

समिति के द्वारा तैयार मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के मसौदे को 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा "मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा" के रूप में स्वीकार किया गया। इसके अतिरिक्त महासभा द्वारा यह भी महसूस किया गया कि सिविल और राजनैतिक अधिकारों तथा सामाजिक और आर्थिक अधिकारों से सम्बन्धित दस्तावेज भी तैयार किए जाएं। इनको तैयार करने के लिए महासभा ने आयोग को निर्देश दिया। तदनुसार आयोग ने वर्ष 1954 में दोनों दस्तावेज तैयार किए। इसकी संस्तुति वर्ष 1955 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा की गई। 16 दिसम्बर, 1966 को दोनों दस्तावेजों की प्रसंविदा को महासभा द्वारा अंगीकार किया गया और 23 मार्च, 1976 से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, सिविल और राजनैतिक अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा तथा सामाजिक और आर्थिक अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा पारित की गई। संप्रति, संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के आधार पर बाल अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा, महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव का समापन सम्बन्धी अभिसमय, वृद्ध व्यक्तियों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा, अल्पसंख्यक वर्ग की संरक्षा

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

की घोषणा, शरणार्थियों की संरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, विकास का अधिकार आदि पारित किए गए हैं।

1.6 संयुक्त राष्ट्र महासभा एवं मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र के छह अंगों में से एक महत्वपूर्ण अंग महासभा का प्रमुख दायित्व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों के संवर्धन एवं सुरक्षा का है। महासभा के कार्यों का उल्लेख संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में किया गया है। चार्टर के अनुच्छेद 13(ख) में महासभा के कार्यों का उल्लेख प्रत्यक्षतः मानवाधिकारों की संरक्षा के रूप में किया गया है। इसमें कहा गया है, महासभा का कर्त्तव्य होगा कि "वह आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा स्वास्थ्य के क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाने तथा बिना जाति, लिंग, भाषा या धर्म के भेदभाव के मानवीय अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं की प्राप्ति के लिए अध्ययन करवाएगी तथा सिफारिशें देगी।" अनुच्छेद 10 में महासभा के अंतर्निहित कार्यों का उल्लेख किया गया है। इसमें कहा गया है कि "महासभा संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अन्तर्गत किसी भी प्रश्न अथवा किसी भी अंग के कार्य तथा शक्तियों से सम्बन्धित प्रश्न पर विचार कर सकती है," लेकिन महासभा का यह कार्य अनुच्छेद 12(1) एवं (2) के अनुसार सुरक्षा परिषद् के अन्तर्गत विचारणीय कार्य के अधीन है, अर्थात् यदि किसी कार्य पर सुरक्षा परिषद् में विचार चल रहा है तो उस कार्य में महासभा हस्तक्षेप नहीं कर सकती हैं। इसके लिए सुरक्षा परिषद् द्वारा प्रार्थना की जानी चाहिए, तथापि अनुच्छेद 10 में "किसी भी प्रश्न" अथवा "किसी भी तथ्य, एवं कार्य तथा शक्तियों" शब्दों के प्रयोग से यह प्रतिबिम्बित होता है कि मानवाधिकार के उल्लंघन की दशा में महासभा को प्रत्येक स्थिति और मामले में कार्य करने की शक्ति प्राप्त है।

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 22 के अन्तर्गत महासभा अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिए उप–समितियां गठित करती है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत अनेक प्रकार के मानवाधिकारों के अभिसमय तथा प्रसंविदाएं तैयार करने के लिए महासभा ने कई उप–समितियों का गठन किया। इस समितियों में से निम्नलिखित ने मानवाधिकार के सम्बन्ध में श्लाघनीय कार्य किया है–

1. संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने 21 नवम्बर 1947 को प्रस्ताव पारित करके अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग की स्थापना की। अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा शरणार्थियों के उच्चायोग की प्रस्थिति, शरणार्थियों की प्रस्थिति सम्बन्धी अभिसमय एवं प्रोटोकॉल, जाति संहार अपराध निवारण एवं दण्ड अभिसमय और राज्य विहीन व्यक्तियों की प्रस्थिति सम्बन्धी अभिसमय आदि दस्तावेजों को तैयार किया गया।

2. अनेक उपनिवेशों को स्वतंत्र कराने के लिए महासभा द्वारा समितियों का गठन किया गया। उदाहरणार्थ 27 नवम्बर 1961 को गठित समिति का उद्देश्य सभी परतंत्र देशों को स्वतंत्र कराकर वहां की जनता को राजनैतिक अधिकार प्रदान करके सम्बन्धित देश में जनता की लोकप्रिय सरकार की स्थापना करना था।

3. मानवाधिकारों का उल्लंघन की दशा में संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने समय–समय पर समितियों का गठन किया है। महासभा का यह कार्य आज भी निरन्तर रूप से गतिशील है। जैसे 19 दिसम्बर, 1968 एवं 8 दिसम्बर, 1989 को इजराइल में मानवाधिकार के उल्लंघन के अन्वेषण के लिए महासभा ने विशेष समिति का गठन किया था।

1.7 सुरक्षा परिषद् एवं मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 7 के अनुसार सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख अंग है। सुरक्षा परिषद् अपने प्राथमिक एवं प्रमुख कार्य के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा परिषद् को संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 24, 25 एवं 26 में अनेक अधिकार दिए गए हैं। इन अधिकारों का उपयोग करते हुए सुरक्षा परिषद् राष्ट्रों के मध्य युद्ध नहीं होने के उपायों को कारगर रूप में प्रवर्तित करने और युद्ध हो जाने की स्थिति में राष्ट्रों के मध्य के विवाद का शांतिपूर्ण निपटारा करने का कार्य करती है। युद्ध की विभीषिका से राष्ट्रों को बचाए रखने के विधिक कार्य से राष्ट्र के निवासियों के बौद्धिक जीवन की संरक्षा होती है। विश्व के राष्ट्रों में शांति स्थापित करने के प्राथमिक कार्य के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 34 के अनुसार सुरक्षा परिषद् को यह अधिकार है कि वह किसी भी ऐसे विवाद का अन्वेषण कर सकती है जिसके जारी रहने से अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने में खतरा हो। इस प्रकार के खतरे की सूचना संयुक्त राष्ट्र का कोई भी सदस्य सुरक्षा परिषद् की जानकारी में ला सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसा कोई भी राष्ट्र जो संयुक्त राष्ट्र का सदस्य

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

तो नहीं है लेकिन विवादास्पद मामले में एक पक्षकार है, वह भी संयुक्त राष्ट्र की जानकारी में ऐसे विवाद को ला सकता है। राष्ट्रों के मध्य अशांति एवं असुरक्षा का सर्वप्रथम प्रभाव मानवाधिकारों पर पड़ता है। इसलिए सुरक्षा परिषद् को जैसे ही शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने में खतरे की सूचना मिलती है वह शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए जो भी कार्यवाही करती है उसमें मानवाधिकारों की संरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाता है, क्योंकि सुरक्षा परिषद् का प्रत्येक कार्य संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य एवं सिद्धान्तों के अनुरूप होता है और संयुक्त राष्ट्र के अनेक उद्देश्यों में से एक उद्देश्य अनुच्छेद 1(3) के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान में अन्तर्राष्ट्रीय सह–अस्तित्व बनाए रखना या मानवीय प्रकृति और मानवाधिकारों के सम्मान को प्रोत्साहन देना तथा जाति, लिंग, भाषा या धर्म के विभेद के बिना मूलभूत स्वतंत्रताओं को सुनिश्चित करना है।

अनुच्छेद 34 के अनुसार सुरक्षा परिषद् मात्र अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का ही अन्वेषण नहीं करती है अपितु ऐसी स्थिति का भी अन्वेषण करती है जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को खतरा होता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति एवं असुरक्षा उत्पन्न होने से पूर्व ही सुरखा परिषद् मानव संरक्षा और उनके अधिकारों को संरक्षित करने के लिए सतत् प्रयास करती है। इस प्रकार के प्रयास का मुख्य उद्देश्य सुरक्षा परिषद् को अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना है। अनुच्छेद 76(ग) की व्यवस्था के अनुसार सुरक्षा परिषद् के अनेक उद्देश्यों में से एक उद्देश्य मानवाधिकारों को प्रोत्साहन देना तथा उनका सम्मान करना है। परिणामतः सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाए रखने में मानवाधिकारों की सजग प्रहरी के रूप में कार्य करती है।

1.8 संयुक्त राष्ट्र सचिवालय एवं मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र का सचिवालय प्रशासनिक कार्यों को संचालित करने का कार्य करता है। इसका मुख्य प्रशासनिक अधिकारी महासचिव होता है। इसकी नियुक्ति सुरक्षा परिषद् की संस्तुति पर महासभा द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त सचिवालय में अन्य कर्मचारी भी होते हैं। सचिवालय, महासभा, सुरक्षा परिषद्, आर्थिक और सामाजिक परिषद् तथा न्यासधारिता परिषद् सम्बन्धी सभी कार्य महासचिव के द्वारा संपादित होते हैं। इसलिए महासचिव द्वारा मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के लिए भी संयुक्त राष्ट्र के सचिवालय की ओर से कार्य किया जाता है।

अनुच्छेद 99 के अनुसार महासचिव अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा सम्बन्धी विषय पर महासभा का ध्यान आकर्षित कर सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति की विषय–वस्तु मानवाधिकारों का उल्लंघन भी हो सकती है इसलिए महासचिव ऐसे विषयों को, जो मानवाधिकारों का उल्लंघन करने वाले होते हैं, सुरक्षा परिषद् की जानकारी में ला सकता है। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र के सचिवालय के तृतीय महासचिव यू थांट ने कहा है कि इस अनुच्छेद का उपयोग महासचिव के द्वारा बहुत कम किया गया है। यू थांट ने इस अनुच्छेद को संशोधित करके अनुच्छेद 99(क) समाहित करने की दलील देते हुए मानवाधिकारों के विषय में महासचिव को स्पष्ट शक्ति देने के सम्बन्ध में कहा था कि यदि विश्व में मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है तो महासचिव को यह अधिकार होना चाहिए कि वह इस प्रकार के उल्लंघन के समाधान के लिए सुरक्षा परिषद् का ध्यान आकर्षित कर सके। इससे मानवीय कार्य के माध्यम से मानव जीवन की संरक्षा संभव हो पाएगी। सचिवालय के कई विभाग मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए उत्तम कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ राजनीतिक विभाग, सुरक्षा परिषद् सम्बन्धी मामले तथा संयुक्त राष्ट्र को मानवाधिकार के प्रश्नों पर सहायता पहुंचाने वाले अन्य सभी विभाग सचिवालय के अधीन रहते हुए कार्य कर रहे हैं।

1.9 संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद्

आर्थिक और सामाजिक परिषद् भी संयुक्त राष्ट्र का एक अंग है। इसमें 54 सदस्य होते हैं। संयुक्त राष्ट्र चार्टर में ही इनके कार्यों का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 62(2) के अनुसार आर्थिक और सामाजिक परिषद् मानवाधिकारों तथा मूलभूत स्वतंत्रताओं का सम्मान करने तथा उन्हें लागू करने के लिए संस्तुति करती है। इसके लिए वह अभिसमयों का आलेख महासभा को प्रेषित कर सकती है और सम्मेलन बुला सकती है। चार्टर के अनुच्छेद 68 के अनुसार आर्थिक और सामाजिक परिषद् को मानवाधिकारों पर आयोग स्थापित करने की शक्ति प्राप्त है।

आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के प्रस्ताव पर 16 फरवरी, 1946 को मानवाधिकार के सम्बन्ध में एक आयोग स्थापित किया गया था। इस आयोग को 21 जून 1946 को परिषद् के प्रस्ताव द्वारा पूर्ण अस्तित्व प्रदान किया गया। 25 मई, 1990 के प्रस्ताव द्वारा संयुक्त राष्ट्र के 53 सदस्य देशों को सदस्यता प्रदत्त की गई है। मानवाधिकार आयोग को मानाधिकारों को संरक्षित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार पत्र, अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा या

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

सिविल स्वतंत्रता सम्बन्धी प्रसंविदा, महिलाओं की प्रस्थिति सम्बन्धी प्रसंविदा, सूचना तथा समान मामलों की स्वतंत्रता, अल्पसंख्यक वर्ग की संरक्षा, जाति, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद का प्रतिषेध, मानवाधिकारों के कई अन्य मामलों में जिन्हें इनमें सम्मिलित नहीं किया गया है, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् को मानवाधिकार सम्बन्धी मामलों में सहायता करने का प्रस्ताव, संस्तुतियां और रिपोर्ट भेजने की शक्ति प्राप्त है। आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् द्वारा गठित मानवाधिकार आयोग की प्रस्थिति कार्यकारी आयोग के रूप में होती है।

मानवाधिकार आयोग को ऐसे गैर–सरकारी समूह को अथवा व्यक्ति विशेष को अपने कार्य में सहायता के लिए सम्मिलित करने की शक्ति प्राप्त है जो सम्बन्धित कार्य में कुशल तथा निपुण हो। ऐसे व्यक्तियों को सम्मिलित करने के संदर्भ की सूचना आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् को देना आवश्यक नहीं है, लेकिन इसके लिए संयुक्त राष्ट्र के अध्यक्ष एवं महासचिव की अनुमति आवश्यक है। आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् द्वारा गठित आयोग को यह शक्ति प्राप्त है कि वह मानवाधिकारों की संरक्षा के लिए उप–आयोगों का गठन कर सकें। आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के अस्तित्व में आने के पश्चात् परिषद् ने मानवाधिकारों की संरक्षा के लिए मुख्यतः निम्नलिखित उप–आयोगों की स्थापना की है–

1. महिलाओं की प्रस्थिति सम्बन्धी आयोग– इसमें सदस्यों की संख्या भौगोलिक स्थिति के आधार पर सुनिश्चित की गई है। जिसमें अफ्रीका, एशिया, लेटिन अमेरिका, पश्चिमी यूरोप एवं पूर्वी यूरोप के साथ ही अन्य देशों को प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इसमें कुल सदस्यों की संख्या 45 है। यह आयोग महिलाओं के विकास, सहयोग, महिलाओं की प्रस्थिति सम्बन्धी गोपनीय तथा अन्य प्रकार की बातों को शिकायतकर्त्ता से प्राप्त करके तथा उस पर विचार करके और महिलाओं की विभेदकारी नीति के विरूद्ध किए गए कार्य आदि पर विचार करके अपनी रिपोर्ट सम्बन्धित शिकायतकर्त्ता देशों की सरकारों को भेजकर तथा उस पर मिलकर विचार कर अपनी रिपोर्ट आर्थिक और सामाजिक परिषद् को प्रेषित करता है।
2. मानवाधिकार आयोग के सहायक अंग के रूप में विभेद प्रतिषेध एवं अल्पसंख्यक वर्ग संरक्षा आयोग की स्थापना मानवाधिकार आयोग के द्वारा सन् 1947 में की गई। इस संस्था में अफ्रीका, एशिया, लेटिन अमेरिका, पूर्वी यूरोप, पश्चिमी यूरोप तथा अन्य देशों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व भौगोलिक स्थिति के आधार पर होता है। आधे सदस्यों और उनके वैकल्पिक सदस्यों का निर्वाचन प्रत्येक दो वर्ष में होता है। विशेषज्ञों का निर्वाचन प्रत्येक चार वर्षों में होता है उन्हें पुनः निर्वाचित भी किया जाता है। इस उप–आयोग का कार्य मानवाधिकार आयोग को मानवाधिकारों के उल्लंघन किए जाने पर सूचना देना है। विभेद, प्रतिषेध एवं अल्संख्यक– वर्ग संरक्षा उप–आयोग आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् या मानवाधिकार आयोग द्वारा प्रदत्त कार्य जनसंख्या एवं दास प्रथा के निवारण के लिए कार्यकारी समूह के रूप में कार्य करता है।

1.10 अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय एवं मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 7 (1) में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का उल्लेख किया गया है। इसके गठन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि का सृजन किया गया है। इस संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार महासभा और सुरक्षा परिषद् द्वारा चयनित 15 न्यायाधीश अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में होते हैं। अनुच्छेद 13 (1) के अनुसार इनका कार्यकाल 9 वर्ष का होता है।

मानवाधिकारों के संदर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय पर अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों, सभ्य देशों के द्वारा मान्यता प्राप्त सिद्धान्तों और प्रथाओं को लागू करने का दायित्व है। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में पक्षकार राज्य होते हैं, तथापि मानवाधिकारों की सामूहिक उत्पीड़नात्मक आवाज राज्य के माध्यम से न्यायालय में उठाई जा सकती है। इस आवाज को किसी प्रसंविदा और अभिसमय के निर्वचन या लागू किए जाने के विवाद को राज्य पक्षकार पारस्परिक सहमति नहीं होने की स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में उठा सकते हैं। मानवाधिकारों की संख्या के अभिसमयों में उपबंधित उपबंधों में निर्वचन तथा लागू किए जाने के विवाद को सर्वप्रथम समझौते के आधार पर तय करने का प्रयास किया जाता है। इसके पश्चात् विवाचक पंचाट के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यदि कोई पक्षकार इस पंचाट से संतुष्ट नहीं होता है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सम्बन्धित मामले को प्रस्तुत कर सकता है। इसी तरह का उपबन्ध 'शरणार्थियों की प्रस्थिति से सम्बन्धित अभिसमय, 1951 के अनुच्छेद 30 में भी उल्लिखित है अर्थात् यदि अभिसमय में निर्वचन और लागू करने से सम्बन्धित विवाद अन्यथा तय नहीं होता है तो किसी भी पक्षकार की प्रार्थना पर इस विवाद को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को प्रेषित किया जा सकता है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

'सभी प्रकार के जातीय विभेद समापन सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय, 1965 के अनुच्छेद 22 में भी यह उपबन्ध किया गया है कि अभिसमय के निर्वचन एवं लागू किये जाने के विवाद को समझौते या अभिसमय में उल्लिखित अभिव्यक्त प्रक्रिया के अनुसार तय नहीं हो पाता है तो, विवादित पक्षकारों के किसी अन्य तरीके से मामले के विनिश्चय के लिए सहमत नहीं हो पाने की स्थिति में किसी एक पक्षकार की प्रार्थना पर इस विवाद को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को प्रेषित किया जा सकता है। इसी तरह के उपबंध कई अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों में हैं। अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों के निर्वचन एवं लागू किए जाने के विवाद का विनिश्चय अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय मानवाधिकारों को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से अभिनिर्धारित करता है।

1.11 मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा

मानव अधिकारों के आदर्शों की परिभाषा करने व उनकी व्याख्या करने का कार्य मानव अधिकारों के आयोग को दिया गया था, जो 16 फरवरी, 1946 को अस्तित्व में आया। इसने "अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय बिल" का एक प्रारूप बनाया, जिसमें ये दस्तावेज थेः एक घोषणा, एक अनुबंध, और क्रियान्वयन के तरीके। इसे बाद में स्वीकृति के लिए आम सभा को भेज दिया गया। 10 दितम्बर, 1948 को आम सभा ने एक प्रस्ताव में अधिकारों के बिल के प्रथम भाग को मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के रूप में घोषित किया तभी से पूरे विश्व में 10 दितम्बर, मानव अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है। घोषणा को सभी व्यक्तियों व राष्ट्रों (गैर सदस्य राष्ट्र भी) के लिए "एक सामान्य मानक" के रूप में स्वीकृत किया गया तथा इसे आम सभा ने सर्वसम्मति से पारित कर दिया। इसमें लगभग सभी प्रमुख और मौलिक नागरिक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों, जिन्हें चार्टर में परिभाषित नहीं किया गया था, को भी सूचीबद्ध किया गया। यद्यपि यह बाध्यकारी दस्तावेज नहीं है, किन्तु अब तक इसने एक नैतिक और कानूनी दर्जा प्राप्त कर लिया है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून में भी इसे परम्परागत कानून के रूप में मान्यता प्राप्त है। यह एक रोचक बात है कि घोषणा की प्रस्तावना में यह लिखा गया है "राज्य या सरकार नहीं, बल्कि व्यक्ति ही विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति का आधार है।" ऐतिहासिक दृष्टि से यह चौंकाने वाला प्रस्ताव है।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को समूची मानव जाति का मैग्नाकार्टा कहा जा सकता है। उभरती हुई विश्व व्यवस्था पर इसका गहरा प्रभाव है, क्योंकि इसने न केवल अफ्रीका–एशिया के उदीयमान राष्ट्रों की कई आन्तरिक कानूनी व्यवस्थाओं को अपने संवैधानिक कानून में अधिकार पत्र शामिल करने के लिए प्रेरित किया है बल्कि मानव अधिकारों की तीन क्षेत्रीय व्यवस्थाओं को भी प्रेरित किया है– मानव अधिकारों का यूरोपीय अनुबंध, मानव अधिकारों का अंतः अमेरिकी अनुबन्ध और मानव अधिकारों का अफ्रीकी अनुबन्ध। इनका अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णयों में भी दृष्टान्त दिया जाता है।

1.12 अन्तर्राष्ट्रीय अनुबंध

घोषणा की स्वीकृति के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों ने अधिकारों के अंतराष्ट्रीय बिल के शेष भाग अर्थात मानव अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय अनुबंध की ओर ध्यान दिया। इस बिल के हिस्से के रूप में 1966 में आम सभा ने दो पृथक कानूनी दस्तावेजों को स्वीकृत किया। (1) नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध (आईसी.सी.पीआर.) और इसका स्वैच्छिक प्रोटोकॉल, तथा (2) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीय अनुबंध (आई.सी.ई.एस.सी.आर.)। आई.सी.सीपी.आर. ने पश्चिमी उदारवादी समाजों और संस्कृतियों में सामान्य रूप से मान्य परम्परागत नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को अंगीकार किया गया, जबकि आई.सी. ई.एस.सी.आर. ने सामाजिक और आर्थिक प्रकृति के अधिकारों को शामिल करके समाजवादी और तृतीय विश्व के देशों की आकांक्षाओं को पूर्ण किया। ये दोनों अनुबंध भी एक दूसरे से दृष्टिकोण में काफी भिन्न थे। आई.सी.ई. एस.सी.आर के प्रावधानों को कानूनी दायित्वों के रूप में तुरन्त लागू होना था, जबकि आई.सी.ई.एस.सी.आर. के प्रावधान धीरे–धीरे वृहत् शिक्षण, आयोजन और प्रगति के द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते थे।

सार्वभौम घोषणा प्रारूप केवल 18 माह में पूरा कर लिया गया था, जबकि अनुबंधों और स्वैच्छिक प्रोटोकॉल को तैयार करने में 18 वर्ष का समय लगा। अन्य बातों के अलावा इतना समय लगने के कारण ये हो सकते हैं– प्रथम, मानव जाति द्वारा तैयार की गई मानव अधिकारों की संधियों में ये अनुबंध सबसे अधिक विस्तृत थे। द्वितीय, इन अनुबंधों की रचना करते समय संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्य संख्या बढ़ रही थी, अतः व्यक्तिगत अधिकारों की बात करना निरर्थक था और सभी राष्ट्रों के हितों का सामंजस्य और समायोजन करना संयुक्त राष्ट्र की

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

संस्थाओं के लिए भी दुष्कर हो गया था। अंतिम, संयुक्त राष्ट्र की संस्थाएं (विशेष रूप से आम सभा) संकटजन्य परिस्थितियों में शांति स्थापित करने व उसे बनाये रखने और शांति स्थापना के क्रियाकलापों में अत्यधिक व्यस्त रही।

यद्यपि यह अनुबंध मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा पर आधारित है, किन्तु इनमें संरक्षित अधिकार एक समान नहीं हैं। दोनों अनुबंधों द्वारा नियंत्रित अधिकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार, जो सार्वभौम घोषणा में समाविष्ट नहीं हैं, वे हैं– व्यक्तियों के आत्मनिर्णय का अधिकार, जिसमें उनकी प्राकृतिक संपत्ति और संसाधनों का स्वतंत्रतापूर्वक निपटारा करना भी शामिल है। इसके अलावा आई.सी.सी.पी.आर. के अधिकारों की सूची काफी विस्तृत है (अनु. 6 से 27 तक)। इसी प्रकार आई.सी.ई.एस.सी.आर. उनके प्रावधान की स्वीकृति के लगभग एक दशक बाद 1976 से लागू हुए। केवल ये ही दो ऐसी मानव अधिकार संधियां थीं, जिनको क्रियात्मक रूप प्रदान करने के लिए न्यूनतम समर्थन प्राप्त करने में इतना अधिक समय लगा है।

1 मार्च, 1987 तक आई.सी.सी.पी.आर. की 87 राज्यों ने तथा आई.सी.ई.एस.सी.आर. की 92 राज्यों ने पुष्टि कर दी थी। स्वैच्छिक प्रोटोकॉल को 43 राज्यों द्वारा स्वीकृति प्राप्त है। भारत सरकार ने मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता शासन के दौरान 10 अप्रैल, 1977 को दोनों अनुबंधों की पुष्टि की। यह दु:खद है कि भारत सरकार ने अभी तक स्वैच्छिक प्रोटोकॉल की सदस्यता प्राप्त नहीं की है।

1.13 विशिष्ट मानव अधिकारों के साधन

मानव अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय बिल का प्रारूप बनाने के अलावा संयुक्त राष्ट्र संघ ने अब तक जातीय भेदभाव, दासता, रंगभेद, स्त्रियों के प्रति भेदभाव, यातना देना आदि शामिल हैं, के बारे में अनुबन्ध पारित किये हैं।

नवम्बर, 1989 में संयुत राष्ट्र संघ ने बच्चों के अधिकारों का एक और अनुबंध स्वीकार किया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के संरक्षण में मानव अधिकारों का विषय अन्तर्राष्ट्रीय और सार्वभौम चिन्ता का विषय हो सकता है। यहां तक कि अब व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय विधि का लक्ष्य नहीं रहा है (जैसा परम्परागत रूप से माना जाता है।) बल्कि उसका विषय बन चुका है।

1.14 समकालीन मानव अधिकारों का अर्थ

वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों का प्रमुख लक्षण यह है कि यह भेदभाव पर आधारित नहीं है। किसी भी मूल धर्म, जाति, रंग या लिंग का व्यक्ति स्वयं को मानव समाज का सदस्य मानने का अधिकार रखता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इन अधिकारों को उनके ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को सभी राष्ट्रों द्वारा उनके ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मतभेदों और वैचारिक विभिन्नताओं के बावजूद भी सार्वभौम रूप से स्वीकार किया गया है। ये अधिकार इतने व्यापक हैं (किंतु सर्वांगपूर्ण नहीं) कि मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष का इसमें समावेश है। इसके अलावा, इन अधिकारों की व्याख्या किसी दार्शनिक या विधि शास्त्री अथवा किसी एक राष्ट्र द्वारा या उनके किसी समूह द्वारा नहीं की गई है, बल्कि मानव जाति की प्रतिनिधि एक वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय परामर्शकारी संस्था अर्थात् संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गई है।

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा में मानव के मूलभूत अधिकारों को मानवीय प्रतिबिम्ब के रूप में उद्घोषित किया गया है। इस उद्घोषणा को सामान्य शब्दों में इस प्रकार उद्धत किया जा सकता है: "मानवाधिकार सभी सदस्यों की जन्मजात गरिमा और समान अधिकार असंक्रमणशील विश्व में शान्ति, न्याय और स्वतंत्रता की बुनियाद है।" मानवाधिकारों को सम्मान नहीं देने तथा अवमानना के परिणामस्वरूप मानव प्राणी की आत्मा पर आघात करने वाले कार्य हुए हैं। आने वाले काल में विश्व में सामान्य लोगों की सर्वोच्च धारा वाक् स्वतंत्रता, विश्वास, भय से विमुक्ति की स्वतंत्रता और इच्छाएं मानव को प्राप्त होंगी। पुरूष को कुशासन और अत्याचार के विरूद्ध विद्रोह न करना पड़े इसके लिए यह आवश्यक है कि मानवाधिकारों की संरक्षा विधि के शासन के द्वारा की जानी चाहिए। राष्ट्रों के मध्य मित्रता के सम्बन्धों को प्रोत्साहन देना आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में लोगों ने मूलभूत मानवाधिकारों गरिमा और मानव की योग्यता तथा पुरूष एवं महिला के समान अधिकार तथा सामाजिक प्रोन्नति को प्रोत्साहन देने और व्यापक स्वतंत्रता के अन्तर्गत उच्च दैहिक मानकों पर विश्वास अभिव्यक्त किया है। संयुक्त राष्ट्र के साथ मूल स्वतंत्रताओं और मानवाधिकार के पालन के लिए तथा सार्वभौम सम्मान के प्रोत्साहन में सहयोग के लिए सम्मिलित किया है। इस प्रकार सम्मिलित होने में सम्पूर्ण अधिकारों और स्वतंत्रताओं

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

के प्रति सामान्य समझदारी अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की उद्देशिका में मानव की गरिमा और समानता को न्याय एवं विश्व शान्ति के लिए मूलभूत स्तम्भ माना गया है। विश्व में चिर स्थायी शान्ति के लिए इनका सम्मान आवश्यक है। व्यक्ति को वाक् स्वतंत्रता, विश्वासपूर्ण समाज एवं निर्भय जीवन व्यतीत करने के लक्ष्य को उद्देशिका में परिलक्षित किया गया है। इन असंक्रमणशील अधिकारों को संरक्षित किए जाने का दायित्व समस्त राष्ट्रों का है। यदि समस्त राष्ट्र इन दायित्वों का अनुपालन करते हैं तो यह माना जाएगा कि ऐसे राष्ट्रों में विधि का शासन प्रभावी है। विधि के शासन के अनुपालन द्वारा इन मानवाधिकारों को अपने राष्ट्रों में अनुपालित एवं सम्मानित किया जाना संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों की सामूहिक सफलता होगी। उद्देशिका के अंत में इनकी घोषणा को सभी लोगों और राष्ट्रों के लिए इनको प्राप्त करने के समान मापदंड माना गया है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति और समाज के प्रत्येक अंग की इस घोषणा को निरन्तर ध्यान में रखकर इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के लिए प्रोन्नति युक्त साधनों के द्वारा, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इनकी सार्वभौम प्राप्ति और कारगर मान्यता तथा अनुपालन हेतु सदस्य राज्य स्वयं तथा उनके क्षेत्राधिकार के लोग शिक्षा एवं प्रशिक्षण का जटिल उद्यम करेंगे।

1.15 मानवाधिकारों की प्रकृति

मानवाधिकारों का प्रश्न सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों हैं। जहां सिद्धान्त रूप में यह दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र एवं इतिहास से सम्बन्धित रहा है, वहीं व्यवहारिक धरातल में मानवाधिकारों का प्रश्न जन–जन के जीवन की आशा–आकांक्षाओं से भी जुड़ा है। आज सामान्य जनजीवन से जुड़े होने के कारण यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निरन्तर महत्वपूर्ण मुद्दा एवं प्रश्न बनता जा रहा है, जिनकी अपनी विशिष्ट अर्थ–व्याप्ति एवं विशिष्ट अर्थ–संदर्भ है। मानवाधिकारों में वे अधिकार समाविष्ट हैं जिनके उपयोग से प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के मूल्य एवं महत्व को महसूस कर सके। इसमें मानव का प्रकृति से, मानव का मानव से तथा मानव का समाज से पारस्परिक सम्बन्ध सभी कुछ सम्मिलित है। ऐसी स्थिति में मानवाधिकारों की अपनी कुछ विशिष्ट पहचान है, जिसे संक्षेप में 'संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था एवं मानवाधिकार' शीर्षक संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट में निम्न विशेषताओं के रूप में रखा गया है।

(1) मानवाधिकार अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के द्वारा प्रत्याभूत हैं।

(2) ये वैधानिक रूप से संरक्षित हैं।

(3) इन पर मानव गरिमा पर अधिक बल दिया गया है।

(4) ये राज्य एवं राज्य–कर्त्ताओं पर कुछ निश्चित कर्त्तव्य अधिरोपित करते हैं।

(5) इनको छीना या कम नहीं किया जा सकता।

(6) ये स्वतंत्र एवं अन्तर्सम्बन्धित हैं।

(7) ये सार्वभौम हैं।

सामान्यतः प्रथम, मानवाधिकार स्वयंसिद्ध जन्मजात अधिकार है। वस्तुतः मानवाधिकार "प्राकृतिक अधिकार" हैं और इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति के जन्म के साथ ही ये अधिकार महत्वपूर्ण हो जाते हैं। इसलिए ये उसके लिए मूलभूत भी हैं। मानवाधिकार कानून की वर्तमान विकासमान अवस्था में यह आवश्यक नहीं कि इनको प्रत्येक राज्य या किसी कानून द्वारा प्रत्याभूत किया जाए। ये अधिकार मानव को मानव होने के नाते मानव जाति में जन्म लेने के साथ ही स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं।

द्वितीय, मानवाधिकार 'सार्वभौम' है जिसका तात्पर्य यह है कि ये जन्म, वंश, मूल, लिंग, धर्म प्रास्थिति एवं जन्म–स्थान का विभेद किए बगैर सभी को समान रूप से प्राप्त हैं। आधुनिक समय में सिद्धान्ततः इनका जन्म संयुक्त राष्ट्र चार्टर के साथ हुआ है किन्तु मानवाधिकारों का विकास मानव इतिहास के विकास के साथ–साथ इस चिन्ता के साथ हुआ है कि विश्व के सभी मनुष्यों का विकास हो।

तृतीय अधिकार 'अहरणीय' हैं तथा इनको कभी भी कम नहीं किया जा सकता क्योंकि समाज में रहने वाले मानव के विकास हेतु ये अधिकार अत्यन्त आवश्यक हैं। ये ऐसे अधिकार है, जिनको राज्य भी छीन या कम

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

नहीं कर सकता। ये अधिकार मानव गरिमा के सम्मान को संरक्षित रखते हुए समाज में रहने वाले सभी मानवों के सम्मान व सुरक्षा को आश्वस्त करते हैं।

चतुर्थतः मानवाधिकार 'अनुलंघनीय' है क्योंकि ये मानव के जन्मजात अधिकार हैं और सार्वभौम हैं। यह राज्य का कर्त्तव्य है कि वह मानवाधिकारों की सुरक्षा करें। राज्य न तो इन अधिकारों को किसी सीमा तक कम कर सकता है और न इनका उल्लंघन कर सकता है। वर्तमान मानवाधिकारों की विश्व–व्यवस्था में किसी राष्ट्र–राज्य द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामले को गंभीरता से लिया जाता है। जैसे पाकिस्तान से मलाया मुसुफजई का मामला। पाकिस्तान, कश्मीर मुद्दे को संगत रूप में ही सही, मानवाधिकारों के आधार पर संयुक्त राष्ट्र महासभा में उठाता रहा है।

अन्ततः, मानवाधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त है। यद्यपि इन अधिकारों का विकास अनत काल से शनैः–शनैः हो रहा था। किन्तु जैसे–जैसे समाज आगे बढ़ा, सभ्य राष्ट्रों द्वारा मध्यकाल से ही इन अधिकारों को संहिताबद्ध किया जाना प्रारम्भ कर दिया गया यद्यपि इस कार्य में गति द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ही आई जब अन्तर्राष्ट्रीय मानकों को देखते हुए इनका संहिताकरण किया जाना प्रारम्भ हुआ। इस दिशा में 1948 का मानवाधिकारों का सार्वभौम घोषणा पत्र प्रथम व्यवस्थित प्रयास था, जिसका अनुगमन हीन क्षेत्रीय अनुबंधों–मानवाधिकारों का यूरोपीय अनुबंध (ECHR-1950), मानवाधिकारों का अमेरिकी अनुबन्ध (1969) तथा मानवाधिकारों एवं जन अधिकारों का अफ्रीकी अधिकारपत्र (1981) द्वारा किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इस दिशा में 1950 के पश्चात् मानवाधिकारों के संहिता करने के अनेक प्रयास किये गये हैं। यद्यपि देशकालगत परिस्थितियों एवं वैज्ञानिक, तकनीकी व सामाजिक विकास के पश्चात् आए परिवर्तनों से मानवाधिकारों की अवधारणा भी संशोधित–परिमार्जित होती रही है, तब भी मानवाधिकारों के मूलभूत अनुबंध एवं घोषणापत्र मानवाधिकारों के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय मानकों को ध्यान में रखकर ही जारी किए गए हैं।

1.16 सारांश

मानवाधिकारों के उद्‌भव का इतिहास सौहार्द, समभाव, सहयोग और समता के मापदण्डों पर आधारित माना जाता है। यद्यपि "मानवाधिकार" शब्द को आधुनिक देन माना जाता है, तथापि मानवाधिकार का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी कि मानव सभ्यता। बीसवीं शताब्दी के नवीन "मानवाधिकार" शब्द को पूर्व में प्रचलित नैसर्गिक अधिकार या व्यक्ति के अधिकारों से लिया गया है। इस प्रकार मानवाधिकार प्राचीन समय में भी प्रभावी थे भले ही उनको दूसरे नाम से जाना जाता था। भारत में वैदिक काल में भी अधिकारों की रक्षा के उपबंध विद्यमान थे। भारत में मानवाधिकारों के दर्शन को भूतकाल से पृथक नहीं किया जा सकता है। इसलिए यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि मानवाध्किाारों का इतिहास न तो पूर्ण रूप से पाश्चातय सभ्यता की देन है और न ही आधुनिक व्यवस्था की ही देन है। सत्य यह है कि जो कुछ आज मानवाधिकार के सम्बन्ध में पाश्चात्य सभ्यता ने खोजा है, वह प्राचीन भारतीय इतिहास की जड़ों में भी विद्यमान था।

1.17 बोध प्रश्न

1. मानवाधिकार के संरक्षण में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका को बतायें।
2. संयुक्त राष्ट्र चार्टर क्या है?
3. मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा क्या है?
4. समकालीन मानवाधिकार का अर्थ बतायें।
5. मानवाधिकारों की प्रकृति से क्या समझते हैं?

1.18 बोध के उत्तर

1. देखें भाग 1.3
2. देखें भाग 1.5
3. देखें भाग 1.4
4. देखें भाग 1.14

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

5. देखें भाग 1.15

1.19 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Kashyap, Subhash C., Human Right and Parliament, Delhi : Metropolitan Book Co., 1978.
2. Bennett, A. Leroy, International Organizations : Principles and Issues, Fourth Edition, New Jersey : Prentice Hall International Editions, 1988.
3. Guha Roy, Jayatilak, Human Rights for the Twenty first Century, New Delhi : IIPA, 2004.
4. Kamenka, Eugene and Tary, A.E.S. (eds.), Human Rights, London : Edward Arnold, 1978.

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई–2 मौलिक तत्व (सहअस्तित्व, समूह, राज्य, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, भ्रातत्व)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 उदारवादी विचारधारा
2.3 विधि के शासन की विशेषताएं
2.4 मानवाधिकारों का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य
2.5 मानवाधिकारों की गांधीवादी परिप्रेक्ष्य
2.6 दलित अवधारणा
2.7 मानवाधिकार का नारीवादी दृष्टिकोण
2.8 सारांश
2.9 बोध प्रश्न
2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

उद्देश्य इस प्रकार है :

- मौलिक तत्व की समझ हेतु पाश्चात्य व भारतीय अवधारणायें समझ सकेंगे;
- साथ ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में दलित अवधारणा; तथा
- मानवाधिकार का नारीवादी दृष्टिकोण समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

अधिकारों के सम्बन्ध में समय–समय पर पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों द्वारा अलग–अलग विचार प्रस्तुत किये जाते रहे हैं, जिनके आधार पर आधुनिक युग में मानव अधिकारों से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाएं प्रचलित हैं। इनमें कुछ अवधारणाएं नवीन व समसामयिक भी हैं। इनमें उदारवादी, नारीवादी तथा गांधीवादी दृष्टिकोण प्रमुख हैं। उदारवादी अवधारणा के अनुसार मनुष्यों के मूलभूत अधिकारों की पूर्ण सुरक्षा होनी चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्ण विकास की दिशा में बढ़ सके, सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति में अपना योगदान दे सके और पूर्ण आत्म सम्मान का जीवन बिता सके। व्यक्ति को नागरिक और राजनीतिक दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त होने चाहिए, जिनका परिपालन इस रूप में किया जाये कि एक व्यक्ति के अधिकार दूसरे व्यक्ति के अधिकारों के उपभोग में बाधक न बनें अर्थात् अधिकार और कर्त्तव्य अनुवर्ती हों। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार विश्व के तथाकथित लोकतांत्रिक देशों के संविधानों द्वारा नागरिकों को दिये गये तथाकथित अधिकार व्यवहारिक महत्व नहीं रखते अर्थात् मानव अधिकारों की मार्क्सवादी अवधारणा केवल संविधानों में नागरिकों के अधिकारों की व्याख्या कर देने में विश्वास नहीं करती, बल्कि इस बात पर भी बल देती है कि उन अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है। यह केवल नागरिकों को समानता ही प्रदान नहीं करती बल्कि विश्वास दिलाती है कि अब वह शासन के शोषण से मुक्त हो गये हैं। मार्क्सवादी अवधारणा मानव अधिकारों की सर्वव्यापकता में विश्वास करती है। उसकी मान्यता है कि किसी भेदभाव के बिना प्रत्येक स्त्री पुरुष को सब मौलिक अधिकार प्राप्त हों। मानव अधिकार की गांधीवादी विचारधारा, सत्य, अहिंसा, सभी धर्मों का सम्मान आदि, सामाजिक समानता तथा शोषण

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

एवं उपनिवेशवाद के विरोध पर आधारित है। गांधी जी मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए समाज के नागरिकों को उत्तरदायी मानते थे और समाज में शान्ति एवं अहिंसा के मार्ग पर चल कर सभी की अधिकारों का सम्मान करने के लिए प्रेरित करते थे। उनका बल 'अधिकारों' पर कम, 'कर्त्तव्यों पर अधिक था।

2.2 उदारवादी विचारधारा

उदारवादी अवधारणा के अनुसार मनुष्य के मूलभूत अधिकारों की पूर्ण सुरक्षा होनी चाहिए, ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्ण विकास की दिशा में आगे बढ़ सके, सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति में अपना योदान दे सके और पूर्ण आत्मसम्मान का जीवन बिता सकें। व्यक्ति को नागरिक और राजनीतिक दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त होने चाहिए, जिनका परिपालन इस रूप में किया जाए कि एक व्यक्ति के अधिकार दूसरे वयक्ति के अधिकारों के उपभोग में बाधक न बनें अर्थात् अधिकार और कर्त्तव्य अनुवर्ती हों। व्यक्ति के अधिकार एकदम पूर्ण अथवा अनियंत्रित नहीं हो सकते, क्योंकि मानव–स्वभाव में अच्छाई और बुराई दोनों होती हैं और व्यक्ति के स्वयं के हित के लिए तथा समाज और राज्य के हित के लिए आवश्यक है कि उन अधिकारों पर उचित और न्यायसंगत नियंत्रण लगाए जाएं। नागरिक को जो अधिकार प्रदान किए जाएं, उन्हें समुचित न्यायिक संरक्षण प्राप्त होना चाहिए अर्थात् कार्यपालिका की किसी भी सम्भावित निरंकुशता के विरूद्ध और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक है कि न्यायपालिका अधिकार–सम्पन्न हो। मानव अधिकारों की उदारवादी अवधारणा के अनुसार नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आशय और अधिक स्पष्टता से समझने के लिए उदारवाद के स्वरूपों के बारे में जानना अनिवार्य हो जाता है।

उदारवाद के दो रूप प्रचलित रहे हैं, पुरातन (क्लासिकल) उदारवाद एवं नवीन उदारबाद। यह पुरातन उदारवाद प्रतिपादन जेम्स मिल, जैफरसन और टॉमसपेन के द्वारा किया गया वहीं नवीन उदारवाद का ज्ञान लॉक ने दिया। पुरातन उदारवाद राज्य को एक प्रहरी के रूप में मानते हुए, राज्य की श्रेष्ठतम अवस्था में भी एक आवश्यक बुराई मानता है, जबकि नवीन उदारवाद शासन को व्यक्ति स्वतंत्रता की प्राप्ति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन मानते हुए, यह कभी नहीं भूलना चाहता है कि शासकीय शक्तियों की मर्यादायें होनी चाहिए। जिसमें मानवीय स्वतंत्रता के विरूद्ध शक्ति का प्रयोग न हो।

अमेरिका में सोलहवीं शताब्दी में आकर बसने वाले अंग्रेज उपनिवेश संस्थापकों को जॉन–लॉक की मानव अधिकार सम्बन्धी सामाजिक समझौते की परिकल्पना विशेष रूप से उत्तम लगी। इसके अनेक स्वाभाविक कारण थे– पहला, धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए वे देश छोड़कर इस नए महाद्वीप पर आये थे। दूसरा, ऐसे नये विश्व की तलाश में जहां कोई पोप न हो और जहां कोई भी व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह, जैसी चाहें वैसी धर्म व्यवस्था का निर्माण कर सकें। तीसरा, इस निर्जनप्राय लोक में जहां न राजा था, न पोप, न अदालत, न घर, न सड़क, न किसी की जमीन की सीमाओं के निशान, ये उपनिवेश संस्थापक बसने लगे, तो उन्हें ऐसा लगना स्वाभाविक था कि जैसे वे दार्शनिक जॉन लॉक की कल्पना के साकार उदाहरण बन गये हों। जहां प्रारम्भिक मानव, प्रभुतासम्पन्न, जिन पर न कोई पोप, न कोई मानवकृत सीमाएं, न बंधन था, परन्तु अपनी सुरक्षा के लिए तथा अपने समान अन्य प्रभुतासम्पन्न व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए समाज की रचना के लिए और इस प्रकार रचे गये समाज के कल्याण के लिए वे स्वयं मिलकर अपनी स्वीकृति से बनाये गये नियमों से बंधे।

यद्यपि ये (उपनिवेशक–संस्थापक) (औपनिवेशिक स्वामी) अपने साथ शादी–ब्याह, लेन–देन, खान–पान, वस्त्र–पहनाव आदि की सभी प्रथाएं एवं नियम लाये थे, तथापि एकाएक इस नये वातावरण में और उनकी उस विशेष मनःस्थिति में, जो धर्म के नियंत्रण और संकीर्णता से ऊबकर स्वतंत्रता की खोज में थी उन्हें ऐसा लगा कि जैसे वे लॉक की कल्पना को साकार कर रहे हों। इसीलिए इंग्लैण्ड की भूमि से अपने सम्बन्ध तोड़ने की उनकी कोई इच्छा नहीं थी और वे अपने आप को इंग्लैण्ड के राजा की ही प्रजा समझते थे। वे सौ वर्ष तक इंग्लैण्ड के उपनिवेश भी बने रहे। परन्तु जब अट्ठारहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट ने उन पर शुगर एक्ट, 1764 और स्टाम्प एक्ट, 1765 आदि अधिनियमों से कर लगाने प्रारम्भ किये, तो एकाएक उनकी स्वतंत्रता की भावनाओं को ठेस लगने लगी। उन्होंने यह दावा करना प्रारम्भ कर दिया कि उन पर केवल उनकी सहमति से ही शासन किया जा सकता है, और कर लगाये जा सकते हैं, जो अधिकार उन्होंने राज्य को समर्पित नहीं किये हैं, उनमें राज्य हस्तक्षेप नहीं कर सकता। उधर इंग्लैण्ड के विधि शास्त्रियों ने कहना प्रारम्भ किया कि पार्लियामेंट सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न है, उसकी प्रभुता पर तो कोई नियंत्रण हो ही नहीं सकता क्योंकि इंग्लैण्ड के राजाओं तक को भी पार्लियामेंट की प्रभुता के समक्ष झुकना पड़ा है। इस प्रकार इन दो विरोधी विधि सिद्धान्तों या दावों में संघर्ष बढ़ता

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

गया, जिसके परिणामस्वरूप अमेरिका के उपनिवेशों ने सन् 1776 में स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और इंग्लैण्ड को युद्ध में परास्त करके अपनी स्वतंत्रता को सदैव के लिए सुरक्षित कर लिया।

स्वतंत्रता होने पर जब वे उपनिवेश "राज्य" बन गये और इन राज्यों ने अपने संविधान बनाये तथा जब उन सब राज्यों ने मिलकर एक सर्वोपरि संविधान द्वारा संयुक्त राज्य की स्थापना की तो उन्होंने इन संविधानों में मानव अधिकारों को मूल अधिकारों के रूप में अभिकथित किया और राज्य तथा केन्द्र दोनों ही सरकारों को इन अधिकारों का सम्मान करने तथा इनका अतिक्रमण नहीं करने का आदेश दिया। इनकी मान्यता थी कि वे जॉन लॉक की कल्पना को साकार करने वाले मानव हैं जो कि स्वेच्छा से सरकार स्थापित कर रहे हैं। ऐसी सरकारें जिन्हें केवल वे ही शक्तियां प्राप्त होती हैं, जो उनको रचने वाले प्रभुत्व सम्पन्न व्यक्ति अपनी प्रभुता में से तोड़कर उन्हें दें। सरकारें जो मानव द्वारा रचित हैं और जिनकी शक्तियां मानव द्वारा परिसीमित हैं। ऐसी सरकारें मानव की उन शक्तियों में कभी हस्तक्षेप नहीं कर सकती, जो उसने राज्य को न देकर स्वयं के पास रखे हैं। संयुक्त राज्य का संविधान बनाने वालों का यह विश्वास था कि मानव की अपने पास रख ली गयी, इन्हीं शक्तियों को वे अपने संविधान में "बिल ऑफ राइट्स" या मूल अधिकारों की संज्ञा दे रहे हैं।

जॉन लॉक का सामाजिक अनुबंध का सिद्धान्त बड़ा प्रभावी रहा, क्योंकि वह एक तरफ नैतिक आदर्शवाद से सम्बद्ध था और और दूसरी तरफ राजनीतिक यथार्थवाद से। जॉन लॉक इंग्लैण्ड में राजा के निरंकुश शासन के स्थान पर पार्लियामेंट द्वारा राजा पर अंकुश रखने का समर्थक था। इसलिए उसने एक ऐसे समाज की कल्पना की जो स्वतंत्र प्रभुतासम्पन्न व्यक्तियों द्वारा अपने स्वेच्छा से सामाजिक समझौता के माध्यम से बनायी गयी सरकार से शामिल हो।

हॉब्स ने जॉन लॉक के विपरीत यह कल्पना की थी कि प्राकृतिक स्थिति में मानव पाशविक, अभद्र, कुरूप और नितान्त स्वार्थी था, परन्तु अपने आपको लड़ाई और विनाश से बचाने के लिए उसने सरकार और समाज की रचना की। हॉब्स की कल्पना को आधार मानकर दूसरे दार्शनिकों ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि प्रभुता एक वस्तुस्थिति है, जिसमें यह शक्ति हो कि वह समाज के सभी लोगों से आदेशों की आज्ञाकारिता प्राप्त कर सकें, वही प्रभुता सम्पन्न है, चाहे इसने ऐसी स्थिति किसी भी प्रकार बनायी हो। जिसके पास वास्तविक प्रभुता है, उसे सभी प्रकार के अधिनियम बनाने और आदेश देने का अधिकार है। उसके द्वारा बनाये गये अधिनियमों या आदेशों की नीति या युक्तियुक्ता या अन्य किसी की कसौटी पर अवैध नहीं कहा जा सकता। इसके अलावा और भी अनेक प्रकार की दार्शनिक कल्पनाएं, समय–समय पर विविध राजनीतिक आन्दोलनों या शक्तियों को समर्थन देने के लिए की जाती रही हैं। इन दार्शनिक कल्पनाओं का अपने–अपने देश काल की परिधियों में समाज पर न्यूनाधिक प्रभाव पड़ा है लेकिन मानव अधिकार के सम्बन्ध में जान लॉक का सिद्धान्त सबसे प्रभावशाली सिद्ध हुआ, क्योंकि वह नैतिक सत्य पर आधारित था। दार्शनिक जॉन लॉक ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन व्यक्ति की नैतिक स्वायत्तता पर किया था, जिसके कारण उसका चमत्कारी आकर्षण अब भी बना हुआ है।

जॉन लॉक ने व्यक्ति के अधिकारों के सम्बन्ध में अपनी कृति 'नागरिक शासन पर दो निबन्ध' में लिखा है कि व्यक्ति को प्राकृतिक अवस्था में भी तीन अधिकार जीवन का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार और स्वतंत्रता का अधिकार मिले हुए थे। प्राकृतिक अवस्था में सम्पत्ति की सृष्टि ईश्वर प्रदत्त वस्तुओं के श्रम के सम्मिश्रण से हुई। लॉक प्राकृतिक अवस्था में व्यक्तियों को समान मानता है यह समानता भी अधिकारों की समानता थी न कि शक्ति आदि की। प्रो. डनिंग ने अपनी पुस्तक "A History of Political Theory Vol. II में लिखा है कि "पूफेण्डोर्फ द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक कानून में तथा मिल्टन और स्पिनोजा द्वारा सारहित स्वतंत्रता में निरंकुशता पर वास्तविक रोक लगाने के लेखकों के उद्देय के बावजूद साधारणतया एक अवास्तविकता–सी दिखायी पड़ती है। हमारे हृदय पर उनका अधिक से अधिक प्रभाव पड़ता है कि यह लेखक केवल अत्यन्त मेधावी और अपवाद स्वरूप व्यक्तियों की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना चाहते हैं, प्रत्येक साधारण व्यक्ति की नहीं। व्यक्तियों की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना चाहते हैं, प्रत्येक साधारण व्यक्ति की नहीं। इसके विपरीत, लॉक द्वारा की गयी की गयी राजनीतिक संस्थाओं की समीक्षा में समान अधिकार की भावना इतनी प्रबल है कि वे वास्तविक राजनीतिक समाज के अस्तित्व के लिए अपरिहार्य दिखायी पड़ती है क्योंकि लॉक के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के पास प्राकृतिक, कभी नहीं छोड़े जाने वाले व मूलभूत अधिकार होते हैं।" लॉक की प्राकृतिक अधिकारों की धारणा के अनुसार व्यक्तियों ने अपनी सुविधा के लिए समाज और सरकार की रचना की। लॉक द्वारा तीन प्राकृतिक अधिकार बतलाये गये हैं जो कि निम्नलिखित प्रकार से हैं।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1. जीवन का अधिकार– मनुष्य की आत्म संरक्षण की प्रबल आकांक्षा होती है और यही उसकी सब क्रियाओं का प्रधान प्रेरक तत्व है। सभी व्यक्तियों को अपना जीवन सबसे प्यारा होता है, उसको सुरक्षित रखना प्राकृतिक अधिकार है। व्यक्ति अपना अंत स्वयं नहीं कर सकता और न ऐसा अधिकार अन्य किसी को दे सकता है, जीवन जीने का अधिकार ही व्यक्ति का सर्वप्रमुख अधिकार है।

2. सम्पत्ति का अधिकार– सम्पत्ति का अधिकार में लॉक जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को भी सम्मिलित करता है और इसे 'सम्पदा' नाम से पुकारता है। लॉक कहता है "व्यक्ति अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए राजनीतिक समाज में प्रवेश करते हैं"। लॉक सम्पत्ति की धारणा में लॉक केवल व्यक्तिगत सम्पत्ति को ही मानता है। जहां संकुचित सम्पत्ति में लॉक केवल व्यक्तिगत सम्पत्ति को ही मानता है, वहीं कायम सम्पत्ति के अर्थों में वह जीवन, स्वतंत्रता, सम्पत्ति को मानता है। सेबाइन ने इस सन्दर्भ में कहा है कि "यह एक ऐसा अधिकार है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के अभिन्न भाग के रूप में लेकर समाज में आता है।

3. स्वतंत्रता का अधिकार– स्वतंत्रता का तात्पर्य सामाजिक संगठन से सामंजस्य रखती हुई, अधिकतम स्वतंत्रता से है जो, सबको प्राप्त होनी चाहिए। लॉक ने स्वतंत्रता का अर्थ स्वेच्छाचारिता से नहीं लिया है, अपितु स्वयं की इच्छा से कार्य करने और किसी अन्य की इच्छा के अनुसार कार्य करने को बाध्य न होने का अर्थ ही प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त स्वतंत्रता है। इस अवस्था में व्यक्ति किसी भी शक्ति से नियंत्रित एवं अधीन नहीं होता है, केवल एक प्राकृतिक कानून के अधीन होता है। प्राकृतिक कानूनों के द्वारा स्थापित नैतिक व्यवस्था के अनुसार ही व्यक्ति कार्य करता है और नैतिक सीमाओं के अधीन रहते हुए, व्यक्ति स्वतंत्रता का उपयोग करता है।

जॉन लॉक ने प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा के लिए सामाजिक समझौते का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जिसमें दो समझौते हुए एक तो सामाजिक समझौता व दूसरा, राजनीतिक समझौता। जहां सामाजिक समझौते द्वारा नागरिक एवं सिविल सोसाइटी का निर्माण होता है, वहीं राजनीतिक समझौते के द्वारा राज्य की उत्पत्ति होती है। जिसे लॉक "कामन वेल्थ' कहता है। व्यक्ति के जीवन, सम्पत्ति और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए समाज (राज्य) की स्थापना होती है। अर्थात् जो व्यक्ति अधिकारों का उल्लंघन करता है, उसे समाज दण्ड देगा। डा. आशीर्वादम के अनुसार– "लॉक ने जिन दो संविदाओं की चर्चा की है, उनमें से पहली संविदा द्वारा नागरिक समाज एवं दूसरी द्वारा सरकार की स्थापना होती है, अर्थात पहली संविदा जनता के बीच हुई थी जिससे नागरिक समाज का निर्माण हुआ और दूसरी संविदा नागरिक समाज तथा शासक के बीच हुई जिससे सरकार का। पहले समझौते द्वारा समाज को जो अधिकार व्यक्तियों ने सौंपे, वे समाज द्वारा (दूसरा समझौता होने पर) सरकार को प्रदान कर दिये जाते हैं। समझौते में चूंकि सरकार भी एक पक्ष होती है, अतः उसके ऊपर समाज द्वारा कुछ शर्तें लगा दी जाती हैं, जिनका पालन यदि सरकार नहीं करती है तो उसे समाप्त कर नयी सरकार का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार लॉक ने एक सीमित व उत्तरदायी सरकार की कल्पना की है।"

जॉन लॉक के अनुसार "सरकारी (राजनीतिक) समझौता सामाजिक समझौते के अधीन हुआ। लोगों ने अपने समस्त अधिकार, बल्कि जीवन, सम्पत्ति और स्वतंत्रता की रक्षा की जिम्मेदारी भी सरकार को सौंप दी अर्थात् लोगों ने या समाज ने सरकार को सीमित अधिकार दिए। जनता की सहमति ही सरकार का आधार है।" वेपर के अनुसार "लॉक का सामाजिक समझौते का विचार हॉब्स की अपेक्षा रूसो के विचार से अधिक मिलता है। लॉक और रूसो दोनों यह मानते हैं कि सरकार की संख्या संविदा या समझौता नहीं है और सामाजिक समझौते से जनता के सर्वोच्च अधिकारों में कोई कमी नहीं आती।

जॉन लॉक के अनुसार "समाज को सदा एक ऐसी शक्ति प्राप्त रहती है कि वह अपने को किसी के भी ऐसे कुप्रयत्नों तथा कुचेष्टाओं से बचा सके, जो प्रजा की स्वतंत्रता तथा सम्पत्ति के विरुद्ध कुप्रयत्न तथा कुचेष्टाएं करने की मूर्खता अथवा नीचता करे...... जब कभी भी कोई उन्हें दासता की दशा में ले जाने का प्रयत्न करे, उन्हें सदा यह अधिकार होगा कि वे अपने को उनसे मुक्त कर सकें, जो आत्मरक्षा के उस मौलिक, पवित्र एवं अपरिवर्तनीय नियम पर आक्रमण करते हैं, जिस हेतु वे समाज में शामिल हुए थे।"

फिर भी समझने की बात यह है कि इनमें से कोई भी कल्पना न तो ऐतिहासिक सत्यों के अन्वेषण पर

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

आधारित है और न इनमें से कोई यह दावा कर सकते हैं कि वह देश और काल के आक्षांस, देशांतरों से परिभाषित होकर किसी भी समाज के लिए कभी भी अनुपयुक्त नहीं होगी तब भी लॉक में यह हॉब्स से अधिक ऐतिहासिक प्रतीत होता है।

सर हेनरी मेन ने अपनी पुस्तक "विलेज कम्यूनिटीज" में सिद्ध करने का प्रयास किया है कि "मानव प्रारम्भ से ही अकेला या स्वतंत्र होने के बजाय पितृत्व पर आधारित समाज की एक ऐसी इकाई रहा है, जिसके अधिकार बहुत सीमित और रूढ़ि पर आधारित थे। उन्होंने और अन्य अन्वेषकों ने यह निस्संदेह सिद्ध कर दिया है कि जॉन लॉक या हाब्स की कल्पना के स्वतंत्र और प्रभुता सम्पन्न मानव ने कभी भी पृथ्वी पर विचरण नहीं किया।" जहां तक ऐतिहासिक सत्य की बात है, इतना तो स्पष्ट ही है कि अमेरिका में पहुंचने वाले प्रारम्भिक अंग्रेज प्रवासी भी स्वतंत्र और प्रभुता सम्पन्न मानव नहीं थे, बल्कि वे इंग्लैण्ड राजा की प्रजा थे और शादी–ब्याह, अपराध, संविदा आदि के मामलों में इंग्लैण्ड की रूढ़ि जन्म विधि से आबद्ध थे। सैकड़ों वर्ष इंग्लैण्ड से शासित रहने के पश्चात अट्ठारहवीं शताब्दी में वे युद्ध में विजय के आधार पर ही स्वतंत्र हो पाये थे। यह भी विचारणीय है कि व्यक्ति की प्रभुता सम्बन्धी क्रान्तिकारी विचारों के साथ ही साथ वे लोग दासता को भी निभा सकते थे और उन लोगों को उनकी इच्छा के विपरीत केवल हिंसा के आधार 42 दास बनाये रखने में किसी सामाजिक समझौता की अवहेलना नहीं होती थी। इस प्रकार जॉन लॉक की मानवाधिकार सम्बन्धी कल्पना ऐतिहासिक सत्य नहीं थी। वह एक नैतिक सत्य थी, परन्तु केवल अपने देशकाल के लिए थी। स्वयं संयुक्त राज्य अमेरिका में भी जब औद्योगीकरण और व्यापार के विस्तार से परिस्थितियां बदल गयीं और यह स्पष्ट रूप से मालूम हो गया कि यदि सरकार एकाधिकार पर नियंत्रण नहीं करेगी या कम उम्र के बच्चों को कारखानों ने काम पर लगाया जाना वर्जित नहीं करेगी या मजदूरों के हित में उनके वेतन, उनके काम करने की अवधि आदि पर नियंत्रण नहीं करेगी, वस्तुओं के उत्पादन और वस्तुओं के मूल्यों का विनिमय नहीं करेगी, तो न केवल सारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था नष्ट हो जायेगी, बल्कि जनसाधारण के लिए सम्मान और सुख में जीवन–यापन करना तक असम्भव हो जायेगा, तब वहां के विधायकों और न्यायालयों ने आदि मानव की प्रभुता और जॉन लॉक के सामाजिक–समझौतों की दार्शनिक कल्पना पर आधारित तर्कों को अस्वीकार करते हुए, वे सब नियंत्रण उद्योगपतियों और व्यापारियों पर लगाये, जिनकी अट्ठारहवी शताब्दी का संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक कल्पना भी नहीं कर सकता था। कभी–कभी यह तर्क बड़ी गम्भीरता से पेश किया जाता है कि संविधान में संस्थापित मानवाधिकार प्रकृति या ईश्वर द्वारा दिये गये अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी स्वेच्छा से अपनी असीम प्रभुता में से राज्य सरकार की स्थापना के लिए अपने अधिकारों का अनुदान देते समय अपने ही लिए बचाकर रख लिये थे, अतः इन्हें केवल प्रत्येक व्यक्ति की अनुमति से ही कम किया जा सकता है। इस प्रकार जॉन लॉक की दार्शनिक कल्पना को ऐतिहासिक सत्य का रूप देकर भ्रम उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि प्रत्येक समाज मानव कल्याण की अपनी–अपनी धारणाओं के आधार पर मूल अधिकारों की कल्पना करता है और इन धारणाओं में परिवर्तन होने पर इन अधिकारों को भी परिवर्तित कर सकता है।

जीन जेक्स रूसो

रूसो की मान्यता थी कि "मनुष्य स्वतंत्र उत्पन्न होता है और सर्वत्र वह जंजीरों में जकड़ा हुआ है।"

रूसो के मतानुसार आदिम मनुष्य स्वाभाविक रूप से अच्छा, सुखी, चिन्ता रहित सीधा, स्वस्थ, शान्तिप्रेमी, एकान्तप्रिय, पशुतुल्य, निष्पाप, बुद्धिहीन, निर्दोष प्राणी था। रूसो के शब्दों में आदिम मनुष्य एक "आदर्श बर्बर" था। रूसो के अनुसार प्राकृतिक अवस्था के व्यक्तियों का जीवन बुद्धि द्वारा चालित न होकर भावनाओं एवं संवेगों द्वारा चालित था और ये भाव एवं संवेग आत्मरक्षा तथा सुख की प्रवृत्ति और दया के थे। सभ्यता के विकास (उदय) के साथ–साथ मनुष्य का तनाव बढ़ता गया। मनुष्य की इच्छा होती है कि वह एक ऐसी सभ्यता का निर्माण करे, जो प्राकृतिक मनुष्य की सभ्यता हो और जहां उसके स्वार्थ और परमार्थ में चेतना और विवेक के अनुसार समन्वय हो सके। यह धारणा हॉब्स व लॉक की धारणा से भिन्न है।

रूसो के अनुसार प्राकृतिक अवस्था वर्तमान मनुष्य की सभ्य सामाजिक अवस्था से कहीं अधिक अच्छी थी। जिसमें मनुष्य एकाकी, स्वतंत्र, नैतिक–अनैतिक भावनाओं से मुक्त, निःस्वार्थ, परिवार और सम्पत्ति से रहित आदिम स्वर्णयुग की स्वर्गीय दशा में रहता था। उसकी (मनुष्य की) इच्छाएं एवं आवश्यकताएं अति सीमित थी और वह पूर्णतया स्वतंत्र, सुखी और सन्तुष्ट था। यह प्राकृतिक अवस्था जंगलीपन की अवस्था अवश्य थी, परन्तु वह आदर्श बर्बर था, उसमें सभ्य मनुष्यों वाले दुर्गुण नहीं थे। प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य एक भोले और अज्ञानी

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

बालक की भांति सादगी और परम सुख का जीवन व्यतीत करता था। इसलिए तो रूसो ने तथाकथित सभ्य और विकसित मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था के मनुष्य से तुलना अपने लेख "विज्ञान तथा कला की प्रगति ने नैतिकता को भ्रष्ट करने में योग दिया है अथवा उसकी विशुद्धि करने में।" उसने अपनी कृति 'Has the Progress of Sciences and Arts Contributed to Corrupt or Purify Morals?'- (1749) में लिखा है कि "हमें फिर से अज्ञान, भोलापन और निर्धनता की ओर लौटना चाहिए।' प्राकृतिक अवस्था न तो हॉब्स के सदृश्य सभी का सभी के विरूद्ध युद्ध की थी और न ही लॉक की शान्ति व सद्इच्छा की अवस्था जैसी थी। वह ऐसी दशा थी जिसमें मनुष्य पशु जैसा अकेला जीवन बिताता था।"

प्राकृतिक अवस्था की आदर्श बर्बरता की अवस्था अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकी। रूसो ने अपने लेख "असमानता की उत्पत्ति और आधारशिला' में माना कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की मान्यता के कारण लोगों में परस्पर कलह, द्वेष, हिंसा व युद्ध आदि का प्रादुर्भाव हुआ। रूसो ने लिखा है कि विषमता का मूल कारण निजी सम्पत्ति है, जो कि नितान्त अस्वाभाविक और अनौचित्यपूर्ण है। "सम्पत्ति सम्बन्धी सर्प मानव समाज में पैदा हो गया और उसकी सुख–शान्ति काफूर हो गई।" रूसो के अनुसार "वह प्रथम व्यक्ति, जिसने एक भू–भाग पर अधिकार जमा कर यह कहना प्रारम्भ किया कि यह मेरी भूमि है" और उसकी इस बात को अन्य मनुष्यों ने स्वीकार कर लिया, वह व्यक्ति ही राज्य का संस्थापक है।" सभ्यता की वृद्धि के साथ–साथ दरिद्रता, शोषण, हत्या और बीमारी बढ़ती चली गई। रूसो के अनुसार "समाज व राज्य का उदय ऐसा था, जिससे गरीबों को नयी जंजीरों में बांध दिया और अमीरों को नयी शक्ति दे दी, जिसने प्राकृतिक स्वतंत्रता को बिल्कुल नष्ट कर दिया, सम्पत्ति के कानूनों को बनाकर असमानता को जन्म दिया और कुछ महत्वाकांक्षी मनुष्यों के लाभ के लिए सारी मानवता को सदा के लिए मजदूरी, गुलामी और दयनीय स्थिति में धकेल दिया।" इसलिए रूसो कहता है कि "मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है, किन्तु सर्वत्र वह बेड़ियों से जकड़ा हुआ है।" प्रकृति की ओर लौट चलो। अतः रूसो मानव अधिकारों को प्राकृतिक अवस्था में मानता है, परन्तु रूसो सामाजिक समझौते के पीछे मनुष्यों की प्रवृत्ति (युद्ध एवं संघर्ष) को मानता है।

इस स्थिति से छुटकारा प्राप्त करने के लिए सामाजिक समझौता किया जाता है। रूसो ने लिखा है कि "प्रत्येक अपने व्यक्तित्व और अपनी पूर्ण शक्ति को सामान्य प्रयोग के लिए, सामान्य इच्छा के सर्वोच्च निर्देशन के अधीन समर्पित कर देता है तथा एक समूह के रूप में हममें से प्रत्येक व्यक्ति समूह के अविभाज्य अंग के रूप में अपने व्यक्तित्व तथा अपनी पूर्ण शक्ति को प्राप्त कर लेता है।" समझौता करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तिगत व्यक्तित्व का जन्म होता है, जो कि उतने ही सदस्यों से मिलकर बना है, जितने कि उसमें मत होते हैं। समुदाय बनाने के इस कार्य से ही इस निकाय को अपनी एकता, अपनी सामान्य सत्ता, अपना जीवन तथा अपनी इच्छा प्राप्त होती है। समस्त व्यक्तियों के बने संगठन से बने हुए, इस सार्वजनिक व्यक्ति को पहले नगर कहते थे, अब उसे गणराज्य कहते हैं और जब सक्रिय होता है, तो संप्रभु तथा ऐसे ही अन्य निकायों से इसकी तुलना करने पर ही इसे शक्ति कहते हैं।" समझौते के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण समाज की एक सामान्य इच्छा उत्पन्न होती है और मनुष्य इस सामान्य इच्छा के अन्तर्गत रहते हुए कार्य करते हैं। हमें रूसो के दर्शन में जनप्रिय सम्प्रभुता और लोकतन्त्रीय सरकार की आधारशिला मिलती है।

गैटेल के अनुसार "रूसो की रचना का यह भाग हॉब्स और लॉक दोनों से प्रभावित, था, हॉब्स की पद्धति और लॉक के निष्कर्ष को जिज्ञासापूर्वक संयुक्त कर दिया गया.........इस प्रकार हॉब्स की तरह जहां सत्ता निरंकुश स्थापित हुई, वहां लॉक की तरह व्यक्ति अब भी समान अधिकार रखते थे।"

रूसो के सामाजिक समझौता सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताओं में हैं– समझौते के अन्तर्गत प्रत्येक मनुष्य के दो रूप दिखायी पड़ते हैं: प्रथम व्यक्तिगत और दूसरा समूहगत। समझौते की क्रिया के द्वारा अलग–अलग मनुष्यों के निजी व्यक्तित्त्व के स्थान पर एक सामूहिक व्यक्तित्त्व स्थापित हो जाता है। मनुष्य अपनी सम्पूर्ण शक्ति व अपने अधिकारों को सबको (समाज को) समर्पित कर देता है, क्योंकि मनुष्य भी इस सम्पूर्ण समाज का सदस्य होता है। इसके तहत मनुष्य की परतंत्रता का अन्त हो जाता है, वह वास्तविक रूप से स्वतंत्रत हो जाता है, जिसमें व्यष्टि के स्थान पर समष्टि तथा व्यक्तिगत इच्छा का स्थान सामान्य इच्छा (आदर्श इच्छा) ले लेती है। सामान्य इच्छा सभी मनुष्यों के लिए सर्वोच्च होती है और प्रत्येक मनुष्य उसके अधीन होता है। सामान्य इच्छा के माध्यम से ही सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न द्वारा समाज (राज्य) की स्थापना होती है। जिसमें सामान्य इच्छा सदैव न्याययुक्त होती है और जिसका लक्ष्य जनहित होता है। यदि सरकार सामान्य इच्छा के अनुसार कार्य नहीं करता है, तो उसे हटाया

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

या बदला जा सकता है। सामान्य इच्छा के तहत जो मनुष्य अपने अधिकार खोता है, उसे वह समाज के माध्यम से पुनः प्राप्त कर लेता है, और यह घटनाक्रम निरन्तर चलता है। सामाजिक समझौता मनुष्यों की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर देता है, जिसमें उत्पन्न राज्य एक सावयव राज्य होता है। रूसो केवल सामाजिक समझौते को ही स्वीकार करता है, न कि राजनीतिक समझौतो को। रूसो के अनुसार "जो कुछ समझौते से मनुष्य खोता है, वह है प्राकृतिक स्वतंत्रता और किसी भी वस्तु को पाने का असीमित अधिकार जो कुछ वह पाता है, वह है सामाजिक स्वतंत्रता और अपनी वस्तुओं पर स्वामित्व।" प्रत्येक मनुष्य राज्य का अविभाज्य अंग होने के कारण राज्य से किसी भी प्रकार अलग नहीं हो सकता और न ही व्यक्ति राज्य के विरूद्ध आचरण कर सकता है। राज्य की सर्वोच्च शक्ति सामान्य इच्छा है, जो अविभाज्य, असीमित, विधि का स्रोत, अदेय, अविच्छेद्य और निरंकुश होती है।

जॉन स्टुअर्ट मिल

जॉन स्टुअर्ट मिल के अनुसार "एक सन्तुष्ट सूअर की अपेक्षा एक असन्तुष्ट मनुष्य होना ज्यादा अच्छा है। एक सन्तुष्ट मूर्ख की अपेक्षा असन्तुष्ट सुकरात होना ज्यादा अच्छा है और यदि मूर्ख या सूअर की राय अलग है, तो उसका कारण है कि वे केवल अपने पक्ष ही जानते हैं, परन्तु दूसरे लोगों को दोनों पक्ष ज्ञात है।"

जॉन स्टुअर्ट मिल के अनुसार "वह एकमात्र उद्देश्य, जिसके लिए व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से मनुष्य जाति को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने किसी सदस्य की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप कर सकें, आत्मरक्षा ही है। वह प्रयोजन, जिसके लिए एक सभ्य समाज के किसी सदस्य के विरूद्ध शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, यही है कि एक अन्यों को हानि न पहुंचा सके। उसके ही भौतिक या नैतिक हित के नाम पर उसकी स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ....अपने ऊपर, अपने शरीर और मस्तिष्क पर व्यक्तित्व सम्प्रभु है।"

जॉन स्टुअर्ट मिल उपयोगितावाद का अन्तिम समर्थक था, वहीं व्यक्तिवाद का प्रथम विचारकों में से था। जे.एस.मिल के पिता और बेंथम उसे एक उपयोगितावादी के रूप में देखना चाहते थे। इनके अलावा इनकी पत्नी श्रीमती टेलर, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज तथा गेटे का प्रभाव भी उनकी विचारधारा पढ़ा। उनके विचारों में उपयोगितावाद, व्यक्तिवाद और उदारवाद का अपूर्व सामंजस्य मिलता है। मिल ने बेंन्थम के "अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख" सिद्धान्त को सीधे अपनाने के बजाय, इसमें अपने विचारों एवं अनुभवों के आधार पर संशोधन किया, जिसमें उन्होंने विभिन्न सुखों में मात्रात्मक भेद के साथ गुणात्मक भेद को स्वीकार किया है। बाहरी तत्वों को सुख और दुख का स्रोत समझाने के साथ मानवीय भावनाओं को भी सुख और दुख का स्रोत मानना है और नैतिक सिद्धान्तों को इसमें स्वीकार किया है। वेपर के अनुसार "मिल उपयोगितावाद की, की गयी निन्दाओं से उसके बचाव करने के प्रयत्न में सम्पूर्ण उपयोगितावादी स्थिति के विपरीत चला गया। यहां तक स्वयं मिल ने बेंथम को अस्वीकार करते हुए कहा था कि "मैं पीटर हूं, जो अपने स्वामी को स्वीकार नहीं करता। (I am the Peter who denies his Masters")। मानव जीवन के सम्मुख एक आदर्शवादी लक्ष्य रखकर, विभिन्न सुखों में मात्रात्मक भेद के साथ गुणात्मक भेद सवीकार कर तथा बाहरी तत्वों के साथ मानवीय तत्वों को भी सुख का स्रोत मानकर मिल ने उपयोगितावाद को अधिक मानवीय बना दिया है। वहीं मैक्सी ने दोनों में भेद करते हुए लिखा है कि "बैंथम का उपयोगितावाद का सिद्धान्त भेड़ियों के समाज में स्वार्थ को महत्व देता है और सन्तों के समाज में साधुता को। मिल का यह संकल्प था कि चाहे कोई समाज हो, उसमें उपयोगिता की कसौटी साधुता ही होनी चाहिए।

मिल के सन्दर्भ में सेबाइन ने लिखा है कि "उसकी सामान्य स्थिति यह है कि उसने पुराने उपयोगितावादी सिद्धान्त का एक अत्यन्त अमूर्त वर्णन किया, परन्तु सिद्धान्त को व्यक्त करने के उपरान्त उसने कुछ ऐसी रियायतें करना और कुछ बातों को इस प्रकार व्यक्त करना शुरू किया कि अन्त में पुराना सिद्धान्त तो समाप्त हो गया, किन्तु उसके स्थान पर किसी नवीन सिद्धान्त की स्थापना नहीं हुई।

जे.एस. मिल के स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार– जे.एस. मिल ने अपनी पुस्तक 'Essay On Liberty' में मानवाधिकारों से सम्बन्धित स्वतंत्रता का विश्लेषण किया है। मैक्सी के अनुसार "मिल के विचारों तथा वाद–विवादों में स्वतंत्रता के विषय में निबन्ध राजनीतिक साहित्य में बहुत उच्च कोटि का अध्ययन है। इसी कारण मिल की गणना मिल्टन, स्पिनोजा, वाल्टेयर, रूसो, पेन, जेफरसन तथा स्वतंत्रता के अन्य महारथियों में की जाती है।" इनकी पुस्तक On Liberty की तुलना मिल्टन की ऐरोपेजिटिका से की जा सकती है। इसलिए डनिंग ने अपनी पुस्तक Political Theories from Luther of Montesquieu के पृष्ठ संख्या 214 में लिखा है कि "मिल ने विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मिल्टन जैसे उत्साह और उसमें अधिक कुशाग्र बुद्धि के साथ समर्थन किया है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

जे.एस. मिल ने ब्रिटिश संसद ने बालश्रम सम्बन्धी विधियों की रचना से बालकों को अपनी आजीविका कमाने की स्वतंत्रता और अभिभावकों की उन्हें काम पर भेजने की स्वतंत्रता सीमित होते देखा था। मिल को सन्देह था कि स्वतंत्रता के लिए सबसे बड़ा खतरा सरकार की ओर से नहीं आता, अपितु ऐसे बहुमत की ओर से आता है, जो नये विचारों के प्रति असहिष्णु होता है, जो विरोधी अल्पसंख्यकों को सन्देह की दृष्टि से देखता है और जो अपने बहुमत के जोर से उनको दबा देना चाहता है। राज्य एवं शासन के बढ़ते हुए कार्यों के नाम पर बहुमत द्वारा अल्पमत पर मनचाहे प्रतिबन्ध लगाने की प्रवृत्ति अथवा जनमत के नाम पर अनावश्यक कानूनों को थोपने की प्रवृत्ति के विरूद्ध मिल ने व्यक्ति स्वतंत्रता का समर्थन करते हुए उपयोगितावादी सिद्धान्त को नकारते हुए स्वतंत्रता के व्यक्तिवाद प्रतिमान का समर्थन किया। मिल ने स्वतंत्रता सम्बन्धी सिद्धान्त का समर्थन एवं प्रतिपादन दो प्रकार के दार्शनिक आधारों पर किया है– पहला व्यक्ति की दृष्टि से और दूसरा समाज की दृष्टि से। मिल ने घोषणा की, कि स्वतंत्रता व्यक्ति और समाज दोनों के विकास के लिए अपरिहार्य है। व्यक्ति का उद्देश्य अपने व्यक्तित्व का उच्चतम और अधिकतम विकास है और यह विकास केवल स्वतंत्रता के वातावरण में ही सम्भव है यदि व्यक्ति को यह स्वाधीनता नहीं दी जाये, तो मानव का मुख्य लक्ष्य ही विफल हो जायेगा, परन्तु व्यक्ति की स्वतंत्रता दूसरों को हानि नहीं पहुंचाये। दूसरा आधार समाज की उन्नति और विकास से सम्बन्धित है।

मिल ने अपनी पुस्तक में स्वतंत्रता को दो प्रकार (भागों) में बांटा है–

1. विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता 2. कार्य करने की स्वतंत्रता

1. विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता– **मिल विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रबल समर्थक था। मिल ने व्यक्ति के लिए इसका प्रयोग हितकर बताया और कहा कि राज्य के द्वारा किसी भी प्रकार की भावाभिव्यक्ति पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाना चाहिए। मिल के अनुसार "यदि एक व्यक्ति को छोड़कर सम्पूर्ण मानव जाति का मत एक हो, तो भी मानव जाति को उस एक व्यक्ति को बलपूर्वक चुप कराने का कोई अधिकार नहीं हैं जैसे कि यदि उस एक व्यक्ति के पास शक्ति होती, तो उसे मानव जाति को चुप कराने का अधिकार नहीं होता। मिल ने कहा है कि "विचार अभिव्यक्ति को रोकने का एक विलक्षण दोष यह है कि ऐसा करना मानव जाति को आने वाली तथा वर्तमान नस्लों को लूटना है।" सेबाइन ने अपनी पुस्तक 'राजनीतिक दर्शन का इतिहास' में लिखा है कि "मिल को डर था कि स्वतंत्रता के लिए सबसे बड़ा खतरा सरकार की ओर से नहीं आता, वरन् ऐसे बहुमत की ओर से आता है जो नवीन विचारों के प्रति असहिष्णु होता है, जो विरोधी अल्पसंख्यकों को सन्देह की दृष्टि से देखता है और जो अपनी संख्या के जोर से उन्हें दबा देना चाहता है।" विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर मिल किसी प्रकार का अंकुश लगाने का पक्षधर नहीं था। इसलिए मिल ने लिखा था कि "कोई भी समाज जिसमें सनकीपन, मजाक एवं तिरस्कार का विषय न हो, पूर्ण समाज नहीं हो सकता।" मिल के शब्दों में "यह हानिकारक है, क्योंकि शासन इसका प्रयोग जनमत के विरूद्ध करता है और यह समय इससे भी अधिक हानिकारक है, जबकि इसका प्रयोग जनमत के अनुकूल किया जाता है। यदि एक व्यक्ति को छोड़कर सम्पूर्ण मानवता एक ही विचार की हो, तो भी मानवता को इस एक व्यक्ति को मौन रखने का इससे अधिक अधिकार नहीं हो सकता, जितना कि उस एक व्यक्ति को, यदि उसके पास शक्ति हो तो सम्पूर्ण मानवता को मौन रखने का अधिकार हो सकता है।" मिल ने समाज को एक प्रयोगशाला के रूप में कल्पित कर प्रत्येक विचारों एवं दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति का जोरदार समर्थन किया और विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थक बनकर मिल ने इंग्लैण्ड की संसदात्मक पद्धति और विचार–विश्वास को ही मान्यता दी।**

2. कार्य करने की स्वतंत्रता– **मिल के अनुसार "विचारों की स्वतंत्रता अपूर्ण है, यदि उन विचारों को क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता न हो।" कार्य स्वातन्त्र्य में व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रकट होता है और यह उसकी आत्मोन्नति का रास्ता है। मिल के अनुसार "कार्य की स्वतंत्रता मानव जीवन के सुख का एक मुख्य तत्व है और वही वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति का भी आवश्यक तत्व है।**

(क) स्वः–विषयक कार्य– **ऐसे कार्य जिनका सम्बन्ध व्यक्ति 'स्व' के साथ होता है।**

(ख) पर–विषयक कार्य– **ऐसे कार्य जिनका प्रभाव अन्य लोगों पर पड़ता है।**

पहले क्षेत्र (स्व विषयक) के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं, जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से होता है, जिन कार्यों से अन्य व्यक्ति प्रभावित नहीं होते। जैसे– खाना, सोना, पहनना, खेलना, आचार–विचार करना।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

जब तक कोई व्यक्ति ऐसा कार्य करताहै, जिसका प्रभाव केवल उसी पर पड़ता है, दूसरों पर नहीं तब तक राज्य को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, तो व्यक्ति को ऐसा करने का पूरा अधिकार होना चाहिए। दूसरे क्षेत्र (पर–विषयक) के अन्तर्गत व्यक्ति के वे कार्य आते हैं, जिनमें समाज तथा अन्य व्यक्ति प्रभावित होते हैं, तब ऐसे कार्यों में राज्य द्वारा हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। जैसे– चोरी करना, शान्ति भंग करना, सार्वजनिक स्थानों को गंदा करना इत्यादि हमारे ऐसे कार्य हैं जिनका प्रभाव समाज के अन्य व्यक्तियों पर पड़ता है।

डेविडसन ने मिल की स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारों को तीन शीर्षकों में विभाजित किया है–

1. व्यक्ति की भावनाओं और इच्छाओं को उचित स्थान दिया जाना चाहिए। बौद्धिकता द्वारा इनका पूर्णतया अपहरण नहीं किया जाना चाहिए।
2. सामाजिक और सार्वजनिक कल्याण की दृष्टि से व्यक्ति के दृष्टिकोण को उचित महत्त्व दिया जाना चाहिए। इससे मानव कल्याण में वृद्धि होगी और लोग आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित होंगे।
3. उन सामाजिक परम्पराओं का विरोध किया जाना चाहिए, जो मनुष्य के विकास में बाधक हों और जिनसे विचारों की अभिव्यक्ति तथा आचरण की स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है।

डेविडसन के अनुसार "मिल के हृदय में एक नवीन मानव का आविर्भाव हुआ, जिसमें अधिक गहरी सहृदयता थी, जिसका बौद्धिक दृष्टिकोण अधिक व्यापक था और जिसने बुद्धि के साथ–साथ भावनाओं की दृष्टि के महत्व का भी अनुभव किया था।"

जे.एस. मिल ने अपने ग्रंथों "On Liberty" और Representative Governmnet में लोकतंत्रात्मक शासन को संदेह की दृष्टि से देखा, परन्तु वह एक लोकतांत्रिक विचारक हैं, वह ब्रिटेन के लोकतंत्र के समर्थक लेखकों में सबसे महान् विचारक हैं। मिल के अनुसार "आदर्श की दृष्टि से वही शासन सर्वोत्तम है, जिसमें सम्प्रभुता सम्पूर्ण समाज में केन्द्रित हो।" प्रतिनिध्यात्मक शासन के सम्बन्ध में मिल ने अपने विचार "प्रतिनिध्यात्मक शासन पर विचार" पुसतक में प्रतिपादित किया है। मिल के शब्दों में "प्रतिनिध्यात्मक शासन यह व्यवस्था है, जिसमें सम्पूर्ण जन समुदाय या उसका अधिकांश भाग अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा अन्तिम नियंत्रण शक्ति का प्रयोग करता है।" इस प्रकार से मिल एक श्रेष्ठ शासन में प्रजातंत्र और कार्यकुशलता के मध्य समन्वय स्थापित करने के पक्ष में था। इसके साथ में मिल–अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के पक्ष में था। मताधिकार के प्रयोग के लिए मिल ने कुछ योग्यताएं रखी हैं, जिसमें मतदाता के लिए शैक्षणिक एवं सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यताएं रखी। वे महिलाओं को भी मताधिकार दिलाने के पक्ष में थे और इसके परिणामस्वरूप से ब्रिटिश संसद के बाहर और भीतर दोनों स्थानों पर इस सम्बन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया गया और 1928 में महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया गया। इस प्रकार से मिल एक अन्तिम उपयोगितावादी एवं प्रथम व्यक्तिवादी था।

ए.वी. डायसी

विधि का शासन– डायसी विधि का शासन का आशय है कि इंग्लैण्ड के शासन का संचालन किन्हीं विशेष व्यक्तियों की इच्छा द्वारा नहीं, वरन् विधि के द्वारा ही किया जाना चाहिए। विधि सर्वोच्च है और कोई भी व्यक्ति विधि के नियंत्रण से बच नहीं सकता। उच्चतम स्तर के व्यक्ति से लेकर निम्न स्तर के व्यक्ति तक सभी विधि के सम्मुख समान है। विधि के शासन में निरंकुश विशेषाधिकार और सरकारी मनमानेपन का कोई स्थान नहीं है। ए.वी. डायसी ने अपनी पुस्तक में ब्रिटेन के लिए कहा है कि यहां व्यक्ति विधि के अधीन है और यहां पर विधि का शासन है, जहां निरंकुश प्रभुसत्ता और स्वेच्छाचारिता के लिए कोई स्थान नहीं है। डायसी के अनुसार "विधि के शासन से हमारा तात्पर्य केवल यही है कि हममें कोई भी विधि से ऊपर नहीं, परन्तु यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उसका पद या उसकी अवस्था कुछ भी हो, राज्य की साधारण विधि के अधीन है और साधारण न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के अधीन है। डायसी के अनुसार– "वे नियम, जो कि अन्य राज्यों में स्वाभावित: संविधानिक संहिताओं के अंग होते हैं, अंग्रेजी भाषाभाषी राज्यों में व्यक्तियों मे न्यायालयों द्वारा परिभाषित और प्रवृत्त अधिकारों के स्रोत न होकर उनके परिणाम होते हैं"। डायसी ने अपनी प्रसिद्ध रचना संविधान की विधि में विधि शासन के तीन पक्षों को बताया।

2.3 विधि के शासन की विशेषताएं

प्रो. डायसी ने ब्रिटेन में विधि के शासन को संविधान का प्रमुख अंग माना है। उनके अनुसार विधि के शासन

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

की तीन प्रमुख विशेषताएं हैं–

1. विधि की सर्वोच्चता।
2. सभी नागरिकों के लिए एक ही प्रकार की विधि और न्यायालय।
3. विधि का शासन व्यक्ति के अधिकारों का रक्षक।

1. विधि की सर्वोच्चता– हेगन और पावेल के अनुसार "जो लोक सरकार बनाते हैं, वे लोग मनमानी नहीं कर सकते। उनको अपनी शक्ति संसद द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार ही प्रयोग में लानी होती है।" किसी व्यक्ति को तब तक दण्ड नहीं दिया जा सकता और न उसके शरीर या सम्पत्ति को किसी प्रकार की क्षति पहुंचाई जा सकती है, जब तक कि उसने कानून का उल्लंघन न किया हो और यदि किसी साधारण न्यायालय द्वारा साधारण ढंग से साबित न किया गया हो।

2. सभी नगारिकों के लिए एक ही प्रकार की विधि और न्यायालय– डायसी ने कहा है कि "हमारे लिए प्रधानमंत्री से लेकर एक सिपाहिया कर वसूल करने वाले तक प्रत्येक कर्मचारी का दायित्व, प्रत्येक ऐसे कर्म के लिए जो कानून के अन्तर्गत मान्य हो, उतना ही है, जितना किसी साधारण नागरिक का होता है।" अर्थात् 'आकेंचन से लेकर प्रधानमंत्री तक' (From the Panper to the Prime Minister) एक ही कानून के अधीन हैं।

3. विधि का शासन व्यक्ति के अधिकारों का रक्षक– डायसी के अनुसार "केवल उस दशा को छोड़कर जब सामान्य नागरिक विधि द्वारा यह निर्णय कर दिया गया है कि कानून का स्पष्ट उल्लंघन होता है, किसी व्यक्ति को न कोई दण्ड दिया जा सकता है और न उसे किसी प्रकार की शारीरिक या आत्मिक हानि पहुंचायी जा सकती है।

इस अर्थ में विधि का शासन, शासन की उस प्रत्येक व्यवस्था के विरूद्ध है, जो अधिकारी व्यक्तियों द्वारा अन्यों पर प्रतिबन्ध लगाने की क्षति के व्यापक, स्वेच्छापूर्ण तथा विवेकगत प्रयोग पर आधारित हों"। डायसी के नियमों पहला सिद्धान्त नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं की रक्षा करता है। यही कार्यपालिका को स्वेच्छाचारी बनने से रोकता है। दूसरा सिद्धान्त देश में पूर्ण कानूनी समानता स्थापित करता है। सभी नागरिक चाहे वे साधारण व्यति हों या सरकारी कर्मचारी, देश की साधारण विधि के अधीन है और उन पर लगाये गये आरोपों की सुनवाई साधारण न्यायालयों द्वारा ही होगी। तीसरा सिद्धान्त इस बात की ओर संकेत करता है कि भारत और अमेरिका के विपरीत ग्रेट ब्रिटेन का संविधान नागरिकों को मूल अधिकारों की लिखित गारण्टी नहीं देता फिर भी इंग्लैण्ड में नागरिकों को अधिकतम स्वतंत्रता प्राप्त है। इसका श्रेय उस देश के न्यायिक निर्णयों को जाता है।

2.4 मानवाधिकारों का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य

मार्क्सवाद के पुरोधा एवं मूल सिद्धान्तकार– कार्ल मार्क्स, एंगेल्स एवं लेनिन मानवाधिकारों के प्रश्न में एक बिल्कुल नवीन दृष्टि अपनाते हैं। मार्क्सवाद नैतिक विश्वासों एवं सिद्धान्तों की व्याख्या वर्ग–संरचना एवं वर्ग–संघर्ष के सन्दर्भ में करता है, जिनका निर्धारण उत्पादन के साधनों एवं उत्पादन के तरीकों से होता है। मार्क्सवादियों का कहना है कि वास्तव में अस्तित्वगत मानवाधिकार और कुछ नहीं, पूंजीवादी समाज का ढोंगपूर्ण व्यर्थ विचार है, जिनका व्यवहारिक परिस्थितियों से दूर–दूर तक का सम्बन्ध नहीं है। मार्क्सवादी मानते हैं कि मानवाधिकारों का कामगार वर्ग की विषम एवं दयनीय परिस्थितियों से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। मार्क्सवादियों की दृष्टि में स्वतंत्रता से समानता, विशेषतः आर्थिक समानता (उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व) अधिक महत्वपूर्ण है। उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व को मार्क्सवाद (साम्यवाद) का मूल आधार माना जा सकता है। मार्क्सवादियों की व्यवस्था में मात्र एक अधिकार अस्तित्व में है, और वह है– 'क्रांति का अधिकार'। मार्क्स की दृष्टि में मानवाधिकार पूंजीवादी समाज के उप–उत्पाद है। इन पूंजीवादी समाज के अधिकारों में सम्पत्ति का अधिकार, धार्मिक विश्वास/अन्तःकरण का अधिकार तथा ऐसे अधिकार सम्मिलित हैं, जो मानव को व्यवसाय एवं विश्वास की स्वतंत्रता देते हैं किन्तु जहां तक मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रश्न है, मार्क्सवादियों की दृष्टि में ये सभी अधिकार मानव से मानव के अलगाव से सृजित किए गए हैं, न कि ये समुदायों या लोगों के समरस सम्बन्धों पर आधारित है और यहीं अलगाव व अन्तर्विरोध बूर्ज्वा समाज का आधार है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

मानवाधिकारों की मार्क्सवादी दृष्टि का आरम्भ–बिन्दु मार्क्सवादियों द्वारा 1789 की फ्रांस की राज्य क्रान्ति के 'मानव एवं नागरिकों के अधिकारों के घोषणा–पत्र' की आलोचना के साथ माना जा सकता है जिसे मार्क्स ने ऐसी 'बूर्ज्वा घोषणा' कहा जिसे 'अहंवादी मानव द्वारा बनाया गया है तथा जिसमें समाज के ऊपर 'व्यक्ति' को प्रधानता दी गई है। वस्तुतः मानवाधिकारों का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य वैयक्तिक अधिकारों के स्थान पर सामाजिक अधिकारों की वकालत करता है। मार्क्स के अनुसार इन निजी अधिकारों की मान्यता के पीछे–पीछे बाजार–सम्बन्धों का वैश्विक विस्तार सम्पूर्ण समाज में होता रहा है। इसे प्रारम्भ में यूरोपीय उपनिवेशवाद के प्रथम चरण में प्रारम्भ हुई पूंजी के आदिम संग्रहण की अवस्था से आरम्भ माना जा सकता है, और बाद में यह पूंजीवादी घेरे के वैश्वीकरण में पूर्व हुआ। इस प्रकार के निजी अधिकार श्रमिक के 'स्वतंत्रतापूर्वक' बाजार में वैधानिक समझौतों के माध्यम से श्रम बेचने के अधिकार के हास्यास्पद रूप से पर्याय थे। बाद में औद्योगिक युग में अनेक श्रमिक कारखानों एवं शहरों में एकत्रित होने लगे। व्यक्तिवादी बूर्ज्वा, विचारधारा ने उत्पादन के साधनों के स्वामित्व को एक 'प्रतियोगी 'आर्थिक मानव' के रूप में शेष बहुसंख्यक समाज से विच्छिन्न कर दिया।'' आर्थिक मानव का सिद्धान्त मानव के आर्थिक सिद्धान्तों में से वह सिद्धान्त है जो मानव को विवेक प्रधान एवं ऐसा आत्म केन्द्रित प्राणी मानता है, जो निरन्तर धन की इच्छा करता है, अनावश्यक श्रम करने से बचना चाहता है और इस दिशा में कार्य करने एवं निर्णय लेने की योग्यता भी जिसमें जन्मजात रूप से है। इसी 'आर्थिक मानव' को मार्क्सवाद अपने विश्लेषण का आधार बनाता है।

मानवाधिकारों की मार्क्सवादी प्रस्थापना मात्र निजी स्वतंत्रता के निषेध के साथ ही समाप्त नहीं हो जाती, वरन् इसका अंत 'निषेध के निषेध' के साथ होता है। मार्क्सवादियों के विचार में 'निजी सम्पत्ति' पूंजीवादी शासन में आत्यंतिक प्रक्रियाओं के उल्लंघन से अर्जित सम्पत्ति होती है जिसे पूंजीपति अपनी कमाई हुई निजी सम्पत्ति का नाम देते हैं। इस सम्पत्ति को पूंजीपति द्वारा अलगावबद्ध, स्वतंत्र श्रमिक–व्यक्तियों को उसकी श्रम–दशाओं को देखकर, आपस में जोड़कर, सत्यापित करके एकत्रित किया जाता है जिसमें प्रत्यक्षतः उसका कोई हाथ नहीं होता। यह निजी सम्पत्ति श्रमिक को शोषित करके कमाई जाती है और श्रमिक को श्रम के बदले मजदूरी–वेतन दिया जाता है जो मात्र इतना होता है कि श्रमिक जीवित रह सके। मार्क्स ने इसे 'डेटम' कहा है। उत्पादन का पूंजीवादी तरीका पूंजीवादी निजी सम्पत्ति को जन्म देता है। यह वैयक्तिक निजी सम्पत्ति का प्रथम 'निषेध' है जो सम्पत्ति के स्वामी के श्रम पर आधारित है, किन्तु पूंजीवादी उत्पादन पद्धति स्वयं प्रकृति के कानून का उल्लंघन करती है– यह पूंजीवाद द्वारा स्वयं अपना 'निषेध' है अर्थात् 'निषेध क निषेध'।

मानवाधिकारों का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य मानव के सामाजिक स्वभाव के सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अनुसार मानव सम्बन्धों के एक स्वाभाविक सहयोगी संजाल में रहता है, इसलिए मानवाधिकारों की मार्क्सवादी समालोचना अधिकांशतः आमूल परिवर्तनवादी (**Radical**) है। मार्क्स की दृष्टि में अधिकारों की उदारवादी संकल्पना वस्तुतः मनः प्रसूति सृष्टि मात्र है। यह मात्र भ्रम एवं छलावा है और वास्तव में इनकी सक्षमता का मानक यह है कि ये कितनी तीव्रता एवं व्यापकता के साथ श्रमिकों का शोषण करके बूर्ज्वा वर्ग को अधिकाधिक मुनाफा दे सकते हैं। इसके अलावा मार्क्सवादियों का कहना है कि उदारवादी समाज में जिस वैयक्तिक मूल्य की पुरजोर वकालत की जाती है, वह वास्तव में 'बाजार मूल्य' है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि मार्क्सवादियों की स्थिति पूर्णतः मानवाधिकारों को नकारने वालों की नहीं है। किन्तु इन अधिकारों की सक्षमता को सापेक्षतः पूंजीवादी समाज में वर्ग–संघर्ष की स्थिति को देखकर ही आंका जा सकता है। मार्क्सवादियों का मानना है कि पूंजीवादी समाज के अन्तर्विरोध असमानता के कारण है और इस असमानता के कारण समाज में वर्गों के बीच सामाजिक संघर्ष सदैव विद्यमान है। मार्क्स के अनुसार वर्गों के मध्य अन्तर्विरोध दूर करने पर आर्थिक असमानता समाप्त हो जाएगी और एक वर्गविहीन, शोषणविहीन राज्यविहीन समाज की स्थापना होगी, जिसे 'साम्यवाद' कहा गया है। तब व्यक्ति को किसी मानवाधिकार की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और व्यक्ति अपनी शक्ति का प्रयोग पूंजी के संचय के लिए अथवा वर्ग–संघर्ष करने के लिए नहीं, प्रकृति के नियंत्रण के लिए करेगा। ऐसे समाज में मानव को वे सभी अधिकार स्वतः ही प्राप्त होंगे, जो मानव होने के नाते उसके स्वभाव के अनुरूप उसे प्राप्त होने चाहिए और अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिए राज्य जैसे किसी शोषण के बाह्य कृत्रिम यंत्र की कोई आवश्यकता नहीं होगी। राज्य स्वतः ही विलुप्त हो जाएगा तथा भविष्य में 'अजायबघरों' की शोभा बढ़ायेगा।

इस प्रकार मानवाधिकारों का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य प्रथमतः, मानवाधिकारों की उदारवादी संकल्पना के

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

प्रतिक्रिया स्वरूप सामने आया है और द्वितीयः, यह उदारवादी समाजों में मानवाधिकारों के सम्बन्ध में यह विचार व व्यवहार के घोर अन्तर की ओर ध्यान आकृष्ट कर मानवाधिकारों के समााजिक–आर्थिक पहलू पर बल देता है। यह पूंजीवादी समाजों में उपस्थित घोर असमानता, अलगाव, कुण्ठा, यंत्रणा, घृणा को मानवाधिकारों के प्रवर्तन में सबसे बड़ी बाधा मानता है।

एक नये मार्क्सवादी के रूप में ग्रॉम्शी ने राज्य की सापेक्ष स्वायत्तता को मार्क्सवादी विचारधारा के परम्परागत तरीके में अंगीकार किया है। ग्रॉमसी ने दो स्तरों के अधिरचित समाजों की स्पष्ट पहचान बताई है–

1. राजनीतिक समाज– जो कि राज्य की शक्ति का अपने अधिकार क्षेत्र में प्रयोग में लाते हुए प्रतिनिधित्व करता है।

2. नागरिक समाज– जो कि आधार (निम्न स्तर) के अनुरूप और प्रभुत्व को काम में लेने के लिए उनकी सहमति पर निर्भर रहता है। ग्रॉम्शी ने प्रभुत्व के आधार को सूचित करते हुए, कहा कि पूंजीवादी समाज को, जिसके प्रमुख दो तत्व थे–

   (अ) राज्य (प्रदेश) के राजनीतिक समाज बल प्रयोग (अवपीड़न) से सम्बन्धित होना,

   (ब) नागरिक समाज, का विधिसम्मत् आधारों से सम्बन्धित होना।

नागरिक समाज के सन्दर्भ में ग्रॉम्शी ने विशेष रूपों से इस तथ्य पर बल दिया, कि इसमें परिवार के संस्थागत रूप में विद्यालय, चर्च उदाहरण स्वरूप कार्य करते हैं। ये संस्थाएं सत्ताधारी वर्ग के व्यक्तिगत रूप से परिचित व्यवहारिक नियमों और अगणित प्राकृतिक भिन्नता से प्राधिकार को व्यक्त करती है जिन्हें नागरिक समझ लेता है, जबकि राजनीतिक समाज या राज्य ''प्रत्यक्ष प्रभुत्व'' या ''न्यायिक शासन'' की संस्था के रूप में स्वयं का प्रयोग करती है। नागरिक समाज ने ''अधिनायकवाद'' का प्रयोग किया, समाज में पूर्ण रूप में "अधिनायकवाद" जो कि विश्वासों के बन्धनों, संस्थाओं को व वैसे ही समाज के सम्बन्धों को भी प्रस्तुत करती है। इस प्रभाव में नागरिक समाज पूंजीवादी संस्थाओं के शासन को न्यायोचित ठहराया गया, जिससे उनकी सर्वोच्चता को कोई चुनौती नहीं दे सके। पूंजीवादी समाज, मुख्य रूप से अपनी स्थिरता के लिए इन संस्थाओं की क्षमता पर निर्भर करती है। यह तब ही हो सकता है जब नागरिक समाज असहमति को रोकने में असफल हो जाता है तब राजनीतिक समाज को बल प्रयोग के आश्रय की आवश्यकता पड़ती है।

2.5 मानवाधिकारों की गांधीवादी परिप्रेक्ष्य

गांधी को दक्षिणी एशिया में मानवाधिकारों का महानतम पैरोकार माना जाता है। पश्चिमी जगत् में गांधी शान्ति एवं अहिंसा के दूत एवं एक मानवाधिकार कार्यकर्त्ता के रूप में विख्यात हैं। महात्मा गांधी एक विशिष्ट दार्शनिक पृष्ठभूमि की उपज थे। हिन्दू राजदर्शन की परम्परा अत्यन्त विकसित एवं उन्नत थी। इसमें अधिकारों की जगह कर्त्तव्यों, व्यक्ति की जगह समाज, इहलोक की जगह अधिकांशतः परलोक, प्रतिस्पर्धा की जगह सहयोग एवं संघर्ष की जगह समरसता को अधिक प्राथमिकता दी गई थी। इसमें व्यक्ति का मूल्य, गरिमा, प्रतिष्ठा एवं महत्ता उस रूप में प्रतिष्ठित नहीं थी जिस रूप में पाश्चात्य उदारवादी दार्शनिक परम्परा में ख्यात है। चूंकि पाश्चात्य दर्शन में व्यक्ति को पूर्ण, अखण्ड, स्वायत्त एवं आत्म निर्भर इकाई माना गया, इसलिए व्यक्ति की स्वतंत्रता, उसकी गरिमा एवं प्रतिष्ठा पाश्चात्य उदारवादी दार्शनिक परम्परा में सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्वीकारी गई है। जबकि भारतीय परम्परा ठीक इसके उल्टी है। व्यक्ति स्वातंत्र्य पर बहुत अधिक बल नहीं दिये जाने के कारण इसमें व्यक्ति के विकास एवं व्यक्ति की सुरक्षा को कोई विचार, कोई योजना प्राप्त नहीं होती। भारतीय परम्परा में व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय की महत्ता पर बल दिया जाता रहा है और इसमें व्यक्तियों में मूलभूत असमानताओं को सहज माना गया है। इसमें सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक संघर्ष जैसे विचार भी प्राप्त नहीं होते। वस्तुतः भारतीय परम्परा का मूलभूत बल ऐसी सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था का सृजन–संरक्षण करना था, जो दो सिद्धान्तों 'दंड' एवं 'धर्म' पर आधारित हों। भारतीय परम्परा का दूसरा आधार अर्थात् "धर्म" मानवाधिकारों के बारे में गांधीवादी दृष्टि को स्पष्ट करने में सहायता करता है क्योंकि गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन–दर्शन ही 'धर्म' को स्वयं अपने जीवन में लागू करने के साथ–साथ दूसरों को भी 'धर्म' के रास्ते में अग्रसर होने हेतु अनुप्राणित करता है।

गांधी जी भारतीय या पाश्चात्य दर्शन में निष्णात् एक प्रशिक्षित दार्शनिक नहीं थे किन्तु प्रवास के दौरान

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

अपनी वकालत की पढ़ाई एवं पाश्चात्य विचारों के गहन अध्ययन से उन्हें पश्चिमी राजदर्शन के मूलाधारों का व्यवहारिक ज्ञान हो चुका था, लेकिन पश्चिमी परम्परा का "अधिकारों का विचार" गांधी जी को स्वीकार नहीं था। उन्होंने कई आधारों पर पश्चिमी पूंजीवाद की निन्दा की और उसे एक 'रोग' बताया। इसके पीछे भी मानवतावादी गांधी की दृष्टि थी क्योंकि उनके अनुसार पूंजीवादी समानता में मनुष्य स्वार्थी, लाभोन्मुख, प्रतिस्पर्धी और आत्म केन्द्रित हो जाता है तथा वह 'मशीन का एक पुर्जा" बन जाता है। ऐसे में उसके मानवाधिकार सुरक्षित नहीं रह सकते। उन्होंने पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा चलाए जा रहे 'अधिकारों के लिए आन्दोलन' का भी कभी समर्थन नहीं किया।

1946 के दशक में गांधी जी प्रख्यात ब्रिटिश इतिहासकार एच0जी0 वेल्स के निकट सम्पर्क में थे, और वेल्स ने गांधी जी को जब इस दौर में मानवाधिकारों की एक सूची तैयार कर दिखाई तो गांधी जी ने कहा– "इसे मनुष्य के 'अधिकारों' से नहीं प्रबुद्ध 'मनुष्य के कर्त्तव्यों' से प्रारम्भ करो। .... और मैं विश्वास दिलाता हूं कि 'कर्त्तव्यों', के पीछे 'अधिकार' स्वयं चले आएंगे जैसे जाड़े के पीछे बसन्त चला आता है। यह मैं अपने अनुभव के आधार पर लिख रहा हूं। एक युवा के रूप में मैंने 'अपना जीवन 'अधिकारों' की मांग पर बल देते हुए प्रारम्भ किया था, किन्तु शीघ्र ही मुझे आभास हुआ कि मेरे पास वास्तव में कोई अधिकार नहीं है, अपनी पत्नी के ऊपर भी नहीं। इसलिए अब मैंने यह सीखना प्रारम्भ किया है कि मैं अपनी पत्नी, बच्चों, मित्रों एवं समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का किस रूप में निर्वहन करूं, तब से मैंने पाया है कि मेरे पास व्यापक/विशाल अधिकार है– कदाचित, इस विश्व में रहने वाले किसी भी जीवित मानव से अधिक।"

जुलाई, 1947 में महात्मा गांधी ने अपने इस सारपूर्ण विचार को अपने प्रमुख पत्र "हरिजन' में और व्यापक रूप से स्पष्ट करने की चेष्टा की है। इस पत्र में 'अधिकार या कर्त्तव्य' शीर्षक पर लिखे अपने वक्तव्य में गांधी लिखते हैं– जो महान बुराई आज हमारे समाज को भी दूषित कर रही है, वह यह है कि जमींदार, एवं पूंजीपति, मजदूर और राजकुमार सभी 'अधिकारों' की मांग कर रहे हैं। स्वतंत्रता के तुरन्त पश्चात् गांधी ने चेतावनी दी थी कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों को भूलकर मात्र 'अधिकारों' पर ही बल देता रहेगा तो समाज में घोर अराजकता एवं भ्रम उत्पन्न हो जाएगा। इसलिए वे प्रत्येक मनुष्य से अपने यथेष्ट कर्त्तव्यों को निभाने की बात करते हैं। स्पष्टतः गांधी एक पश्चिमी उदारवादी विचारक नहीं थे। वे मानव–स्वभाव एवं मानवता के बारे में बिल्कुल ही भिन्न प्रस्थापनाएं लेकर अवतरित हुए थे और आगे बढ़ रहे थे। इस सन्दर्भ में वह हिन्दू राजनीतिक चिन्तन के 'धर्म' सम्बन्धी विचार से सर्वाधिक प्रभावित हैं किन्तु गांधी सदैव गरीब एवं दलित दोनों के पक्ष में रहे और उन्होंने निम्न जातियों को 'हरिजन' और गरीबों को 'दरिद्र नारायण' कहा। ऐसा करना उन्हें एक आधुनिक विचारक बनाता है और उदारवाद के निकट ले जाता है।

गांधी एक 'नैतिक व्यक्तिवादी' थे। उनके नैतिक समाज के स्वप्न का आधार दो अवधारणाएं थी– जो स्वयं गांधी के व्यक्तिगत जीवन में उनके मार्गदर्शी सिद्धान्त बने रहे। इन्हीं अवधारणाओं पर भारत के स्वर्णिम भविष्य की कल्पना गांधी ने दी थी। प्रथम अहिंसा का हिन्दू विचार अर्थात् दूसरों को न मारना, न सताना, यहां तक कि कुविचार और जगत् को आवश्यक वस्तु को अपने पास रखना भी गांधी की अहिंसा में समाविष्ट थे। दक्षिणी अफ्रीका में अपने प्रवास के दौरान गांधी जी का अन्य धर्मों व धर्मावलम्बियों से भी परिचय हुआ, जिससे उनके हृदय में सभी प्राणियों के प्रति दया एवं करूणा का भाव जागा। दूसरा आधार 'सर्वोदय' का है, जो सभी के महत्तर कल्याण एवं अच्छाई की बात करता है। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि– 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'।

इस प्रकार गांधी जी ने व्यापक विश्व के विचारों के परिप्रेक्ष्य में नैतिकता में जुड़ी हुई सामाजिक व्यवस्था का प्रस्ताव रखा किन्तु इसमें भी वे मूलतः हिन्दू दार्शनिक परम्परा से ही अधिक प्रभावित थे। गांधी जी का 'सत्याग्रह' सम्बन्धी विचारों का ताना–बाना उनकी सत्य सम्बन्धी प्रस्थापनाओं एवं विश्वासों पर बुना गया है। ये विश्वास है– मानव जीवन की आध्यात्मिकता में विश्वास, सभी प्रकार के जीवन की अन्तर्निर्भरता, कार्य–पद्धति के नैतिक उपायों के वरण की आवश्यकता, और सबसे ऊपर 'अहिंसा' का अनिवार्य सिद्धान्त अर्थात् कार्य करने का अहिंसक तरीका। ये अन्तर्निर्भर आदर्श ही गांधी के 'सत्याग्रह' के प्रति प्रतिबद्धता की नींव है। सत्याग्रह ही सत्य को प्राप्त करने का एकमात्र नैतिक तरीका है जिसके माध्यम से हम संघर्ष की किसी भी स्थिति में सम्पूर्ण मानवता की नैतिक ईमानदारी एवं उसके वास्तविक मानवीय गुणों की रक्षा कर सकते हैं। इस प्रकार, गांधी की दृष्टि में सत्याग्रह उनके अपने लिए और जिनसे वे घिरे हैं, उनके लिए सत्य के प्राप्त करने एवं बुराई के विरोध करने का एकमात्र 'वीर' एवं "नैतिक अस्त्र' है। सत्याग्रह की रणनीति का अध्ययन कर कोई भी यह कह सकता है कि गांधी

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

ने इसे प्रतिरोध करने का अधिकार नहीं माना था वरन् वे इसे गल्ती/बुराई को ठीक करने हेतु प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक कर्त्तव्य मानते थे।

गांधी एक ओर 'कर्त्तव्यों' पर बल देकर दूसरे हाथ से 'अधिकार' स्वतः प्राप्त हो जाने का विचार रखते हैं किन्तु ऐसा नहीं कि वे अधिकारों का समर्थन ही नहीं करते थे। उन्होंने व्यक्ति के और एक समूह के रूप राष्ट्र की स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता (स्वराज) एवं राष्ट्र के आत्मनिर्णय के अधिकार की वकालत की। गांधी ने अंग्रेजी शब्द 'इंडिपेंडेंस' का बहुत कम प्रयोग किया है, इसकी जगह उन्होंने हिन्दी शब्द 'स्वराज' का प्रयोग किया है। अपने मूल अर्थ में इसका तात्पर्य 'स्वशासन' है। लेकिन गांधी के लिए इसका तात्पर्य आत्मनियंत्रण एवं आत्म–विनियमन के सारे निहितार्थों से भी है। इसीलिए गांधी शक्ति/सत्ता के विकेन्द्रीकरण की बात करते हैं, जहां सम्पूर्ण गांव एक 'गणतंत्र' में तब्दील हो जाए। गांधी के इस विचार को कमोवश आज पंचायतीराज के रूप में संवैधानिक दर्जा प्राप्त है, जो और कुछ नहीं स्व–विनियमन पर आधारित 'अधिकारों की कम 'कर्त्तव्यों' की व्यवस्था अधिक है। वस्तुतः गांधी का सपना यह था कि ऐसा आमूल सामाजिक परिवर्तन हो, जो 'मानव अधिकारों' पर कम 'मानव कर्त्तव्यों' पर बल देता हो और उसका रास्ता 'अधिकारों' से स्वतंत्रता की ओर का न होकर 'कर्त्तव्यों से स्वतंत्रता की ओर' का हो।

महात्मा गांधी राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में सुधार कर एक वर्गविहीन समाज की स्थापना का विचार रखते थे। उन्होंने धर्म, जाति, नृवंश आदि के आधार पर मनुष्यों में होने वाली घृणा एवं हिंसा का विरोध किया तथा जीवनपर्यन्त साम्राज्यवाद, साम्प्रदायिकता, नस्लवाद एवं अस्पृश्यता जैसी बुराईयों के विरोध में खड़े रहें। उन्होंने पूंजीवाद के असीमित प्रसार की निंदा की और इसके अन्तर्गत गरीबों एवं शोषितों की दयनीय दशाओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया। गांधी जी ने अनेक अभियान मात्र उन गरीब निम्न जातीय लोगों के लिए चलाए जो शोषण एवं असमानता का शिकार थे। यह सब गांधी को एक 'अधिकार–कार्यकर्त्ता', बनाते हैं। वस्तुतः गांधी के विचार–दर्शन पर सूक्ष्म दृष्टि डालने पर स्पष्ट हो जाता है कि वे वास्तव में मानवाधिकारों की परिभाषा एवं संरक्षण की चिन्ता नहीं करते थे प्रत्युत वे समाज में जड़ जमाई हुई उन बुराईयों एवं गलतियों को जड़ से उखाड़ देना चाहते थे जिनके कारण समाज में असमानता, शोषण, हिंसा, संघर्ष, प्रतिस्पर्धा जन्म लेती है।

गांधी ने गरीबों एवं दीनों की बजाय शक्तिशाली एवं शोषक लोगों को नैतिक रूप से जगाने और उनमें नैतिक दृष्टि पैदा करने का प्रास अधिक किया। उन्होंने कहा कि शक्तिशाली एवं समृद्ध लोगों को यह समझना होगा कि वे सदैव एक नैतिक आध्यात्मिक प्राणी की तरह व्यवहार करें ताकि वे वास्तविक मनुष्य बन कर 'सत्य' को प्राप्त कर सकें। सत्य की प्राप्ति और अपने नैतिक कर्त्तव्यों के आभास हो जाने के बाद कोई भी व्यक्ति दूसरों के द्वारा किए जा रहे सामाजिक व आर्थिक शोषण को नहीं सहेगा और ऐसे व्यक्ति को सब व्यक्ति अपने ही व्यक्तित्व के विस्तार प्रतीत होंगे– अपने ही 'अहम् के इदम्।

इस प्रकार गांधी का अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं की प्राप्ति– का विचार सम्पूर्ण मानवता के लिए है। यह भौगोलिक सीमाओं से परे है– 'सबकी आंखों के आंसू उजले, सबके सपनों में सत्य पला'। यह विश्वव्यापी आदर्श है जो अपने में सम्पूर्ण मानवता के सारे वर्गों एवं समूहों का समाविष्ट कर लेता है और जिसे आज भी "सार्वभौम रूप में स्वीकारणीय' माना जाता है।

2.6 दलित अवधारणा

डा0 अम्बेडकर ने अस्पृश्यता निवारण का संकल्प देते हुए प्रतिज्ञा की थी कि "मैं हिन्दू धर्म में पैदा हुआ, क्योंकि यह मेरे हाथ की बात नहीं थी, परन्तु मैं हिन्दू धर्मावलम्बी रहकर नहीं मरूंगा। "और अन्त में अम्बेडकर ने 14 अक्टूबर 1956 को को बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया।

दलित का तात्पर्य– जो सदियों से एक वर्ग विशेष के रूप में समाज में निम्न, अस्पृश्य, अमानवीय, अप्रतिष्ठित हो और शैक्षिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से असमान हो एवं जिन्हें स्वतंत्रता प्राप्त न हो और समान न्याय प्राप्त नहीं होता हो, जिसमें इन्हें अपने ऊपर हुए अन्याय एवं अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाने की अन्य के समान अधिकार नहीं दिया गया हो। यह वर्ग दलित कहलाता है। अम्बेडकर ने लिखा है कि "भारत में अछूत कहीं पर भी गया, वह दूसरों के लिए लाभदायक होता है और उसके सामने अनेक कठिनाईयां आती है।" डा. अम्बेडकर ने अस्पृश्यता की जड़ों को कुरेदा और दलितोद्धार के लिए यह लिखा कि ईश्वर का अस्तित्व, आत्मा की अमरता और और पुनर्जन्म व वर्णाश्रम व्यवस्था अस्पृश्यों के शोषण और पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

हैं, अतः जब तक उन्हें मिटा नहीं दिया जाता तब तक सामाजिक न्याय की स्थापना नहीं की जा सकती। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था (समाज के चार वर्णो– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) को जन्म देने वाली मनुस्मृति का अस्पृश्य समाज के कुछ साधुओं द्वारा दाह संस्कार करवाया। जहां डा. अम्बेडकर ने हिन्दुओं की यातनाएं भोगी वहीं हिन्दू धर्म ग्रन्थों को पढ़कर यही निष्कर्ष निकाला कि हिन्दुओं की नीयत शूद्रों (दलितों) को ऊपर उठाने की नहीं है।

दलित का तात्पर्य है, ऐसे व्यक्ति जो सदियों से सामाजिक,, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से निम्न समझा गया और वे सदैव अपमान व अमानवीय व्यवहार को सहन करते रहे और जिन्हें, समाज सदैव अस्पृश्य समझती रही। दलित को केवल कर्त्तव्य ही सौंपे गये और अधिकारों से वंचित रखा गया और सदैव उन्हें लज्जित किया जाता रहा।

भारत में दलितों के अधिकारों के लिए अनेक विद्वानों, विचारकों, संतों ने अपने–अपने मत दिये, जिनमें चक्रधर, रामानन्द, चैतन्य, कबीर, तुकाराम, एकनाथ, ज्योतिबा फुले, राजा राममोहन राय, पं. मदन मोहन मालवीय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, डा. भीमराव अम्बेडकर इत्यादि। दलितों को उनको उनके मानव होने के नाते, जो भी प्रयास किये गये और उनको उनके मानव होने का गौरव प्रदान करने के जो भी कार्य किये गये, वे सभी दलितों के उदार के उदाहरण हैं। इसके माध्यम से दलितों को समाज में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समानता और स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए न्याय, बन्धुत्व प्राप्त करने के प्रयास हुए और बहुत कुछ मात्रा में प्राप्त भी हुए हैं, फिर भी सम्पूर्ण रूप से यह विश्व दलितों के नाम दलितों का ही शोषण करने में नहीं चूकता है, जिसका ही यह नतीजा है कि बेरोजगारी, भुखमरी, बेकारी, आतंकवाद, अविश्वास इत्यादि बढ़ा है, और दिखावे में संवेदनशीलता को झूठ ढोंग पीटते हैं, विश्व के लिए यह स्थिति चिन्ताजनक है, इसके लिए मानवीय अधिकारों एवं कर्त्तव्यों पर बल दिया जाना चाहिए, जिससे प्रत्येक दलित वर्ग समानता, स्वतंत्रता एवं न्यायपूर्ण वातावरण में मानवता के कल्याण की सोच सकें।

अम्बेडकर के लेख दलितोद्धार से ही सम्बन्धित थे, जिनमें प्रमुख लेख निम्नलिखित हैं– कास्ट्स इन इण्डियाः देयर जेनेसिज, मैकेनिज्म एण्ड डेवलपमेंट (1917); स्माल हॉल्डिंग्स इन इण्डिया एण्ड देयर रैमीडीज (1918); एनीहिलेशन ऑफ कास्ट– विद ए रिपालाई टू महात्मा गांधी (1935), ऑन पार्लियामेंट्री डेमोक्रेसी (1952); बौद्धिज्म एण्ड कम्युनिज्म (1956)। स्पीच इनके अलावा निम्नलिखित समाचार–पत्र इन्होंने निकाले मूकनायक (1920); बहिष्कृत भारत (पाक्षिक 1923); जनता (साप्ताहिक 1929); प्रबुद्ध भारत (1955); इत्यादि। इन सभी कृतियों, लेख एवं समाचार–पत्रों के माध्यम से इन्होंने दलितोद्धार करने का भरसक प्रयास किया। यही नहीं, भारतीय संविधान में इन दलितों को आरक्षण दिलवाने में भी ये सफल रहे। अम्बेडकर ने एक बार कहा था कि "मेरे दुख–दर्द और मेहनत को तुम नहीं जानते, जब सुनोगे, तो रो पड़ोगो।" इनका जीवन एक–एक में अनेक बार इनके साथ भेदभाव हुए एवं अछूत के रूप में समझे जाने के बावजूद ये भारतीय संविधान को प्रारूप देने में सफल रहे।

अम्बेडकर ने दलित वर्गों के उत्थान के लिए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं नैतिक इत्यादि समस्त स्तरों पर संगठित अभियान एवं कार्यक्रम संचालित किये जाने की आवश्यकता प्रतिपादित की। अम्बेडकर ने दलितों को त्रिसूत्रीय उपदेश दिया कि "शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो।" अम्बेडकर की मान्यता थी कि सामाजिक व्यवस्था में वांछित परिवर्तनों के लिए स्वयं दलित वर्गों को जागरूक और संगठित होना होगा, इसके लिए वे बुद्ध के उपदेश का स्मरण कराते हैं कि "हे आनन्द। तुम स्वयं ही अपना प्रकाश बनो, तुम स्वयं ही अपनी शरण में जाओ, किसी अन्य की कभी शरण न लो।" अम्बेडकर दलितों के उत्थान के लिए अहिंसात्मक संघर्ष में जुट गये और जीवनभर इसी कार्य में लगे रहे।

अम्बेडकर ने भारतीय संविधान के प्रमुख शिल्पी के रूप में संविधान का प्रारूप तैयार किया, जिसमें दलितोद्धार के लिए सम्पूर्ण व्यवस्था की। डा. अम्बेडकर ने दलितोद्धार की दिशा के लिए मुख्यतः निम्नलिखित किये–

1. जाति प्रथा एवं वर्ण व्यवस्था का विरोध करना,
2. हीन भावनाओं एवं आदतों के परित्याग पर बल,
3. शिक्षित बनो, आन्दोलन करो, संगठित रहो का नारा देना,

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

4. समाज में क्रान्ति के लिए प्रयास करना,

5. दलितों में जन जागृति जाने का प्रयास करना।

6. दलित वर्गों के लिए विधान मण्डलों में पृथक और पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिलाना,

7. प्रशासन में दलित वर्गों की भागीदारी के लिए सेवाओं में आरक्षण,

8. भारतीय संविधान का निर्माण और अस्पृश्यता निवारण,

9. भारत का औद्योगीकरण करना इत्यादि।

डा. अम्बेडकर ने शूद्रों, अति शूद्रों और दलितों का उद्‌गम हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों के वेद, गीता, श्रुति, पुराण आदि में माना है और इसमें पहले जातियां/वर्ण केवल कर्म पर आधारित थे, परन्तु अम्बेडकर के अनुसार 400ई. में अस्पृशतया और वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर शुरू हो गयी। स्वयं अम्बेडकर ने अपने ग्रन्थ "हू वर दि शूद्राज" में शूद्र को सूर्यवंशी क्षत्रिय माना है और कहा है कि पहले केवल तीन ही वर्ण अस्तित्व में थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय में युद्ध होने के कारण यह समाज से अलग हो गया और उसे वैश्यों से निकृष्ट समझा जाने लगा।

जातिवाद ने अस्पृश्यों को सामाजिक रूप में अत्यन्त निम्न आर्थिक दृष्टि से हीन और राजनीतिक दृष्टि से उदास बना दिया। अम्बेडकर के अनुसार वर्णाश्रम धर्म ने अस्पृश्यों को शिक्षा विहीन, व्यवसाय विहीन, धन विहीन और शस्त्रविहीन बना कर रखा है। स्वयं डा. अम्बेडकर कहते हैं कि "जाति संस्था का नाश ही समानता का निर्माण है और इसके लिए अन्तर्जातीय विवाह होना और पुराहिताई के व्यवसाय का प्रजातंत्रीकरण करना अनिवार्य है।

अम्बेडकर ने दलितों के लिए तीन सूत्रीय मंत्र दिया– "शिक्षित बनो, आन्दोलन चलाओ और संगठित रहो।" समाज में क्रान्ति लाने के लिए स्वयं अम्बेडकर ने महार आनुवांशिक कार्यभार कानून को समाप्त करने का प्रयास किया और 1927 ई. में महार तालाब सत्याग्रह व 1930 ई. में नासिक के कालाराम मन्दिर में प्रवेश व इससे पूर्ण 1928 ई. में मुम्बई विधान सभा में महार आनुवांशिक कार्यभार विधेयक से महारों को मुक्ति दिलवाना और महार आन्दोलन के समय अस्पृश्यों को हीन भावनाओं और आदतों के परित्याग करने पर बल दिया।

अस्पृश्यों (दलितों) की जागृति के लिए 1920 में 'मूकनायक' नामक पत्र में लिखा कि "यदि भारतवासियों को ब्रिटिश शासन से मुक्ति चाहिए, अपना स्वराज्य चाहिए तो उन्हें अस्पृश्यों को पहले मुक्त करना चाहिए"। अम्बेडकर ने 24 जुलाई 1924 को "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" की स्थापना की व बम्बई में सिद्धार्थ कॉलेज और पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की।" सन् 1929 ई. में धारवाड़ में अम्बेडकर ने भाषण में कहा था कि "सच्ची प्रगति राजनीतिक ताकत हाथ में आने पर ही सम्भव हो पाती है।" प्रधानमंत्री मैक्डोनाल्ड के अगस्त 1932 के साम्प्रदायिक अधिनिर्णय ने दलितों को स्वतंत्र मतदान संघ और सुरक्षित स्थान दोनों अधिकार प्रदान कर दिये, साथ ही वे हिन्दू प्रतिनिधियों के चुनाव में भी मताधिकार का उपयोग कर सकते थे।

येवला सम्मेलन में कहा था कि मेरा हिन्दू धर्म में जन्म हुआ, यह मेरे हाथ की बात नहीं थी, परन्तु हिन्दू धर्मावलम्बी रह कर मरूंगा नहीं। इसी सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित किया कि "अस्पृश्य समाज हिन्दू धर्म का त्याग कर ऐसा धर्म अपनाए, जिसमें सामाजिक और धार्मिक समता हो।" नागपुर में डा. अम्बेडकर ने 14 नवम्बर, 1956 ई. को भिक्षु चन्द्रमणी महास्थविर से त्रिसरण पंचशील ग्रहण कर बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। इस समय अम्बेडकर ने 22 प्रतिज्ञायें भी ली।

भारतीय संविधान में भी उद्देशिका, अनुच्छेद 14, 15, 16, 17 इत्यादि में अस्पृश्यता को रोकने का प्रयास किया है और यहीं नहीं संसद राज्यों की विधान सभाओं में भी निम्न जातियों के लिए आरक्षण का निर्धारण किया है। अम्बेडकर के अनुसार कृषि उद्योगों को सुदृढ़ बनाने के लिए राज्य को कृषि के लिए वित्तीय सहायता उपलबध करानी चाहिए तथा सिंचाई, उर्वरकों और उन्नत बीजों की भी व्यवस्था स्वयं राज्य करवाये।

फूले ज्योतिराव

ज्योतिराव फूले द्वारा भारत में जाति प्रथा से सम्बन्धित कर्मबद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। ये जाति व्यवस्था के विरोधी थे। इन्होंने जातिवाद का घोर विरोध किया है और अस्पृश्यों, विशेष रूप से हरिजनों के उत्थान

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

का मार्ग प्रशस्त किया और दलितों के उद्धार के लिए वर्तमान सामाजिक वयवस्था को सुधारने पर बल दिया है, जिसके आधार पर दलित सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय प्राप्त कर सके। समाज में किसी भी प्रकार के भेदभाव की कड़ी आलोचना करते हुए ज्योतिबा फूले ने वर्तमान व्यवस्था के जन्म के आधार पर आधारित सामाजिक संरचना का विरोध किया तथा कर्म आधारित समाज पर बल दिया। ये दलितोद्धार के सन्दर्भ में अम्बेडकर के पूर्वगामी के रूप में माने जा सकते हैं, इन्होंने दलितों के उत्थान के लिए वैचारिक धरातल तैयार किया, जिसे अम्बेडकर ने कार्य रूप प्रदान किया।

अम्बेडकर की तरह ही ज्योतिबा फूले ने दलितोद्धार का प्रयास किया था। ज्योतिबा फूले ने मनुस्मृति में वर्णित वर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षेत्रीय, वैश्य एवं शूद्र) का विरोध किया और कहा कि "कोई भी व्यक्ति जन्म से छोटा या बड़ा नहीं होता तथा उच्चता और निम्नता का विचार सामाजिक विकृतियों का प्रतीक है।" ज्योतिबा फूले ने स्त्रियों एवं दलितों को अनिवार्य शिक्षा दिलाने के प्रबल पक्षधर थे। जहां फूले ने वेदों एवं मनुस्मृति की कटु आलोचना की, वहीं ब्राह्मणों के वर्चस्व की भी कटु आलोचना की। मनुस्मृति एवं वेदों को भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना एवं सामाजिक एकता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा फूले मानते थे। फूले आधुनिक भारत के ऐसे महानतम शूद्र थे, जिन्होंने हिन्दुओं के दलित वर्गों को, सवर्णों द्वारा किये जा रहे अपराध, अन्याय, अमानवीय व्यवहार के प्रति जागरूक बनाया और कहा कि भारत के लिए विदेशी शासन से स्वतंत्रता की अपेक्षा सामाजिक लोकतंत्र अधिक महत्वपूर्ण हैं, जिसमें समानता, स्वतंत्रता, न्याय, अधिकार दलितों एवं अस्पृश्यों को भी प्राप्त हो सके।

2.7 मानवाधिकार का नारीवादी दृष्टिकोण

लैंगिक भेदभाव हमारे समाज का भद्दा चेहरा है। इसीलिए मानवाधिकारों का नारीवादी दृष्टिकोण हमारा ध्यान लैंगिक समानता एवं लैंगिक साम्यता की ओर आकृष्ट करता है। वस्तुतः लैंगिक भेदभाव एक वैश्विक एवं प्राचीन समस्या है। सारे संसार की आधी आबादी महिलाओं की है किन्तु लैंगिक भेदभाव के कारक उन्हें अलाभकारी स्थितियों में रखा जाता है। उन्हें पुरूष प्रधान समाज द्वारा हिंसा, क्रूरता, बलात्कार एवं शोषण का शिकार बनाया जाता है। पुरूष एवं नारी में समानता की अवधारणा भारत के संविधान के अधिनियमन से पहले औपचारिक रूप से अज्ञात थी। भारत के राष्ट्र का सर्वोच्च कानून (संविधान) अपनी प्रस्तावना में सभी नागरिकों, जिनमें नारी भी सम्मिलित है, को सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास एवं अन्तःकरण की स्वतंत्रता, प्रस्थिति एवं अवसर की समानता एवं मानवीय गरिमा को बढ़ाने वाली बंधुता प्रदान की गई है। वर्तमान समय में लैंगिक भेदभाव की सामाजिक व्याधि पर नारीवादी सिद्धान्तकारों द्वारा प्रश्न उठाए गए हैं और महत्वपूर्ण भेदभावों को चुनौती दी गई है। जैसे–जैसे मानवीय विकास का प्रश्न वैश्विक कार्यसूची में आता जा रहा है वैसे–वैसे लैंगिक न्याय एवं लैंगिक समानता के प्रश्न भी महत्वपूर्ण चुनौतियों के रूप में उभर रहे हैं।

नारीवाद के उन्नायकों का यह तर्क भी उचित प्रतीत होता है कि विभिन्न प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय विधियों के संस्थापक–जनक भी पुरूष ही रहे हैं जो निजी जीवन की राजनीतिक प्रकृति को मान्यता नही देते। राजनीतिक जीवन में अन्तर्राष्ट्रीय कानून अधिकांशतः इस पर निर्भर करता है कि प्रभावशाली क्रिया व्यापार करने वाला प्रभुत्वशाली वर्ग कौन है? वस्तुतः अन्तर्राष्ट्रीय कानून 'पुरूषों के द्वारा संहिताबद्ध किए गए और इन्हीं का इनके क्रियान्वयन तंत्र पर नियंत्रण रहा। इस कारण मानवाधिकार कानून एवं मानवाधिकार से सम्बन्धित ज्वलंत प्रश्नों में कभी कोई सह–अस्तित्व नहीं रहा। महिलाओं की सुरक्षा एवं मानवाधिकारों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय एवं अधिकांश राष्ट्रों में कानूनी तंत्र के अभाव या अपर्याप्त क्रियान्वयन के कारण परिवार एवं अधिकांश अन्य प्रकार के सभी समाजों में पुरूष' का ही प्रभुत्व रहा है। 20वीं सदी के अन्तिम दशक को इस सन्दर्भ में युगान्तकारी कहा जा सकता है जिसमें महिला अधिकारों को मानवाधिकारों के रूप में मान्यता दिलाई गई। अन्तर्राष्ट्रीय मंच में विभिन्न स्तरों पर महिला मानवाधिकारों हेतु लॉबिंग प्रारम्भ की गई जैसे उत्तरी अमरीका, लैटिन अमरीकी एवं यूरोपीय महिलाओं के संगठन घरेलू हिंसा, छेड़छाड़ एवं बलात्कार जैसे मुद्दों को प्रमुखता से उठाते रहे, वहीं एशियाई एवं अफ्रीकी महिला संगठन महिला स्वास्थ्य (एड्स, कुपोषण, एनीमिया आदि) एवं हिंसक प्रथाओं (महिला जननांग कर्तन) के विरूद्ध संघर्षरत हैं। इसी प्रकार मानवतावादी महिला संगठनों में किसी भी प्रकार की हिंसा एवं संघर्ष से महिला की सुरक्षा के मुद्दे को प्रमुखता से उठाया जा रहा है। दक्षिण पूर्वी एशिया एवं पूर्वी एशिया में अधिकांश

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

महिला संगठन धार्मिक उग्रवादी संगठनों से जन्मे हैं और वे महिला दुर्व्यवहार एवं वैश्यावृत्ति के विरोध में संगठित हुए हैं। इसके अलावा गैर–सरकारी संगठनों का एक विशाल समूह संयुक्त राष्ट्र संघ की महिलाओं के प्रति मूल्य–निर्माण एवं महिला अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय मानक तय करने में सहयोग कर रहा है।

वर्तमान दौर में महिला मानवाधिकारों के प्रश्न को प्रमुखता से वैश्विक स्तर पर उठाया जा रहा है और राज्यों द्वारा महिला मानवाधिकारों को मान्यता दी जा रही है और उन्हें क्रियान्वित करने हेतु तंत्र विकसित किए जा रहे हैं। भारत सहित विश्व के अधिकांश राष्ट्र–राज्य संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणा के हस्ताक्षरकर्त्ता है जिसमें कहा गया है कि सभी मनुष्य गरिमा एवं अधिकारों के मामले में स्वतंत्र एवं समान पैदा हुए हैं। इसलिए आज भारत सहित विश्व के अधिकांश राष्ट्र–राज्यों द्वारा लैंगिक भेदभाव के बिना कानून के समक्ष समानता के आदर्श को मूल अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है। यही नहीं, पुरूष व स्त्री दोनों को अवसर की समानता भी प्रदान की गई है। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणापत्र के प्रस्तावना में इस बात पर बल दिया गया है कि मानव परिवार के समस्त सदस्यों की जन्मजात गरिमा की मान्यता और सभी के समान व अहरणीय अधिकार विश्व में स्वतंत्रता, न्याय एवं शान्ति के आधार हैं।' 1975 का वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय महिला आन्दोलनों के इतिहास में एक मील का पत्थर माना जाता है। इस वर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष एवं अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक के आरम्भ वर्ष के रूप में मनाया गया और यहीं से महिला मानवाधिकारों हेतु उस यात्रा का आरम्भ हुआ, जिसकी परिस्थिति 1995 में बीजिंग में अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन के आयोजन के रूप में हुई। गरिमा एवं अधिकारों की दिशा में किए गए साझे वैश्विक प्रयासों के प्रतीक के रूप में प्रतिवर्ष 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाता है।

इस यात्रा का शुभारम्भ 1975 में मैक्सिको में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन के आयोजन के साथ हुआ। यहां से समस्त विश्व की महिलाएं कोपेनहेगन में एकत्रित हुई जहां द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में पहली बार महिला मानवाधिकारों पर एक दस्तावेज प्रकाशित किया गया, एक कार्य–योजना तैयार की गई और गैर–सरकारी संगठन मंच (एन0जी0ओ0 फोरम) स्थापित किया गया, जिसने असंख्य नेटवर्क स्थापित करके अपने क्रियान्वयन आधार को व्यापक बनाया। महिला संगठनों का यह विश्वव्यापी नेटवर्क कोपेनहेगन सम्मेलन की ही देन था, जिसके बाद निरंतर महिलाएं उनके जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर लामबंद हुई है।

उपरोक्त मंचों के अतिरिक्त महिला मानवाधिकारों के बारे में एक महत्वपूर्ण कानूनी प्रसंविदा 1977 में 'महिला के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव का उन्मूलन प्रसंविदा' के रूप में संहिताबद्ध की गई। यह प्रसंविदा वस्तुतः महिला मानवाधिकारों का "महाधिकार पत्र" (Magna-Carta) हैं जो स्त्री–पुरूष समानता के सिद्धान्त पर आधारित है। इसने मानवाधिकार विमर्श एवं क्रियाकलापों को व्यापक बनाया है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि महिला–असमानता एक समाज द्वारा संरक्षित व्यवस्था है और इसे समाप्त किया जाना चाहिए। इस प्रसंविदा का प्रारम्भ 'भेदभाव' की परिभाषा के साथ होता है, जिसमें कहा गया है कि "महिला के साथ भेदभाव का तात्पर्य लिंग के आधार पर किए गए अन्तर, बहिष्करण एवं प्रतिबंध से है।' इस प्रसंविदा को महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करने के उद्देश्य से संहिताबद्ध किया गया, जिसके पीछे मूल विचार यह था कि महिला अधिकारों का संरक्षण होगा तो मानवाधिकार का भी संरक्षण होगा। इस विचार को मान्यता तब मिली जब 1993 के संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार सम्मेलन (वियना सम्मेलन) में महिला अधिकारों को मानवाधिकारों के रूप में औपचारिक रूप से मान्यता देने का कार्य प्रारम्भ हुआ, जिसे 1995 के बीजिंग अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में पूर्ण किया गया। बीजिंग सम्मेलन में प्रथमतः महिला से सम्बन्धित मामलों को अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून के एक भाग के रूप में स्वीकार किया गया। इस सम्मेलन में समस्त विश्व की महिलाओं से सम्बन्धित मुद्दे विभिन्न राष्ट्रों से आये प्रतिनिधियों एवं प्रतिभागियों द्वारा उठाए गए, जिसका परिणाम 1995 की 'बीजिंग घोषणा' थी। यह घोषणा लैंगिक–समानता, सशक्तिकरण एवं न्याय पर जारी किया गया सशक्त दस्तावेज है, जिस पर विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों द्वारा सहमति व्यक्त की गई। इस घोषणापत्र ने अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून के मूलभूत सिद्धान्तों को ही बदल कर रख दिया। अभी तक मानाधिकारों की 'तीन पीढ़ियां' की अवधारणा की बात की जाती थी, अब

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

मानवाधिकार के नारीवादी परिप्रेक्ष्य पर लेखन एवं आन्दोलन करने वालों का मत है कि महिला अधिकारों को मानवाधिकारों की 'चौथी पीढ़ी' के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून एवं मानकों को गहरी चुनौती मिल रही है। आज यह सच्चाई है कि एक ओर जहां मानवाधिकारों को निरन्तर मान्यता मिल रही है वहीं महिला अधिकारों की स्थिति विभिन्न समाजों की सापेक्षिक स्थितियों के अनुरूप दयनीय ही बनी हुई है। यह वास्तव में नारीवादी लेखकों की बड़ी समस्या है कि वे सारे समाज से महिला भेदभाव व असमानता को दूर करना चाहते हैं किन्तु यह अनेक अनुदारवादी समाजों में महिला की सापेक्षिक दयनीय दशा को देखते हुए इतना शीघ्र सम्भव भी नहीं है। इसके उपरान्त भी वर्तमान विश्व में महिला मानवाधिकारों का प्रश्न मानवाधिकारों की कार्यसूची के शीर्ष पर बना हुआ है और अनेक नारीवादी विचारक व आन्दोलक इस दिशा में निरन्तर कार्य कर रहे हैं और लैंगिक भेदभाव को समूलतः नष्ट कर लैंगिक–समानता, लैंगिक–न्याय एवं लैंगिक–साम्यता की दिशा में कार्य करने हेतु राष्ट्रों व समाजों को उत्प्रेरित कर रहे हैं।

हाल के वर्षो तक मानवाधिकार संधियों की भाषा में यह स्पष्ट रूप से दर्शित होता था कि उनमें अधिकार–उपभोक्ता के रूप में मात्र पुरुष या गृहस्वामी ही इंगित किए गए हैं। नारीवादियों का कहना है कि यह मात्र परम्परागत भाषाई प्रथा ही नहीं, वरन् इससे कहीं अधिक गहरा अर्थ प्रतिबिम्बित करती है। परम्परागत उदारवादी राजनीतिक एवं नागरिक अधिकार (भाषण एवं अभिव्यक्ति, संगठित होने व सभा करने, समुदाय एवं संघ बनाने, मनमानी गिरफ्तारी से स्वतंत्रता आदि) यह दर्शाते है कि अधिकारों के उपभोक्ता जीवन को जी रहे होंगे या जीने के इच्छुक होंगे और किन्तु अभी कुछ ही वर्षों पहले तक विश्व की सभी संस्कृतियों की महिलाएं ऐसे जीवन को नहीं जी रही थी जिसे जीने लायक कहा जा सके। महिलाओं को ऐसे नाटकीय सार्वजनिक जीवन में मात्र घर की देहरी तक सीमित कर दिया गया है और उन्हें पुरुष गृह–स्वामी की निरंकुशता व क्रूरता का शिकार भी होना पड़ता है। सर्वप्रथम पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्रों में बहुत कम समय पूर्व ही महिलाओं को मत देने, सार्वजनिक पदप्राप्त करने एवं सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार मिल सका है, किन्तु महिलाओं के विरूद्ध अपराध जैसे घरेलू हिंसा, बलात्कार, वैवाहिक बलात्कार आज भी वर्तमान हैं और कई समाजों में तो इनमें निरन्तर वृद्धि हो रही है।

2.8 सारांश

यद्यपि मानवाधिकार जन्मजात, मौलिक, अहरणीय प्राकृतिक अधिकार है, किन्तु इनको सामाजिक विश्व में शनैः–शनैः ही मान्यता मिली। अपने विकास के लिए विशिष्ट ऐतिहासिक कालखण्ड में किस प्रकार मानवाधिकारों का कोई एक आयाम कोई एक पक्ष प्रबल रहा– इसके आधार पर मानवाधिकारों का ऐतिहासिक विकासक्रम दर्शाया जाता रहा है।

2.9 बोध प्रश्न

1. मानवाधिकार की उदारवादी विचारधारा क्या है?
2. मानवाधिकार का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य से आप क्या समझते हैं?
3. मानवाधिकार के गांधीवादी परिप्रेक्ष्य से आप क्या समझते हैं?
4. मानवाधिकार की दलित अवधारणा में डा0 अम्बेडकर व फूले ज्योतिराव का क्या योगदान है?
5. मानवाधिकार का नारीवादी दृष्टिकोण समझाइये?

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. देखें भाग 2.2
2. देखें भाग 2.4
3. देखें भाग 2.5

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

4. देखें भाग 2.6

5. देखें भाग 2.7

2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- *Beitz, Charles R. The idea of human rights. Oxford: Oxford University Press, 2009.*
- *Moyn, Samuel The last utopia: human rights in history. Cambridge, Mass.: Belknap Press of Harvard University Press, 2010.*
- *Donnelly, Jack Universal human rights in theory and practice (2nd ed.) Ithaca: Cornell University Press, 2003.*
- *Ball, Olivia; Gready, Paul). The no-nonsense guide to human rights. New Internationalist. Oxford, 2006.*

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई–3 अधिकार और कर्त्तव्य के बीच संतुलन की आवश्यकता, स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मानवाधिकार : समसामयिक मुद्दे एवं चुनौतियाँ

3.3 देशी/मूल जनों आदिवासियों के अधिकार

3.4 देशीजनों के मानवाधिकारों के प्रोन्नयन हेतु संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न अभिकरण

3.5 जैवविविधता पर अनुबन्ध

3.6 शरणार्थियों के अधिकार

3.7 1951 के शरणार्थियों पर अनुबन्ध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

3.8 1951 के शरणार्थी प्रास्थिति अनुबंध के अन्तर्गत शरणार्थियों के अधिकार

3.10 सारांश

3.11 बोध प्रश्न

3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

मानवाधिकार से सम्बन्धित समसामयिक मुद्दे एवं चुनौतियों में प्रमुख रूप से–

- विकास का अधिकार व कर्त्तव्य;
- देशी जनों के अधिकार व उनके प्रोन्नयन हेतु उपाय;
- शरणार्थियों आदि के अधिकार आदि के बारे में जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मानवाधिकारों में आत्म–निर्णय के अधिकार को अधिक महत्व दिया गया, क्योंकि कई देशों की जनता उपनिवेशवाद के चंगुल से स्वतंत्रता चाहती थी। इस अधिकार की प्राप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र की पहल से प्रयास किये गये जिससे अधिकांश उपनिवेशित देश स्वतंत्र हो गये व उन्होंने अपने आत्म निर्मय के अधिकार को प्राप्त किया, जिसके आधार पर सम्प्रभुता की धारणा उत्पन्न हुई। इसके पश्चात् नवोदित विकासशील देशों में फिर संघर्ष की शुरूआत हुई, जिसमें विकासशील देशों की यह मांग थी कि उन्हें अपने प्राकृतिक संसाधनों पर अधिपत्य स्थापित करने की स्वतंत्रता दी जाये। इसके साथ ही विकासशील देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की मांग प्रबल थी। लेकिन 21वीं शताब्दी की पीढ़ी के समक्ष मानवाधिकार की कल्पना बदल गयी है। विश्व में आज उपनिवेशवाद की समाप्ति हो चुकी है। विश्व व्यापार संघ की स्थापना की जा चुकी है, उदारीकरण के दौर में विकासशील देशों ने उन्नति की है और कई सीमा तक रंगभेद की समस्या भी समाप्त हो चुकी है परन्तु इसी के साथ नई पीढ़ी के समक्ष नई समस्या उत्पन्न हो चुकी है। जैसे पर्यावरण प्रदूषण, एड्स, आतंकवाद, असन्तुलित विकास, शुद्ध जल की समस्या, अस्त्र–शस्त्रों में वृद्धि होना, परमाणु युद्ध की सम्भावनाओं में वृद्धि होना इत्यादि।

इन्हीं समस्याओं के समाधान के लिए यह आवश्यक हो गया है कि सरकारें अपने–अपने संविधानों में

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

व्यक्ति के अधिकारों में वृद्धि कर उन्हें अधिक से अधिक अधिकार प्रदान करें। व्यक्ति सम्मानजनक जीवन तभी जी सकता है जब राज्य में शक्ति व कानून की स्थापना हो सके लेकिन वर्तमान में आतंकवादी गतिविधियों में वृद्धि होने से न केवल व्यक्ति के अधिकारों का हनन हुआ है अपितु इसके जीवन जीने के अधिकार में भी खतरा उत्पन्न हो गया है। आज आतंकवाद से उत्पन्न डर, भय, हिंसा एवं अराजकता ने व्यक्ति को व्यक्ति का विरोधी बना दिया है। आतंकवाद की समस्या को हल करने के लिए आज यह आवश्यक हो गया है कि प्रत्येक राष्ट्र और व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करे, तभी हम विश्व शान्ति की कल्पना को साक्षात् रूप दे सकेंगे और 'यत्र विश्वम् भवति एकनीऽम्' का स्वप्न साकार हो सकेगा।

एक तरफ जहां विश्व शान्ति को खतरा उत्पन्न हो गया है, दूसरी तरफ असन्तुलित विकास ने पर्यावरण एवं प्रदूषण को विकट रूप प्रदान किया है। औद्योगीकरण और नवीन तकनीकों ने मनुष्य के स्वच्छ वातावरण में जीने के अधिकार को सीमित कर दिया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने विकासशील देशों में आर्थिक आधिपत्य स्थापित किया है व दूसरी तरफ वहां के पर्यावरण को प्रभावित किया है। साथ ही विकसित देशों द्वारा स्थापित बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने विकासशील देशों के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया है व वहां के बाजार को आर्थिक रणस्थल बना दिया है।

21वीं सदी में जो विषय सर्वाधिक चर्चित एवं प्रासंगिक है, उनमें मानव–अधिकार पर चिंतन व चर्चा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वर्तमान समाज की स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार–मुद्दे जनमानस, पदासीन नीति निर्धारकों एवं प्रशासकों के लिए भी चुनौतीपूर्ण साबित हो रहे हैं। विश्व पटल में जहां एक ओर समृद्धि एवं सम्पन्नता बढ़ी है, वहीं दूसरी आरे, गरीबी रेखा से ऊपर जीवन निर्वहन करने वालों की संख्या में भी कोई आशाजनक प्रगति नहीं दिखती है। सामान्यतया नागरिकों का अनुत्तरदायीपूर्ण व्यवहार व बढ़ती उच्छृंखलता ने कानून व्यवस्था के आगे नई चुनौतियां उत्पन्न कर दी हैं।

वैश्वीकरण के दौर ने यद्यपि दूरियां कम की हैं, वस्तुएं सुलभ बना दी हैं किन्तु आतंकवाद, स्वतंत्रता एवं गरिमा के प्रश्नों के सक्षम उत्तर, अधिकारों का उललंघन, उत्पीड़न, अत्याचार की घटनाएं, आदि–आदि ने समसामयिक मानवाधिकार के मुद्दों को और जटिल बना दिया है।

3.2 मानवाधिकार : समसामयिक मुद्दे एवं चुनौतियाँ

जैसे–जैसे अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता एवं चिन्ता बढ़ी है, वैसे–वैसे इनके संरक्षण, प्रवर्तन एवं प्रोन्नयन हेतु नवीन मुद्दे और चुनौतियां उभर कर सामने आई हैं। इन चुनौतियों में कुछ तो स्थानीय स्तर पर धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक–राजनीतिक स्थितियों से उपजी हैं, जबकि कुछ चुनौतियां वैश्विक हैं, सार्वभौम हैं और सम्पूर्ण मानवता के लिए हैं जैसे– आतंकवाद, विकास का अधिकार, नस्लवाद, धार्मिक हिंसा व उन्माद एवं पर्यावरण क्षरण। यद्यपि 20वीं सदी के अन्तिम 50 वर्षों में मानवाधिकारों के प्रश्न पर कई महत्तर विकास हुए। इस क्रम में मानवाधिकारों के संरक्षण व संवर्धन हेतु संयुक्त राष्ट्र ने अनेक ऐसे लक्ष्य व उद्देश्य तय किये हैं, जिन्हें 21वीं सदी में प्राप्त किया जाना है। इन उद्देश्यों की संप्राप्ति इस पर निर्भर करती है कि हम इन चुनौतियों से किस सीमा तक निपट सकते हैं। मानवाधिकारों से सम्बन्धित मुख्य मुद्दों एवं चुनौतियों को इस प्रकार रखा जा सकता है।

विकास का अधिकार: 'विकास' का सारांश एवं सन्दर्भ तृतीय विश्व के विकासशील देशों से जुड़ा है, जिनका तर्क है कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत सभी राष्ट्र–राज्यों को अवसर के सन्दर्भ में समानता दी गई है, इसलिए ये राष्ट्र नवीन अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) की मांग कर विश्व के आर्थिक संसाधनों का साम्यपूर्ण वितरण होना चाहिए और ऐसा किया जाना विकसित व विकासशील दोनों प्रकार के देशों के हित में है। इस सन्दर्भ में विकास में सहयोग देने के कर्त्तव्य एवं अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संविधि के अन्तर्गत इन विकासशील राष्ट्रों को विशेष सुविधाएं प्रदान किये जाने को सिद्धान्तः स्वीकार किया गया। विकास में सहयोग देने के कर्त्तव्यों को संयुक्त राष्ट्र चार्टर के विभिन्न प्रावधानों, यथा– अनुच्छेद– 1(3) अनुच्छेद– 55 एवं 56 तथा गैर (अब डब्ल्यू.टी.ओ.) के भाग (V) में देखा जा सकता है। विकासशील राष्ट्र– पूंजी व तकनीक के अन्तरण, विशेष आहरण अधिकार, बौद्धिक सम्पदा अधिकार, कच्चे माल की उचित कीमतों आदि की मांग की जाती रही है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकास के अधिकार के विचार का सूत्रपात 1950 एवं 1960 के दशक में हो चुका था क्योंकि इस काल में वि–उपनिवेशीकरण के कारण विकासशील राष्ट्रों की संख्या में काफी इजाफा हुआ था

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

और इन्होंने विकसित विश्व से अपने विकास में सहयोग देने के उनके कर्त्तव्य की अनेक मंचों के माध्यम से अपील की। 'विकास' को 'मानव अधिकार' के रूप में मान्यता देने का प्रारम्भिक श्रेय अफ्रीकी न्यायविद केबा म्वाया को जाता है। उनके प्रयासों ने 1970 के दशक में संयुक्त राष्ट्र अभिलेखों एवं अन्य संस्थाओं (जैसे मानवाधिकार आयोग) को इस अवधारणा के विकास एवं क्रियान्वयन की ओर प्रेरित किया। 1979 में एक प्रभावी कदम तब उठाया गया जब संयुक्त राष्ट्र महासचिव द्वारा 'अधिकारों के अस्तित्व' पर एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया पर प्रतिवेदन 1986 में संयुक्त राष्ट्र विकास के अधिकार की उद्‌घोषणा के प्रारूपण एवं अधिनियमन हेतु आधार बना। इस उद्‌घोषणा का अनुच्छेद– 01 घोषित करता है कि–

"विकास का अधिकार मानव का एक ऐसा अलंघनीय अधिकार है जिसके कारण सभी व्यक्तियों को उस आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास में सहभागिता करने, योगदान देने एवं आनन्द उठाने की योग्यता है जिसमें रहकर सभी मानवाधिकारों एवं मूलभूत स्वतंत्रताओं को पूर्व सिद्धि हो सके।"

यह प्रारम्भिक अनुच्छेद मूलतः तीन सिद्धान्त स्थापित/प्रस्तावित करता है–

(अ) विकास का अधिकार अलंघनीय मानवाधिकार है।

(ब) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास की एक विशिष्ट 'प्रक्रिया' होती है जिसके अन्तर्गत ही सभी मानवाधिकारों एवं मूलभूत स्वतंत्रताओं की सिद्धि हो सकती है।

(स) विकास का अधिकार एक ऐसा मानवाधिकार है जिसके माध्यम से सभी व्यक्तियों को विकास की प्रक्रिया में सहभागिता करने एवं उसका उपभोग करने का अधिकार है।

इसी प्रकार इस उद्‌घोषणा के अनुच्छेद– 01 में प्रत्येक व्यक्ति के नहीं, प्रत्युत सभी व्यक्तियों के विकास के अधिकार को मान्यता दी गई है। अनुच्छेद– 2 यह घोषित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति, विकास का केन्द्रीय विषय है इस रूप में है कि वह विकास के अधिकार का सक्रिय सहभागी एवं लाभार्थी है। यहां तक कि 'लोग' या 'मानवों के समूह' भी कतिपय अधिकारों के अधिकारी हैं जैसे– अपने भू–भाग प्राकृतिक संसाधनों एवं प्राकृतिक सम्पदा पर पूर्व सम्प्रभुता। यह वैयक्तिक मानव ही है जिसे अनिवार्यतः विकास की प्रक्रिया का क्रियात्मक सहभागी एवं लाभार्थी होना चाहिए।

विकास की ऐसी प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत समस्त मानवाधिकार एवं मूलभूत स्वतंत्रताएं प्राप्त हो सकें, अनुच्छेद–3 में और आगे बढ़ती है जिसमें कहा गया है कि विकास में स्वतंत्र सक्रिय एवं सार्थक सहभागिता के माध्यम से सभी मानवता एवं सभी व्यक्तियों की खुशहाली में निरन्तर सुधार आवश्यक है। अनुच्छेद– 08 इसी बात को और आगे बढ़ता है, जिसमें उल्लिखित है कि विकास के अधिकार को प्राप्त कराने के उपाय सभी के लिए प्राकृतिक संसाधनों, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि के क्षेत्र में अवसर की समानता को आश्वस्त करेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति के विकास के अधिकार को आश्वस्त करने हेतु सम्बन्धित पक्षकारों को उत्तरदाई बनाया गया है, चाहे वह व्यक्ति हो या राष्ट्रीय कर्त्ता के रूप में राज्य हो अथवा अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्ता के रूप में राज्य अनुच्छेद 2 के परन्तुक– 2 में कहा गया है कि सभी मानवों को वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप से विकास के अधिकार प्राप्त होंगे और उनको समस्त मानवाधिकारों एवं मूलभूत स्वतंत्रताओं के साथ समुदाय के प्रति अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन हेतु अनिवार्यतः उचित कदम उठाने होंगे। किन्तु विकास के अधिकार की प्राप्ति हेतु उचित राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दशाओं के निर्माण का दायित्व मुख्यतः राष्ट्र–राज्यों पर है। इस प्रकार का निर्देश हमें अनुच्छेद–3 में मिलता है। यद्यपि विकास के अधिकार की सिद्धि मुख्यतः व्यक्तियों पर निर्भर है किन्तु वे राष्ट्र–राज्य ही हैं, जो राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर ऐसी परिस्थितियां/ वातावरण बनाते हैं, जिससे विकास के अधिकार की संप्राप्ति सरल हो जाती है। इसी उद्‌घोषणा के अनुच्छेद– 2 का परन्तुक–3 एवं अनुच्छेद–8 कहता है कि राज्य वे सब आवश्यक कदम उठायेंगे, जो विकास के अधिकार की सिद्धि हेतु आवश्यक है तथा राज्य अपने यहां उचित राष्ट्रीय विकास नीतियां बनायेंगे तथा पुनश्च, सभी क्षेत्रों में जनसहभागिता को प्रोत्साहित करेंगे। राज्यों से यह भी अपेक्षा की गई है कि वे अपने यहां हो रहे मानवाधिकारों के व्यापक एवं खुलेआम उल्लंघन को रोकने हेतु भी कारगर उपाय अपनायेंगे। ये उल्लंघ्न नस्लवाद, जातीय–भेदभाव, उपनिवेशवाद, विदेशी प्रभुत्व एवं अधिग्रहण आदि से उत्पन्न होते हैं।

एक अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्ता के रूप में राज्यों पर यह दायित्व डाला गया है कि वे मानवाधिकार विशेषतः विकास

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

के अधिकार की संप्राप्ति हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग करें। प्रथमतः राज्यों का यह कर्त्तव्य है कि वे मिलकर विकास को आश्वस्त करें एवं विकास की बाधाओं को दूर करें। वे इस कार्य को इस तरह करें कि एक ऐसी नवीन अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विकास हो सके, जो सम्प्रभुता, समानता, अन्तर्निर्भरता एवं पारस्परिक लाभ पर आधारित हो (अनुच्छेद–3, परंतुक–3)। अन्ततः, इस उद्घोषणा का अनुच्छेद– 4 उपबंधित करता है कि राज्यों का व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से कर्त्तव्य होगा कि वे मित्र ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय नीतियां तैयार करें, जिसके विकास के अधिकार की प्राप्ति हो सके। यह इस बात को मान्यता देता है कि अल्पविकसित राज्यों के द्रुत विकास हेतु समावेशी कार्य आवश्यक है।

1986 में जब विकास के अधिकार की उद्घोषणा की गई, तब राज्यों में इसके बारे में समैक्यता का अभाव था किन्तु बाद के वर्षों में विकास के अधिकार के प्रति राज्यों का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ। इस सन्दर्भ में 1993 की मानवाधिकारों के वियना विश्व सम्मेलन को उद्धृत किया जा सकता है, जिसमें भाग लेने वाले सभी राष्ट्र–राज्यों ने सर्वसम्पर्क से यह स्वीकार किया कि 'विकास का अधिकार मूलभूत मानवाधिकारों का अविभाज्य अंग है। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा सर्वप्रथमतः समर्थित यह उद्घोषणा घोषित करती है कि– "मानवाधिकार और मूलभूत स्वतंत्रताएं सभी मानवों का जन्मसिद्ध अधिकार है। उनका संरक्षण और संवर्धन सरकार की पहली जिम्मेदारी है। इस सन्दर्भ में विकास के अधिकार को सिद्ध करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी को भी प्रतिबद्ध होने को उत्तरदायित्व बद्ध किया गया है। जब से मानवाधिकारों को अन्योन्याश्रित, अविभाज्य एवं पारस्परिक रूप से एक–दूसरे को शक्ति देने वाले उत्प्रेरक के रूप में स्वीकारा गया है तब से सभी संयुक्त राष्ट्र के सभी मुख्य दस्तावेजों में इसे स्थान दिया गया है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य उद्घोषणा 2000 यह घोषित करती है कि हम सभी के लिए विकास के अधिकार को वास्तविक बनाने हेतु प्रतिबद्ध हैं और मानव जाति को कामना से मुक्त कराने हेतु भी वचनबद्ध है।"

संयुक्त राष्ट्र की महासभा के प्रस्ताव संख्या 41/128 के अन्तर्गत विकास के अधिकार की उद्घोषणा को 30 वर्ष होने को हैं और इस उद्घोषणा से पूर्व भी इस अधिकार पर अतिरेक बहस, विमर्श एवं विवाद होता रहा। हम देखते हैं कि विकास के मुद्दे के अति राजनीतिकरण के कारण इस दिशा में यथेष्ट प्रगति नहीं हो पाई है किन्तु हालिया वर्षों में विकास के अधिकार आन्दोलन को एक नई दिशा एवं स्फूर्ति मिली है। एक समष्टि के अंग के रूप में व्यक्ति का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास व्यापकतः राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश पर निर्भर करता है।

विकास के अधिकार को हम किसी भी वैधानिक रूप से बाध्यकारी उपकरण में नहीं पाते किन्तु यह अपनी वैधानिक आधारभूमि विभिन्न बाध्यकारी मानवाधिकार अनुबंधों से प्राप्त करता है। कानूनी दृष्टि से विकास के अधिकार को एक 'नरम कानून' माना जा सकता है। 'विकास का अधिकार पदबन्ध, अनिवार्यतः मानवाधिकारों के उस समूह को इंगित करता है, जिसे विश्व–समुदाय राज्यों के नेताओं द्वारा विभिन्न घोषणा–पत्रों एवं प्रस्तावों द्वारा बार–बार पुष्ट किया गया है तथापि, इन राष्ट्र–राज्यों में इनकी प्रस्थिति विशुद्ध कानून की नहीं है। इसके अतिरिक्त ये अधिकार अधिकांशतः समूह–अधिकार हैं जो अपनी प्रकृति में परम्परागत मानवाधिकारों– नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक से भिन्न हैं। परम्परागत मानवाधिकारों को मूलतः वैयक्तिक अधिकारों के रूप में देखा जाता है जबकि विकास का अधिकार अधिकांशतः सामूहिक अधिकार माना जाता है। इन सामूहिक अधिकारों में शान्ति का अधिकार, स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार एवं विकास का अधिकार आदि मुख्यतः शामिल हैं।

ये अधिकार, अर्थात् विकास के अधिकार सहित समस्त सामूहिक अधिकार किसी विशिष्ट राज्य को नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी को दायित्वबद्ध करते हैं, क्योंकि इनसे सम्बन्धित मुद्दे इतने वैश्विक हैं कि उन्हें किसी विशिष्ट राष्ट्र–राज्य के विधायन से अथवा राष्ट्रीय प्रयास मात्र से सुलझाया नहीं जा सकता। इसलिए विकास के अधिकार की वैधानिक आधारशिला हमें विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय दस्तावेजों में मिलती है। इनमें मानवाधिकार बिल को विकास के अधिकार का प्रस्थान–बिन्दु माना जा सकता है। इसी प्रकार मानवाधिकारों का सार्वभौम घोषणापत्र एवं नागरिक व राजनीतिक प्रसंविदा तथा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रसंविदा पक्षकार राष्ट्र–राज्यों हेतु बाध्यकारी उत्तरदायित्व अधिरोपित करते हैं। विकास के अधिकार का उपयोग उपरोक्त उद्घोषणा एवं प्रसंविदाओं में अधिकथित अधिकारों के अनुपालन की पूर्वापेक्षा रखता है। ये अधिकार (सामूहिक) हैं– आत्मनिर्णय का अधिकार, शिक्षा, काम, जीवन, स्वास्थ्य, भोजन, आवास, स्वतंत्रता और सुरक्षा आदि। विकास का अधिकार उपरोक्त समस्त अधिकारों की सिद्धि के लिए उचित वातावरण निर्मित करने का आह्वान करता है। इस प्रकार

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

यद्यपि पहली चुनौती राष्ट्र–राज्यों की है कि वे अपने यहां विकास के अनुकूल वातावरण बनाए तथा अन्ततः यह राष्ट्रों की समस्त अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी पर भी चुनौती है कि वे राष्ट्र–राज्य की सीमाओं व सामर्थ्य के बाहर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विकास हेतु अनुकूल वातावरण बनाने हेतु मिलजुलकर कार्य करें। विकासशील राष्ट्रों का आक्षेप है कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं अर्थव्यवस्था की प्रकृति ऐसी है कि वह अपने नागरिकों के लिए विकास के अधिकार का उपभोग कराने में सक्षम नहीं हो पाते, इसलिए विकासशील राष्ट्र विकास के अधिकार को वास्तविक बनाने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सामूहिक रूप से कार्य करने का प्रस्ताव रखते हैं। उनका तर्क है कि वे अपने नागरिकों को विकास का अधिकार तभी प्रत्याभूत कर सकते हैं जब इस हेतु अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को अधिक लोकतांत्रिक, अन्तर्निर्भर, पारस्परिक–सद्भाव एवं सहयोग पर आधारित बनाया जाए।

3.3 देशी/ मूल जनों आदिवासियों के अधिकार

वे लोग जो किसी भू–भाग में किसी औपनिवेशिक शक्ति द्वारा विजय करने से पूर्व से रहते आ रहे हैं, और आज भी जो स्वयं को उस भू–भाग के सत्ताधारी समाज से पृथक करके देखता है, को देशी जन कहा जाता है। इसकी परिभाषा, जो 1984 में संयुक्त राष्ट्र स्पेशल रिपोर्ट में प्रकाशित हुई थी तथा जिसे अल्पसंख्यकों, देशी जनों, लोग एवं राष्ट्रों के प्रति भेदभाव के उन्मूलन एवं संरक्षण पर बनी उप–समिति ने परिभाषित किया था, निम्न प्रकार है–

"वे लोग जिनकी पूर्व–आक्रमण एवं पूर्व–उपनिवेशी काल से ही किसी भू–भाग में ऐतिहासिक रूप से निरन्तर उपस्थिति रही है किन्तु जो अब उस भू–भाग में बाद में आए औपनिवेशिक स्थानियों/सत्ताधारी समुदायों से स्वयं को विशिष्ट और पृथक मानते हैं।"

"वर्तमान समय में मूल जन समाज के प्रभुत्वहीन वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा ये अपनी विशिष्टता का संरक्षण, विकास एवं प्रसार करना चाहते हैं तथा अपनी नृजातीय पहचान को अक्षुण्य रखते हुए अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराओं (प्रतिमानों), सामाजिक संस्थाओं तथा वैधानिक व्यवस्थाओं को बनाए रखना चाहते हैं।"

'देशी जन' शब्द का एक वचन में प्रयुक्त किया जाय, अथवा बहुवचन में– इस पर निरन्तर विवाद रहा है। संयुक्त राष्ट्र के नागरिक व राजनीतिक अधिकार अनुबंध एवं आर्थिक , सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकार अनुबंध में कहा गया है कि सभी व्यक्तियों/लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार होगा जिनके परिणामतः वे अपने राजनीतिक प्रास्थिति का स्वतंत्रतापूर्वक निर्धारण कर सकें एवं अपने आर्थिक– सामाजिक–सांस्कृतिक विकास प्रतिमानों का स्वतंत्रतापूर्वक वरण कर सकें जो भी हो, इस बारे में विवाद है कि "पीपुल्स" शब्द का सटीक अर्थ क्या है? कुछ सरकारें "देशी जनों" के सन्दर्भ में 'पीपुल्स' शब्द के प्रयोग का विरोध करती हैं क्योंकि उन्हें इस राज्य–उत्तराधिकार एवं पृथक राज्य के दर्जे की मांग का भय सताता रहता है। ये राज्य इनके लिए 'जनजातियां' या 'जनसंख्या' शब्द प्रयुक्त करती हैं। दूसरी ओर, 'मूलजन' 'पीपुल्स' शब्द का प्रयोग करते हैं क्योंकि ये अपने को एक विशिष्ट पहचान से जनमजात रूप से सम्बद्ध मानते हैं। वर्तमान में अधिक प्रचलित 'पीपुल' एकवचन के रूप में इन दो अतिवादों का मध्यमार्ग है।

सम्पूर्ण विश्व में ऐसे लोगों/मूल निवासियों की संख्या 300 से 500 मिलियन के बीच में है। ये विश्व की लगभग 80 प्रतिशत, सांस्कृतिक एवं जैविकीय विविधता के वाहक हैं तथा विश्व के कुल क्षेत्रफल (भू–भाग) के लगभग 20 प्रतिशत में बसे हुए हैं। सम्पूर्ण विश्व में देशी/मूलजनों की स्थिति भी आपस में काफी विविध है। ये लगभग विश्व के सभी महाद्वीपों के सभी देशों में रहते हैं। इनमें परम्परागत आखेटकों से लेकर जीवन निर्वाह करने वाले किसान तथा कानूनी विद्वान तक शामिल हैं। अमेरिका में रेड इण्डियन, अफ्रीका में पिग्मी, मसाई, भारत में विभिन्न जनजातियां एवं कांगो व अमेजन बेसन में इन देशी जनों के विभिन्न समूह निवास करते हैं। कुछ राज्यों में देशी जन बहुसंख्यक हैं जबकि अन्यों की स्थिति छोटे–छोटे अलपसंख्यक समूहों की है। ये मूलजन अपनी भूमि को बचाने, भाषा का संरक्षण एवं संस्कृति का संवर्धन करना चाहते हैं। कुछ देशी जन अपने पुराने परम्परागत जीवन मूल्यों को संरक्षित करना चाहते हैं तो कुछ समकालीन राज्य संरचना में अधिकतम सहभागिता करते हैं। यद्यपि सम्पूर्ण विश्व में वर्तमान देशी जनों में आपस में महत्वपूर्ण भिन्नताएं हैं किन्तु एक बात उनमें समान है, वह यह कि उन सबका इतिहास शोषण व दमन का इतिहास रहा है। इनको यदि इतिहास में नजर डालें तो मारा गया है, यातना दी गई है और दास बनाया गया है। यहां तक कि कई बार ये सामूहिक नरसंहार की शिकार भी हुए हैं। उन्हें समकालीन राज्य व्यवस्था में समान व सक्रिय सहभागिता के अवसरों से वंचित रखा गया है। विजय एवं

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

आधिपत्य के उपनिवेशवाद ने सदैव इनकी गरिमा को आघात पहुंचाया है और इनकी पहचान को संकटग्रस्त किया है। यहां तक कि कई क्षेत्रों में आज भी इन्हें इनके आत्मनिर्णय के अधिकार से वंचित किया गया है। अतीत व वर्तमान में हो रहे कई गृह–युद्ध इसी का परिणाम है। नेल्सन मंडेला ने इन्हीं की लड़ाई लम्बे समय तक लड़ी।

3.4 देशीजनों के मानवाधिकारों के प्रोन्नयन हेतु संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न अभिकरण

1982 में मानवाधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु गठित मानवाधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र उप–आयोग के एक अधीनस्थ अंग के रूप में देशीजनों (जनसंख्या) पर संयुक्त राष्ट्र कार्य समूह वह प्रथम प्रयास था, जो अनन्य रूप से देशी जनों मामलों से सम्बन्धित था। यह देशी जनों के मानवाधिकारों के सन्दर्भ में राष्ट्रीय विकास का मूलयांकन करता है तथा इनके अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं हेतु अन्तर्राष्ट्रीय मानक तय करता है। यह कार्य समूह इनसे सम्बन्धित विभिन्न मामलों का अध्ययन भी करता है। इस कार्यदल के सत्रों में लगभग 700 व्यक्ति भाग लेते हैं, जिनमें सरकारें, देशी जन, गैर–सरकारी संगठन एवं विशेषज्ञ भाग लेते हैं।

सन् 2000 में संयुक्त राष्ट्र के एक प्रमुख अंग आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् ने देशी जनों के मुद्दों पर स्थाई मंच (फोरम) की स्थापना की, जो इनसे सम्बन्धित अनेक मामलों पर व्यापक विचार–विमर्श करता है। इस मंच में 8 देशी जनों को विशेषज्ञों के रूप में सदस्य बनाया जाता है, जो संयुक्त राष्ट्र के झंडे वाले देशी जनों को सदस्य के रूप में नामित करने वाला सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय निकाय है। यह वर्ष में एक बार अपने 10 दिवसीय सत्र में समवेत होता है तथा अपना प्रतिवेदन आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् को सौंपता है। यह वस्तुतः आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् के एक परामर्शदात्रा बोर्ड की तरह कार्य करता है तथा देशीजनों से सम्बन्धित विभिन्न मामलों, यथा– उनके सामाजिक विकास, संस्कृति, पर्यावरण, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं मानवाधिकारों पर सुझाव प्रस्तुत करता है। यह फोरम आर्थिक व सामाजिक परिषद् को मूल्यवान विशेषज्ञ परामर्श प्रदान करके परिषद् को सुझाव भी देता है। संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के अन्तर्गत देशी जनों से सम्बद्ध मामलों पर जागरूकता बढ़ाता है एवं देशी जनों पर जानकारी एकत्रित कर उसे प्रचारित करता है।

उपरोक्त के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र का एक अन्य कार्यसमूह है जो देशी जनों के अधिकारों के प्रारूप उद्घोषणा हेतु स्थापित है। यह कार्य समूह संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग के अन्तर्गत कार्य करते हुए वर्ष में एक बार मिलकर देशी जनों के अधिकारों के प्रारूप उद्घोषणा पर विचार–विमर्श एवं उसका पुनरीक्षण करता है। यद्यपि यह प्रारूप उद्घोषणा राज्यों पर बाध्यकारी नहीं है किन्तु यह देशी जनों के अधिकारों पर एक सर्वमान्य अन्तर्राष्ट्रीय मानक तय करने हेतु आधार–मार्ग का कार्य करेगी क्योंकि इसे सभी संयुक्त राष्ट्र सदस्य देशों द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकारा गया है। इसके अलावा यह विभिन्न राष्ट्र–राज्यों में देशी जनों को वृहत्तर वैधानिक संरक्षण प्रदान किए जाने हेतु विचार–विमर्श किए जाने का भी मार्ग प्रशस्त करेगी।

अन्ततः संयुक्त राष्ट्र एक अन्य माध्यम से भी देशी जनों के मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु कार्य करता है, जिसे देशी जनों के मानवाधिकारों एवं मूलभूत स्वतंत्रताओं की स्थिति हेतु विशेष रिपोर्टर, (संवादादात) कहा गया है। रोडोल्फो स्टावेन हेगेन को 24 अप्रैल 2001 को प्रथम विशेष संवाददाता (स्पेशल रिपोर्टर) नियुक्त किया गया। इनका कार्य क्षेत्र था– देशी जनों के मानवाधिकारों एवं मूलभूत स्वतंत्रताओं के हनन के मामलों की जानकारी एकत्रित करना, इस प्रकार के मानवाधिकार हनन को रोकने हेतु प्रभावी सुझाव देना तथा इस दिशा में कार्य कर रहे संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंगों व अभिकरणों हेतु मिलकर संभावित संभावित रूप से कार्य करना। रिपोर्टर देशी जनों से सम्बन्धित मामलों में स्थाई मंच एवं देशीजनों पर बने कार्यदल के साथ घनिष्ठ रूप से मिल–जुल कर कार्य करता है।

एजेण्डा–21– **वैश्विक पर्यावरण में परिवर्तन तथा देशी जनों के अधाकर घनिष्ठतः अन्तर्सम्बन्धित है क्योंकि इन देशी जनों की अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति प्रकृति एवं पर्यावरण की स्थितियों पर ही निर्भर एवं आधारित है। मूलजनों एवं पर्यावरण के मध्य इस घनिष्ठ संवेदनात्मक सम्बन्ध को एजेण्डा– 21 में मान्यता दी गई है। एजेण्डा– 21 संयुक्त राष्ट्र द्वारा धारणीय विकास हेतु चलाया गया एक कार्यक्रम है। यह वैश्विक, राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर पर पर्यावरण पर मानवीय प्रभाव आंकने हेतु कार्य की एक वृहत् योजना है, जिनमें संयुक्त राष्ट्र सरकारों एवं अनेक समूहों को मिलकर कार्य करना है। 21 का तात्पर्य 21वीं सदी से है। एजेण्डा–21 का अध्याय–26 उन विभिन्न उपायों की पहचान करता है जिनके माध्यम से संयुक्त राष्ट्र अभिकरण, राष्ट्रीय सरकारें एवं देशीजन धरणीय विकास में देशीजनों की भूमिका को सुदृढ़ कर सकें। यह स्पष्ट करता है कि "प्राकृतिक पर्यावरण एवं धारणीय**

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

विकास के मध्य गहन अन्तर्सम्बन्ध को देखते हुए तथा देशी जनों की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं मित्र एवं धारणीय विकास को मान्यता देने, उन्हें समायोजित करने उनका प्रोन्नयन एवं सुदृढ़ीकरण करने में देशीजनों एवं उनके समूहों की भूमिका को मान्यता दी जायेगी।"

एजेण्डा– 21 यह स्वीकार करता है कि इस कार्यक्रम में निर्धारित कतिपय लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, अनुबन्ध संख्या– 169 जो स्वतंत्र राष्ट्रों के देशी एवं जनजातीय लोगों से सम्बन्धित हैं, तथा देशीजनों के ड्राफ्ट उद्घोषणा तथा देशीजनों पर संयुक्त राष्ट्र कार्यदल आदि वैधानिक अन्तर्राष्ट्रीय उपकरणों में पूर्व से ही निबद्ध हैं। एजेण्डा– 21 यह इस बात को भी मान्यता देता है कि देशी जनों के हितों के प्रति बुद्धिरत अन्तर्राष्ट्रीय चिन्ता से ही 1993 को विश्व देशीजनों हेतु अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष के रूप में मनाया गया।

3.5 जैवविविधता पर अनुबन्ध

'जैवविविधता पर अनुबन्ध' जिसे सामान्यतः जैव–विविधता अनुबन्ध कहा जाता है जून 1992 में रियोजिनेरियों में हस्ताक्षरित अन्तर्राष्ट्रीय संधि अनुबन्ध है। इस अनुबन्ध में प्रथमतः यह स्वीकारा गया है कि जैव–विविधता का संरक्षण सम्पूर्ण मानवता की सामान्य चिन्ता का विषय होना चाहिए तथा ऐसा किया जाना विकास प्रक्रिया का विषय होना चाहिए तथा ऐसा किया जाना विकास प्रक्रिया का अविभाज्य घटक है। यह सन्धि सभी परिवर्तनों जीवधारियों एवं जनांककीय स्रोतों को आच्छादित करती है। यह जैविकीय संसाधनों को धारणीयता के साथ दोहन हेतु परम्परागत संरक्षण तकनीकों को अपनाने पर भी बल देता है। यह सभी के मध्य जनांककीय स्रोतों, विशेषतः वाणिज्यिक प्रयोग हेतु निर्धारित, स्रोतों से उत्पन्न होने वाले प्रतिभाओं का उचित एवं साम्यपूर्ण वितरण किए जाने पर बल देती है। देशीजनों के अधिकार इस अनुबन्ध से भी स्वीकारे गए हैं किन्तु उनको सिद्धान्तः एक दिशा–निर्देश के रूप में ही मान्यता दी गई है, उनके वास्तविक क्रियान्वयन पर कुछ नहीं कहा गया है। इस सन्दर्भ में कहा जाता रहा है या आक्षेप किए जाते रहे हैं कि देशीजनों द्वारा एकत्रित औषधीय पादपों से सृजित फार्मास्यूटिकल क्षेत्र का उच्च आर्थिक मूल्य विकसित राष्ट्रों को इस सन्दर्भ में व्यवहार में कुछ करने से बचाता रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंगों, अभिकरणों, उपकरणों के अतिरिक्त राष्ट्रीय सरकारों एवं गैर–सरकारी संगठनों ने भी मूल–जनों के अधिकारों को मान्यता देने एवं उनके संवर्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई गई है जो भविष्य में निरन्तर बढ़ती जागरूकता के कारण और अधिक प्रभावपूर्ण एवं सकारात्मक हो सकेगी।

3.6 शरणार्थियों के अधिकार

"शरणार्थी' पद उस व्यक्ति को इंगित करता है, जिसे यह सुविचारित भय है कि उसे उसके मूल राष्ट्र में उसके धर्म, जाति/नस्ल, राष्ट्रीयता या किसी विशेष सामाजिक समूह अथवा किसी विशिष्ट राजनीतिक मत का होने के नाते उसका उत्पीड़न किया जा रहा है या किया जायेगा, और जो अपनी राष्ट्रीयता के राज्य से बाहर हों, तथा जो अपने मूल राष्ट्र की सुरक्षा प्राप्त नहीं कर पा रहा हो या उसे उसकी सुरक्षा पर विश्वास नहीं हो अथवा उसकी सुरक्षा प्राप्त नहीं करना चाहता हो।" 1951 के 'शरणार्थियों' की प्रास्थिति के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र अनुबन्ध में यह व्यवस्था है कि प्रत्येक व्यक्ति को उत्पीड़न अथवा उत्पीड़न के भय से मुक्त वातावरण में रहने का अधिकार है चाहे वह किसी भी नस्ल, धर्म, राष्ट्रीयता, सामाजिक समूह का सदस्य हो या किसी भी राजनीतिक मत को मानने वाला हो। यद्यपि सभी सरकारों को इस अनुबन्ध में दायित्वबद्ध किया गया है कि वे इसका अनुपालन कराएं किन्तु सभी सरकारें/राष्ट्र–राज्य ऐसा करने में सफल नहीं हुए हैं। प्रतिवर्ष विश्व के अनेक राष्ट्र राज्यों के देशद्रोह के नाम पर लाखों लोगों पर मुकदमा चलाया जाता है तथा उत्पीड़न किया जाता है। ये सरकारें अपने यहां अभिव्यक्ति एवं धर्म की स्वतंत्रता देने में असफल रही हैं। जब सरकारें व्यक्तियों के इन अधिकारों को प्रवर्तित नहीं कर सकती, ऐसी स्थिति में उन उत्पीड़ित व्यक्तियों को ऐसे दूसरे राष्ट्र–राज्य में शरण लेने का अधिकार है जो उनको सुरक्षा प्रदान करें। ऐसे व्यक्ति जो इस अधिकार का प्रयोग करते हैं उन्हें शरण पाने वाले' और कभी–कभी 'शरणार्थी' भी कहा जाता है।

1951 में 'शरण पाने के अधिकार' को एक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी मान्यता प्रदान की गई। यह सन्धि थी– 'शरणार्थियों की प्रास्थिति पर जेनेवा अनुबन्ध'। इस सन्धि के पक्षकारों को दायित्वबद्ध किया गया है कि वे उत्पीड़न से ग्रस्त व्यक्तियों को अपने यहां शरण प्रदान करें। 'शरणार्थी' की अवधारणा का 1967 के एक अन्य अनुबंध '1967 के प्रोटोकॉल' ने और अधिक विस्तार किया साथ ही, अफ्रीका एवं लैटिन अमरीकी

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

क्षेत्रों में किए गए क्षेत्रीय अनुबन्धों ने भी इसमें काफी कुछ जोड़ा। अब 'शरणार्थी' शब्द में 'युद्ध से भागे' अथवा 'गृह–हिंसा से पलायन' कर गए लोगों को भी शामिल किया जाने लगा।

3.7 1951 के शरणार्थियों पर अनुबन्ध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

'शरणार्थी परिवेश' की उत्पत्ति प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर अनेक देशों की राष्ट्रीय सीमाओं के पुनःसीमांकन के कारण हुई। प्रथम विश्व युद्ध के अन्त तक 'शरणार्थी' शब्द का तकनीकी अर्थ उन मानव समूहों के लिए प्रयुक्त किया जाता था, जिन्हें अपने मूल राष्ट्र में सुरक्षा प्राप्त नहीं है। इन्हें सामान्य प्रवासियों, जिन्हें आव्रजक कहा जाता था, से भिन्न करके देखा जाने लगा। 1920 में इस तथ्य को स्वीकारा गया कि विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् भी रूस की क्रान्ति एवं आरोमन साम्राज्य के अवसान के कारण यूरोप एवं एशिया माइनर में बड़े–बड़े मानव समूह एक राष्ट्र/स्थान से दूसरे राष्ट्र/स्थान को आव्रजन/पलायन कर रहे थे। फ्रिटड्ज नानसेन वह प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने इस समस्या को लेकर 1920 से 1922 तक चार वृहत मानवतावादी कार्य किए। उन्होंने मुख्यतः दक्षिणी पूर्वी यूरोप एवं सोवियत संघ सहित 26 देशों के लाखों युद्ध बन्दियों को अपने मूल राष्ट्र भिजवाया। इसे अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध विधि में 'Reptriation' कहा जाता है। 1921 में ही सोवियत संघ में भीषण अकाल पड़ा, जिसमें नानसेन को ही 20 मिलियन से अधिक भुखमरी से पीड़ित लोगों की सहायता व पुनर्वास का कार्य सौंपा गया। प्रथम विश्व युद्ध एवं विश्व युद्ध के कारण युद्धोत्तर वर्षों में हुई विभिन्न घटनाओं के कारण लगभग 1–5 लाख लोग शरणार्थियों एवं विस्थापितों के रूप में विभिन्न देशों में रह रहे थे। लीग ऑफ नेशन्स (राष्ट्र संघ) ने नानसेन को ही शरणार्थियों हेतु प्रथम उच्चायुक्त नियुक्त किया। जब विस्थापितों को अपने पहचान–पत्र की जरूरत हुई तो नानसेन ने 'नानसेन पासपोर्ट' आरम्भ किया। यह ''नानसेन पासपोर्ट' वर्तमान 'शरणार्थियों की मात्रा हेतु अनुबंध' का प्रस्थान बिन्दु था।

1945 में नव लीग ऑफ नेशन्स के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई तो इस बात को अन्तर्राष्ट्रीय सहमति मिली कि शरणार्थियों की देखभाल के मुद्दे को अन्तर्राष्ट्रीय चिन्ता का विषय बनाया जाना चाहिए तथा संयुक्त राष्ट्र चार्टर की मूल भावना के अनुरूप सदस्य राष्ट्रों को ऐसे लोगों के प्रति अपनी सामूहिक जिम्मेदारी निभानी चाहिए जो अत्याचार के डर से पलायन कर रहे हों। इस दृष्टि से, शरणार्थियों की समस्या को विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय चिन्ता का विषय मानते हुए संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्गत शरणार्थियों हेतु एक 'पृथक एवं स्वायत्त निकाय' 'अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी संगठन' की स्थापना भी की गई। इसका कार्य उन शरणार्थी समूहों को संरक्षण प्रदान करना था जिन्हें लीग ऑफ नेशन्स के द्वारा मान्यता दी गई है। इसके साथ ही इसे द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् पूरे यूरोप में बिखरे 21 मिलियन शरणार्थियों को सुरक्षा देने का दायित्व भी सौंपा गया था। बाद में, 1951 में इसका स्थान 'शरणार्थियों हेतु संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त' ने ले लिया। वर्तमान में शरणार्थी विधि हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय वैधानिक दस्तावेज 1951 का शरणार्थियों की प्रस्थिति पर संयुक्त राष्ट्र अनुबंध था, जिसने पहली बार शरणार्थियों को एक वैधानिक प्रास्थिति प्रदान की। यह वस्तुतः युद्ध के यूरोपीय अनुभव की उपज था। यह एक वैधानिक रूप से बाध्यकारी संधि है एवं उसे अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी कानून में एक 'मील का पत्थर' समझा जाता है। यह सर्वप्रथम ''शरणार्थी'' शब्द की एक व्यापक परिभाषा करता है तथा उसे किसी राष्ट्र–विशेष के समूहों तक सीमित नहीं मानता किन्तु इस अनुबंध की भारी कमी यह है कि इसका अधिकार क्षेत्र 1951 तक मात्र यूरोप में हुए शरणार्थियों तक ही सीमित था। इसीलिए 1967 में एक प्रोटोकॉल घोषित किया गया जिसमें देश एवं काल इन सीमाओं को तोड़ते हुए अनुबंध को सभी देशों के शरणार्थियों तक विदित कर दिया गया एवं इसे वास्तविक रूप से 'सार्वभौम' बना दिया गया।

3.8 1951 के शरणार्थी प्रास्थिति अनुबंध के अन्तर्गत शरणार्थियों के अधिकार–

'शरणार्थियों की प्रास्थिति पर संयुक्त राष्ट्र अनुबंध' की प्रस्तावना शरणार्थियों से सम्बन्धित मसलों पर गहरी चिन्ता व्यक्त करती है एवं उनके लिए अधिकतम संभव मूल अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं की व्यवस्था करता है। बिना अन्तर्राष्ट्रीय सहमति के शरणर्थियों की समस्या का समाधान नहीं हो सकता एवं शरण देने से कभी–कभी राष्ट्रों के मध्य गहरे तनाव उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए इस समस्या के सामाजिक एवं मानवीय पहलुओं को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र द्वारा वह सब कुछ करने को प्रतिबद्धता दर्शाई है, जिससे यह राष्ट्रों के मध्य तनाव का कारण न बने। इस अनुबन्ध में शरण पाने वाले शरणार्थी को निम्न अधिकार प्रत्याभूत किए गए हैं–

अनुच्छेद– 01– 'शरणार्थी' शब्द को परिभाषित करता है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

अनुच्छेद– 02– प्रत्येक शरणार्थी, जिस देश में शरण लिया हुआ है के प्रति दायित्वबद्ध होगा।

अनुच्छेद– 03– नस्ल, धर्म एवं मूल राष्ट्र के नाम पर कोई विभेद नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद– 04– शरणार्थियों को अपने धर्म को मानने एवं अपने बच्चों को अपनी धार्मिक शिक्षा देने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद– 07– व्यवहार की समानता।

अनुच्छेद– 08– राष्ट्रीयता का अधिकार।

अनुच्छेद– 13– चल एवं अचल सम्पत्ति अर्जित करने का अधिकार।

अनुच्छेद– 15– संगठनों– गैर–राजनीतिक एवं गैर–लाभकारी बनाने का अधिकार।

अनुच्छेद– 16– एक शरणार्थी को न्यायालय की शरण लेने का अधिकार होगा। उसके साथ शरण देने वाले देश में न्यायालयों में देश के मूल नागरिक की भांति व्यवहार किया जायेगा।

अनुच्छेद– 17– शरणार्थी को मजदूरी रोजगार करने का पूर्व अधिकार होगा।

अनुच्छेद– 18– शरणार्थी को स्व–रोजगार करने, अपने कृषि, हस्तशिल्प, उद्योग वाणिज्य आदि विशेषज्ञक संक्रियाओं को करने का पूर्ण अधिकार होगा।

अनुच्छेद– 19– किसी भी उदार व्यवसाय को करने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद– 20– शरणार्थी को राशनिंग व्यवस्था का लाभ लेने तथा सार्वजनिक वितरण एवं आपूर्ति प्रणाली का उपयोग करने का पूर्ण अधिकार होगा।

अनुच्छेद– 21– आवास का अधिकार

अनुच्छेद– 22– बुनियादी शिक्षा पाने एवं विदेशी स्कूल सर्टिफिकेट प्राप्त करने का अधिकार।

अनुच्छेद– 23– आपदा के समय मूल निवासियों की तरह राहत एवं सहायता पाने का अधिकार।

अनुच्छेद– 24– शरणार्थियों को भी शरण देने वाले देश के विभिन्न विद्यालयों जैसे मानदेय, काम के घण्टों, अतिरिक्त काम के प्रबन्ध, रोजगार की न्यूनतम आयु आदि में दी गई सुविधाओं का समान लाभ पाने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद– 26– भ्रमण एवं संचरण की स्वतंत्रतां

अनुच्छेद– 27– शरण देने वाले राष्ट्र से परिचय पत्र पाने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद– 28– शरण देने वाला राष्ट्र अपने राष्ट्र से बहिर्गमन हेतु शरणार्थी को पासपोर्ट जारी करेगा।

अनुच्छेद– 30– किसी शरणार्थी को अपने मूल राष्ट्र से समस्याएं राष्ट्र या जिस राष्ट्र में वे बसना चाहते हों, में अपनी परिसम्पत्तियों के अंतरण की स्वतंत्रता होगी।

अनुच्छेद– 31– ऐसे शरणार्थियों को वैधानिक रूप से प्रवेश करने पर शरण देने वाले देश किसी प्रकार का कोई अर्थदण्ड अधिरोपित नहीं करेंगे जिनका जीवन वास्तव में उनके मूल राष्ट्र में खतरे में हो।

अनुच्छेद– 32– राष्ट्रीय सुरक्षा एवं लोक व्यवस्था के नाम पर शरण देने वाले राष्ट्र किसी शरणार्थी को निष्कासित नहीं करेंगे।

अनुच्छेद– 33– शरण देने वाला राष्ट्र किसी शरणार्थी को ऐसे स्थान एवं सीमाओं पर जाने को नहीं कहेंगे, जहां उसके जीवन को संकट हो और यह संकट उसकी नस्ल, धर्म, राष्ट्रीयता, किसी विशिष्ट सामाजिक समूह के सदस्य अथवा किसी विशेष राजनीतिक मत को मानने के कारण थे।

अनु0–4–3, 4–9 शरण देने वाले राष्ट्र यथासम्भव शरणार्थियों के विलोपीकरण एवं तटस्थीकरण का प्रयास करेंगे।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इस प्रकार 1951 का यह अनुबन्ध व्यापक रूप से शरणार्थियों की प्रास्थिति एवं उनके अधिकारों की चर्चा करता है। इसने शरणार्थियों के अधिकारों को वैधानिक प्रास्थिति प्रदान की एवं मानवता के इस कष्ट को सहन कर भाग के प्रति सभ्य मानवता की आत्मीय सहानुभूति प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आन्तरिक रूप से विस्थापित व्यक्ति

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कुछ नवीन स्थितियां सामने आई। जहां 'शरणार्थी' अपने देश की राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर के देश में शरण लेते हैं, वहीं राष्ट्रों के अन्दर भी युद्ध जैसी (गृह युद्ध, नृ–जातीय हिंसा, साम्प्रदायिक दंगे आदि) स्थितियां उत्पन्न होने पर विश्व के कई राष्ट्रों में लोगों को राष्ट्र के अन्दर ही विस्थापित होना पड़ा, ऐसी नई आन्तरकि भयजनित पलायन की स्थिति को 'आन्तरिक विस्थापन' एवं ऐसे मानवों मानव–समूहों को आन्तरिक रूप से विस्थापित कहा गया। गृह युद्ध के कारण लोगों को अपने देश के अन्दर ही ऐसे दूरस्थ सुविधाविहीन स्थानों में पलायन करना पड़ता है। यह 'विस्थापन' मुख्यतः दो कारणों–गृह युद्ध एवं विकास परियोजनाओं के कारण होता है। संयुक्त राष्ट्र ने 'आन्तरिक रूप से विस्थापित व्यक्ति/व्यक्तियों की पहचान' ऐसे मानव या मानव समूहों के रूप में की है जो अपने मूल निवास या घर को छोड़कर भागने/पलायित होने को मजबूर हुए हों। इसका कारण विशेष रूप से सामान्य हिंसा, सैन्य–संघर्ष से उत्पन्न युद्ध जैसी स्थिति, प्राकृतिक या मानव निर्मित आपदाएं आदि होते हैं किन्तु ऐसे पलायित व्यक्ति/व्यक्ति समूह अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को पार नहीं करते।

वर्तमान समय में एक अनुमान के अनुसार सम्पूर्ण विश्व में लगभग 20 से 25 मिलियन लोग आन्तरिक रूप से विस्थापित हैं। इनमें से अधिकांश अमानवीय दशाओं में असुरक्षित जीवन व्यतीत कर रहे हैं। लोग नागरिक या अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध, राजनीतिक संघर्ष, नस्लीय नरसंहार एवं अन्य मानवाधिकार उल्लंघनों के कारण अपने मूल स्थान को अपने पुश्तैनी घर एवं गांव को सदैव के लिए छोड़ने को विवश होते हैं। अनेक व्यक्ति प्राकृतिक आपदाओं यथा– सूखा, भूकम्प, भू–स्खलन आदि से एवं आर्थिक विकास परियोजनाओं यथा– बांध निर्माण, उद्योग–अवस्थापन, ,खनन आदि के कारण भी विस्थापित होते हैं। ऐसी हिंसा या आपदा के शिकार व्यक्ति यथाशीघ्र भागना चाहते हैं किन्तु वर्तमान समय में अधिकांश देश सभी 'शरणार्थियों' को 'वेलकम' नहीं करते इसलिए ऐसे पलायित मानक मानव समूह राष्ट्रीय सीमाओं को भी पार नहीं कर पाते। इसीलिए, ऐसी स्थिति में वर्तमान विश्व में "शरणार्थियों" की संख्या कम हुई है, किन्तु आंतरिक रूप से विस्थापित व्यक्तियों की संख्या नाटकीय रूप से बढ़ी है।

दक्षिण एशिया में 'शरणार्थी'–परिदृश्य– दक्षिणी एशिया में बांग्लादेश में लगभग 50,000 बर्मी शरणार्थी हैं। भारत में सरकारी अनुमान के अनुसार लगभग 50,000 चकमा शरणार्थी हैं जो बांग्लादेश के चटगांव के पर्वतीय प्रदेश से भारत में पलायित हुए हैं। साथ ही, 20,000 के लगभग अफगान शरणार्थी भी भारत में हैं। 'चकमा' शरणार्थी मूलतः भारत में त्रिपुरा के शरणार्थी शिविरों में पंजीकृत होते थे बाद में 'चकमा' भारत में एक आंतरिक समस्या के रूप में देखा जाने लगा। आज अनुमान है कि उत्तर–पूर्व के त्रिपुरा, मेघालय, मिजोरम एवं अरूणाचल प्रदेश में 1 लाख से अधिक 'चकमा' और 'हेजोंग' शरणार्थी रह रहे हैं। इसी प्रकार 30,000 के लगभग भूटानी एवं 1959 से ही 1.25 लाख के लगभग तिब्बती भी भारत में शरण लिए हुए हैं। तिब्बती अनेक छोटे–छोटे पॉकेटों के अलावा मुख्यतः धर्मशाला एवं मैसूर में बसाए गए हैं। उपरोक्त के अलावा भारत में बहुत कम संख्या में श्रीलंकाई, तमिल, सूडानी, ईरानी, सोमाली आदि शरणार्थी भी हैं। 1970 के दशक में पाकिस्तान अफगान शरणार्थियों का गढ़ हुआ करता था।

भारत सरकार ने मात्र शरणार्थियों के तीन समूहों को मान्यता दी है वे हैं– चकमा (बांग्लादेशी), तिब्बती एवं श्रीलंकाई तमिल। अन्यों को नई दिल्ली स्थित संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग ने मान्यता दे रखी है। यह अचरज भरी विडम्बना है कि सार्क का कोई भी सदस्य राष्ट्र न तो 1951 के शरणार्थियों की प्रस्थिति पर संयुक्त राष्ट्र अनुबन्ध के पक्षकार हैं और न ही 1967 के प्रोटोकॉल के। दक्षिण–एशिया में शरणार्थियों की संरक्षा व सुरक्षा पर राष्ट्रीय कानून एवं सम्बन्धित राष्ट्र के संविधान के प्रावधानों के अनुरूप विचार किया जाता है। भारत को मुख्यतः एक 'शरणार्थी मित्र' देश के रूप में देखा जाता है तथा शरणार्थियों की देखभाल के सम्बन्ध में भारत का अच्छा इतिहास रहा है। यदि चाहे तो भारत महत्तर संरक्षण, जवाबदेही एवं पारदर्शिता हेतु 'शरणार्थियों की प्रस्थिति पर संयुक्त राष्ट्र अनुबंध' पर हस्ताक्षर कर सकता है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

3.10 सारांश

अतः आज की आवश्यकता मानवाधिकारों का संरक्षण के लिए कुशल शासन की स्थापना, न्यायपालिका की स्वतंत्रता व निष्पक्षता, मानवाधिकार आयोग की सक्षमता, सेना और पुलिस की उचित भूमिका तथा लोगों में राजनीतिक चेतना जगाना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि साथ ही इन व्यवस्थाओं को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति सशक्त और सजग होने की भी आवश्यकता है तभी एक ऐसे समाज का निर्माण हो सकेगा जिसकी अधारशिला मानवीय मानवतावाद, भ्रातृत्व, संस्कृति और मातृत्व पर आधारित होगी तथा विश्व समुदाय एक उपवन की भांति खिल सकेगा।

3.11 बोध प्रश्न

1. विकास के अधिकार से आप क्या समझते हैं?
2. देशीजनों के मानवाधिकारों के प्रोन्नयन हेतु संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न अभिकरणों को संक्षेप में चर्चा कीजिए।
3. जैव–विविधता पर अनुबन्ध क्या है?
4. शरणार्थियों के अधिकार के बारे में एक विश्लेषणात्मक वर्णन करें।

3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. देखें भाग 3.2
2. देखें भाग 3.3
3. देखें भाग 3.5
4. देखें भाग 3.6

3.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- *Freeman, Michael). Human rights : an interdisciplinary approach. Cambridge: Polity Press, 2002.*
- *Doebbler, Curtis F. J Introduction to international human rights law. Cd Publishing, 2006.*
- *Ishay, Micheline R. The history of human rights : from ancient times to the globalization era. Berkeley, Calif.: University of California Press, 2008.*
- *Glendon, Mary Ann).A world made new : Eleanor Roosevelt and the Universal Declaration of Human Rights. New York: Random House, 2001.*
- *Sepúlveda, Magdalena; van Banning, Theo; Gudmundsdóttir, Gudrún; Chamoun, Christine; van Genugten, Willem J.M. Human rights reference handbook (3rd ed. rev. ed.). Ciudad Colon, Costa Rica: University of Peace, 200).*

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-117
मानवाधिकार

खंड–2

मानवाधिकारः दार्शनिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

इकाई – 1

मानव अधिकार का इतिहास

इकाई– 2

मानव अधिकार आंदोलन

इकाई–3

मानव अधिकार का सिद्धांत

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

खंड परिचय

समाज के उद्भव एवं विकास के क्रम में मानव अधिकारों की समस्या प्रत्येक नये दिन के साथ और अधिक गंभीर होती जा रही है। प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्धों की विभीषिका झेलने के बाद संपूर्ण विश्व को यह भलीभांति लगने लगा कि मानव मात्र के साथ अत्याचार अब और बर्दाश्त नहीं करना चाहिए अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब इस दुनिया से मानव ही समाप्त हो जाएंगे। मानव अधिकार एवं स्वतंत्रताओं से संबन्धित समस्याओं को प्राथमिकता देना एक आवश्यकता बन गई। संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा सन् 1948 के दिसंबर माह में मानवअधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा मानवता के इतिहास में पहली बार संपूर्ण विश्व ने सार्वभौमिक प्रकृति का राजनैतिक विधिक दस्तावेज स्वीकार करके यह दृढ़ संकल्प जता दिया कि बस बहुत हुआ अब और नहीं। वैसे मानव अधिकारों की अवधारणा कोई नई बात नहीं प्रत्येक समाज में अपनी संस्कृति, धार्मिक मान्यताओं, दार्शनिक एवं राजनैतिक चिंतन एवं विधिक विकास के आधार पर मानव अधिकारों का स्थान रहा है। किसी धर्म का संप्रदाय ने मानवता के विरूद्ध कभी कोई बात नहीं कही लेकिन इतिहास बताता है कि हर युग में कभी कम कभी ज्यादा मानव को दुःख का सामना, चाहे वह राज्य के द्वारा या उसके अपने समाज के द्वारा या अन्य मनुष्यों द्वारा हो, करना पड़ा है।

इस खंड में तीन इकाइयाँ अर्थात इकाई 1, 2 और 3 शामिल हैं। इस खंड में आप अध्ययन करेंगे कि मानव अधिकारों का इतिहास किस प्रकार का रहा और कैसे मानवअधिकारों का विकास हुआ। मानव अधिकारों की संकल्पना, उनके सिद्धांत और उनके स्वरूप का अध्ययन भी इसी खंड की इकाई दो में प्रस्तावित है। इस इकाई में हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि मानव अधिकारों को सर्वाधिक बल प्रदान करने में किस विचारधारा का योगदान रहा।

इस खंड की इकाई तीन में मानव अधिकारों के संबन्ध में हुए विशिष्ट आंदोलनों का अध्ययन किया जाना है। वास्तव में जिस स्वरूप में मानवाधिकार आज है उनके विकास में इस आंदोलनों की बड़ी महती भूमिका रही है। विश्व की प्रमुख सभ्यताओं का मिलन हो या किसी देश की आंतरिक व्यवस्थाओं में उथलपुथल हो इन सभी घटनाओं के होने में या इस घटनाओं के परिणाम के स्वरूप में मानवाधिकार कहीं न कहीं या किसी न किसी रूप में एक विषय के रूप में संलग्न जरूर रहे हैं। उदाहरण के लिए मध्ययुग में भारत पर बाहरी शक्तियों के लगातार आक्रमण के पश्चात् एक ऐसा दौर आया जब दो भिन्न सभ्यताओं के लोगों ने आपस में मिलकर रहना सीखा और एक दूसरे का आदर किया। इंग्लैंड में आन्तरिक उथलपुथल और संघर्ष केवल सत्ता संघर्ष न होकर मानवाधिकारों की मान्यता के लिये प्रयास भी था। भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन एवं दुनियाभर के अन्य स्वतन्त्रता आंदोलन मानवाधिकारों से ही प्रेरित हुए। यह एक विचित्र बात थी कि यूरोपियन देशों ने, जहाँ मानवाधिकारों का वर्तमान संदर्भ में न केवल उदय हुआ बल्कि उनको बहुत हद् तक लागू भी किया गया, अपने उपनिवेशों में मानवाधिकारों का सर्वाधिक हनन किया।

मोटे तौर पर अनुमानों के अनुसार (ऐसा माना जाता है) भारत की 20% जनसंख्या ही पूर्णरूप से सम्पन्न है। 80% लोग किसी न किसी रूप से मानवाधिकारों के किसी न किसी आयाम से वंचित है। और इनके मानवाधिकारों की रक्षा के लिए सरकारें अपनी–अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करती हैं। हजारों की संख्या में एन0जी0ओ0 इस देश में इसी दिशा में कार्य कर रहे हैं। परन्तु स्थिति लगभग जस की तस हैं। आजादी के लगभग 70 वर्ष बाद भी दलित, पिछडों, अल्पसंख्यकों की स्थिति में शायद ही कोई अंतर आया हो जब कि इनकी दशा में सुधार के लिए आंदोलन स्तर पर कार्य करने की बात कही जाती है।

इस खंड की इकाइयों का अध्ययन करते समय आप देखेंगे की इकाईयों की प्रस्तुति वर्णनात्मक के साथ विश्लेषणात्मक भी है। जिससे आप न केवल विषय वस्तु को जान समझ सके बल्कि, कमी कहाँ है ? इसका भी ज्ञान आपको हो सके। इस पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य यही है कि आप विश्लेषणात्मक पद्धति से समझने का प्रयास कर यह जान सकें कि अपने देश में हम कैसे उन स्थितियों का सामना त्वरित गति से करने में सफल हों जिनका सामना अन्य देशों की जनता कर चुकी है, एवं अपने–अपने देशों में लागू लोकतांत्रिक व्यवस्था का भरपूर आनंद उठा रही है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई 1 – मानवाधिकार का इतिहास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्राचीन विश्व में मानवाधिकार

1.2.1 प्राचीन भारत

1.2.2 मेसोपोटामिया एवं सुमेर सभ्यता का काल

1.2.3 रोमन काल

1.2.4 इस्लाम का उदय

1.2.5 मध्ययुग कालीन इतिहासः पाश्चात्य जगत

1.3 आधुनिक युग में मानवाधिकार

1.3.1 पूर्व आधुनिक काल

1.3.2 पुनर्राजागरण काल

1.3.3 उन्नीसवीं शताब्दी में हुए संघर्ष एवं मानवाधिकार

1.3.4 19वीं सदी, प्रथम विश्वयुद्ध एवं मानवाधिकार

1.3.5 द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले मानवाधिकार

1.3.6 द्वितीय विश्वयुद्ध का पश्चात

1.3.7 जिनीवा अभिसमय एवं युद्ध के दौरान मानवाधिकार

1.3.8 संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन एवं उसके तत्वाधान में हुए प्रयास

1.4 सारांश

1.0 उद्देश्य

मानवाधिकारों का विचार मानव सभ्यता के इतिहास जितना पुराना है। मानव ने मानव की भाँति जीवन–यापन करने के लिए बहुत संघर्ष किया है जो निरन्तर जारी है। संपूर्ण मानव जाति को और विशेषतया स्त्रियों, बच्चों और समाज के कमजोर तबकों को ध्यान में रखते हुए, इस इकाई का उद्देश्य आपको विश्वभर में मानवाधिकारों के इतिहास से अवगत कराना है। इसे पढ़कर आप मानवाधिकारों के उद्भव एवं विकास के बारे में समझते हुए मानवाधिकारों के क्रियान्वयन में आने वाली अड़चनों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- मानव द्वारा गरिमा से जीने की दिशा में किये गये प्रयासों, जो अभी तक अनवरत रूप से जारी हैं, का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुए घटनाक्रमों का अध्ययन कर भविष्य के लिए रूपरेखा तैयार कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

मानवाधिकार सार्वभौमिक प्रकृति के है एवं जर्मन दार्शनिक फ्रेडेरिक हीगल (1770–1831) ने सार्वभौमिक विधियों को किसी सभ्य राष्ट्र का आवश्यक तत्व माना है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

बड़ी–बड़ी सभ्यताएं मानवता के इतिहास में अपना सम्मान इस बात से पाती हैं कि उनके काल में मानव की दशा कैसी रही। भारतवर्ष, चीन, रोमन साम्राज्य और अरब देशों में कुछ सार्वभौमिक प्रकृति के सिद्धांतों को निरन्तर अपनायें रखा गया जिससे उनका स्थान विश्व की महानतम् सभ्यताओं में माना जाता है। भारत में आज भी जब अच्छे शासनतंत्र की बात की जाती है तो रामराज्य की कल्पना स्वतः ही मस्तिष्क में उभर आती है। रामराज्य एक कोरी कल्पना मात्र नहीं है यह वह आदर्श व्यवस्था है जिसमें समाज ने अंतिम व्यक्ति की बात का भी वही महत्व हो जो राजा की बात का। ईसामसीह ने अपने प्राण देकर मानवता की रक्षा के लिए प्रेरणा देने का कार्य किया। मुहम्मद साहब ने तत्कालीन अरब समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाने के लिए अथक प्रयास किया। यह सब बाते हमारे विशाल इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से दर्ज है। इस इकाई में हमें न केवल उपरोक्त लक्ष्य बल्कि मानवाधिकारों का अद्यतन इतिहास जानना है। जस्टिस (स्व0) वी0आर0 कृष्णा अय्यर के शब्दों में "आखिरकार मानवाधिकारों को एक वास्तविकता बनाना मानवता की इतिहास से वचनबद्धता है"।

1.2 प्राचीन विश्व में मानवाधिकार

मानवाधिकारों से संबन्धित आधुनिक इतिहास का अध्ययन करने के पूर्व आइए पहले प्राचीन विश्व में मानवाधिकारों की स्थिति पर चर्चा करें।

1.2.1 प्राचीन भारतः

मानव इतिहास के प्रारम्भ से ही मनुष्य को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कभी प्रकृति से तो कभी अपने जैसे मनुष्यों से लगातार संघर्ष करते रहना पड़ा है। राज्यों की स्थापना का उद्देश्य हमेशा मानव अधिकारों के सिद्धांतों की स्थापना या उनका संरक्षण नहीं रहा। 'श्रेष्ठ ही बचा रहेगा' या 'ताकतवर ही राज्य करेगा' ही एक मात्र सिद्धांत था, है और रहेगा। आज के समय, खासतौर से द्वितीय विश्व के बाद से प्रयास रहा है कि कमजोर लोगों के हितों का भी ध्यान रखा जाए। पुराने समय में राज्य अपने ज्यादातर विवादों का हल युद्ध में खोजा करते थे अतः प्राचीन एवं मध्य युग में युद्ध द्वारा ही अधिकारों का निर्णय किया जाता था।

प्राचीन भारत में मानवाधिकारों और मानवीय विधियों की संकल्पना युद्धों पर आधारित थी और युद्ध के पहले, दौरान एवं उसके अंत में जिस विधियों का पालन किया जाता था उनका आधार भी यही संकल्पना थी। मानवाधिकारों को मापने का माप दण्ड युद्ध के मैदान में दोनों पक्षों का आचरण था। मनु स्मृति, महाभारत एवं अर्थशास्त्र (कौटिल्य) आदि प्राचीन ग्रंथों में युद्ध संबंधी नियम पाये जाते हैं। विभिन्न अस्त्र–शस्त्रों से लदे योद्धा अपने समान अस्त्र–शस्त्रों वाले योद्धाओं से ही लड़ते थे। अपार लोक क्षति उत्पन्न कर सकने वाले हथियारों का उपयोग केवल विशेष परिस्थितियों में ही किया जा सकता था उदाहरण के लिए लक्ष्मण ने रामायण में ब्राम्हास्त्र का प्रयोग नहीं किया न ही अर्जुन ने पाशुपातास्त्र का प्रयोग महाभारत में किया। मनु के अनुसार सोते व्यक्ति को बिना हथियार वाले को, नंगे व्यक्ति को, युद्ध को केवल देखने वाले को और दूसरे व्यक्ति के साथ लड़ रहे व्यक्ति को युद्ध के दौरान नहीं मारना चाहिए। [इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल वर्क इन इंडिया, खंड दो (भारत सरकार प्रकाशन प्रभाग, नई दिल्ली, 1987) पेज सं0 90–95]

युद्ध का अर्थ धर्म युद्ध से था और युद्ध बंदियों, घायलों एवं बीमारों के संबंध में समुचित नियम बनाये गये थे। महाभारत में स्पष्ट उल्लेख है कि युद्ध बंदियों के साथ अपने बच्चों की तरह व्यवहार करना चाहिए। महिला युद्ध बंदियों के साथ और भी ज्यादा मानवतावादी व्यवहार के लिए नियम थे। उनके द्वारा शादी इत्यादि से इन्कार करने पर उनको सम्मान सहित उनके परिवारों को वापस भेज दिया जाता था। उदाहरण के लिए कृष्णदेव राय ने उत्तर विजय नगर काल में पराजित राजपूत राजा की पत्नी को वापस लौटा दिया था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि चंद्र गुप्त मौर्य ने युद्ध में पकड़े गये बंदियों को वापस कर दिया था। महाभारत काल में युद्ध केवल सूर्योदय से सूर्यास्त तक होता था रात्रि में विरोधी पक्ष के लोग एक दूसरे के खेमों मे आ जा सकते थे। 'बसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धांत न केवल प्रतिपादित किया जा चुका था बल्कि उसका सच्चे अर्थों में प्रयोग किया जाता था। सहनशीलता, व्यक्ति मात्र का सम्मान, शान्ति और सहयोग इस सिद्धांत में स्वतः ही समाविष्ट हैं। सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा का प्रचार भगवान बुद्ध एवं भगवान महावीर के काल में अपने चरम पर था। मनु ने अपनी विधि संहिता 'धर्मशास्त्र' पूरी मानव जाति के लिए समर्पित की थी ताकि केवल किसी विशेष राष्ट्र के लिए मानवाधिकारों की विधिक अवधारणा की सार्वभौमिक स्वीकारता पर बल दिया जा सके।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1.2.2 मेसोपोटामिया एवं सुमेर की सभ्यताएंः

ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी ईसाई मेसोपोटामिया की सभ्यता मौजूद थी और ईसा पूर्व चौबीसवीं सदी में वहाँ उरूकगीना नाम का शासक था जो अपने भ्रष्टाचार विरोधी कार्यों के लिए जाना जाता था और अभिलिखित इतिहास में पहली विधिक संहिता का वहाँ होना माना जाता है। हालाँकि इसके होने के वास्तविक प्रमाण नहीं है लेकिन अन्य उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि विधवाओं एवं अनाथों को करों से मुक्त कर दिया गया था। उरूकगीना की संहिता सरकारी सुधारों का पहला प्रयास माना जाता है जिसके अंतर्गत स्वतंत्रता और बराबरी का उच्च स्तर प्राप्त करना था।

सुमेर सभ्यता में सबसे पुराने विधिक संहिता के प्रमाण पाये गये हैं जिसे नियो' सुमेरियन कोड ऑफ उर–नम्मू (Neo-sumerian Code of Ur-Nammu (2050 BC) के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा मेसोपोटामिया में अन्य प्रकार के कानूनों के होने के भी प्रमाण है जिसके हम्मूराबी की संहिता (1780 बी0सी0) भी शामिल है। इसमें नियम थे और नियम तोड़ने पर दंड की व्यवस्था की गयी थी। इसमें स्त्रियों, पुरूषों, बच्चों एवं दासों के अधिकारों का वर्णन था। हम्मूराबी बेबीलोन का छठा राजा था।

छठी सदी ईसा पूर्व में साइरस महान नामक सम्राट हुआ जिसके प्राचीन ईरान में अभूतपूर्व मानवाधिकार सिद्धांतों की स्थापना की, 539 वर्ष ईसा पूर्व में बेबीलोन की विजय के उपरांत उसने साइरस सिलिंडर जारी किया जिसकी खोज 1879 में हुई और इसके आज मानवाधिकारों का प्रथम दस्तावेज माना जाता है, उसने दासों को मुक्त कर दिया और घोषणा भी कि सभी लोगों को अपना संप्रदाय चुनने की स्वतंत्रता है। उसने वंशगत बराबरी की स्थापना की। साइरस सिलिंडर विश्व का पहला मानवाधिकार चार्टर माना जाता है। इसका अनुवादन संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मान्य छः शासकीय भाषाओं में किया गया है और इसके प्रावधानों को मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के प्रथम चार अनुच्छेदों में रखा गया है।

1.2.3 रोमन काल

प्राचीन ग्रीस में नागरिकता के अधिकार होने की बात सामने आती है जहाँ सभी स्वतंत्र नागरिकों को राजनैतिक सभा में बोलने एवं मताधिकार था।

बेबीलोन से मानवाधिकार का विचार ग्रीस और रोम तक फैला। प्राकृतिक विधि की अवधारणा उत्पन्न हुई जिसके अनुसार लोग अपने जीवन में कतिपय बिना लिखे हुए कानूनों का अनुसरण करते है। रोमन कानून वस्तुओं की प्रकृति से निकाले गये तर्क युक्त विचारों पर आधारित था। प्लेटो (427–348 बी0सी0) ने बहुत पहले सार्वभौमिक नैतिक आचार संहिता की वकालत की थी। रोमन विधि शास्त्री अल्पाइन के अनुसार प्राकृतिक विधि वह है जो प्रकृति एवं राज्य के द्वारा मानव के लिए प्रदत्त किया जाता है। उनके अनुसार विदेशियों के साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो नागरिकों के साथ होता है। इसमें युद्धों को भी सभ्य तरीकों से लड़ने पर बल दिया गया। अरस्तु (384–322 बी0सी0) अपने ग्रंथ पॉलिटिक्स में कहा कि न्याय, सदाचार और अधिकार विभिन्न प्रकार के संस्थानों एवं परिस्थितियों के अनुसार बदल जाते हैं। जिससे (106–43 बी0सी0) ने अपने ग्रंथ 'द लॉज' में 'प्राकृतिक विधि' एवं 'मानवाधिकारों' की आधारशिला रखी।

1.2.4 इस्लाम का उदय

तत्कालीन अरब समाज की दशा बहुत विचित्र थी। लोग कबीलों में बंटे थे और इन कबीलों में अक्सर युद्ध होते रहते थे। सामाजिक सुरक्षा जैसी कोई बात नहीं थी। सबसे ज्यादा परेशानी स्त्रियों और बच्चों को उठानी पड़ती थी क्योंकि पारिवारिक ढाँचे का अभाव था। मुहम्मद साहब ने इन सभी सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। उन्होंने राजकीय विशेषाधिकारों का विरोध किया और योग्यता को बढ़ावा दिया। इस्लाम की समतावादी प्रकृति ने सभी को प्रभावित किया और गरीबों और दबे कुचले लोगों ने इसे अपना लिया। 622 ई0 में मुहम्मद साहब ने मदीना चार्टर तैयार किया। यह चार्टर मदीना ने सभी प्रभावशाली कबीलों और मुहम्मद साहब के बीच एक औपचारिक करार के रूप में था जिसका उद्देश्य युद्धों को बंद करना था और सभी पक्षों के अधिकार–कर्त्तव्यों को नियत करना था। इसके द्वारा सामुदायिक सुरक्षा, धार्मिक स्वतंत्रता, स्त्रियों की सुरक्षा और झगड़े निपटाने के लिए न्यायिक प्रणाली आदि की व्यवस्था की गई। युद्ध बंदियों के अधिकारों पर बल दिया गया। इस्लाम आने पर तत्कालीन दासों की दशा पर गहरा प्रभाव पड़ा दासों को भी मानव की तरह देखा गया और उन्हें कुछ धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार दिये गये।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

सिसरो को विश्वास था कि एक सार्वभौमिक मानवाधिकार विधि होनी चाहिए जो रूढ़ि एवं सिविल विधियों से ऊपर हो। सोफोक्लेस (495–406 बी0सी0) राज्य के विरूद्ध राय के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पक्षधर था। स्टोइक्स ने प्राकृतिक विधि के नैतिक सिद्धान्त पर बल दिया जो प्रकृति के समकक्ष हो और जिसे सिविल सोसाइटी और सरकार के लिए मानक के रूप में प्रयोग किया जा सके। बाद में ईसाइयत को आधार मानते हुए इस प्राकृतिक विधि को दैवीय विधि मान लिया गया। सेण्ट थॉमस एक्वीनॉस (1225–1274) ऐसा मानने वालों में प्रमुख थे।

ग्रीस में नागरिकों को बहुत प्रकार के अधिकार प्रदत्त किये गये जिनमें बोलने का अधिकार, समता का अधिकार, वोट देने का अधिकार, व्यापार का अधिकार और न्याय पाने का अधिकार प्रमुख थे। ऐसे ही अधिकार रोमन लोगों को रोमन विधि के अन्तर्गत 'Jus Civile' (सिविल कानून) से मिले थे। इस प्रकार, मानवाधिकारों की अवधारणा ग्रेमो–रोमन काल के प्राकृतिक विधि सिद्धान्तों में पायी जा सकती हैं जिनके अनुसार एक सार्वभौवमिक शान्ति हो जो सभी प्रणियों मे व्याप्त है एवं मानव आचरण को प्रकृति के नियमों से आँकना चाहिए।

1.2.4 इस्लाम का उदयः

तत्कालीन अरब समाज की दशा बहुत विचित्र थी। लोग कबीलों में बँटे थे और इन कबीलों में अक्सर युद्ध होते रहते थे। सामाजिक सुरक्षा जैसी कोई बात नही थी। सबसे ज्यादा परेशानी स्त्रियों एवं बच्चों को उठानी पड़ती थी क्योंकि पारिवारिक ढाँचे का अभाव था। मुहम्मद साहब ने इन सभी सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। उन्होनें राजकीय विशेषाधिकारों का विरोध किया और योग्यता को बढ़ावा दिया। इस्लाम की समतावादी प्रकृति ने सभी को प्रभावित किया और गरीबों और दबे कुचले लोगों ने इसे अपना लिया। 622 ई0 में मुहम्मद साहब ने मदीना चार्टर तैयार किया। यह चार्टर मदीना के सभी प्रभावशाली कबीलो और मुहम्मद साहब के बीच एक औपचारिक करार के रूप में था जिसका उद्देश्य युद्धों को बन्द करना था और सभी पक्षों के अधिकार–कर्त्तव्यों को नियत करना था। इसके द्वारा सामुदायिक सुरक्षा, धार्मिक स्वतन्त्रता, स्त्रियों की सुरक्षा और झगड़े निपटाने के लिए न्यायिक प्रणाली आदि की व्यवस्था की गयी। युद्ध बंदियों के अधिकारों पर बल दिया गया। इस्लाम आने पर तत्कालीन दासों की दशा पर गहरा प्रभाव पड़ा। दासों को भी मानव की तरह देखा गया और उन्हें कुछ धार्मिक और सामाजिक अधिकार दिये गये।

महिलाओं के अधिकारों में सुधार होने के कारण उनके विवाह, तलाक एवं उत्तराधिकार संबंधी मामलें प्रभावित हुए। दूसरी संस्कृतियों यहाँ तक कि पश्चिमी देशों में स्त्रियों को इस प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। अब स्त्रियों की प्रास्थिति में वृद्धि या सुधार का स्पष्ट प्रमाण था कि महिला शिशु हत्या पर प्रतिबन्ध था और महिलाओं को पूर्ण व्यक्तित्व प्रदान किया गया। दहेज, जो पहले वधू की कीमत के रूप में पिता को देय होता था, पत्नी को विवाह भेंट के तौर मिलने लगा और पत्नी उसे अपनी सम्पत्ति के रूप में रख सकती थी। विवाह को स्त्री की प्रास्थिति न मानकर संविदा माना गया जिसमें उसकी सम्मति अनिवार्य थी। महिलाओं की सम्पत्ति में उत्तराधिकारी माना गया। पहले यह अधिकार केवल पुरूषों तक सीमित था। स्त्री द्वारा परिवार में लाये गये धन और उसके द्वारा अर्जित धन दोनों पर उसका एकाधिकार माना गया और उसका प्रबन्ध करने की उसको आजादी दी गयी। इस्लाम से पहले तो स्त्री को ही पुरूष की सम्पत्ति माना जाता था। पुरूष के मरने के उपरान्त सारी सम्पत्ति उसके बेटों को मिलती थी। इस प्रकार स्त्रियों को इस्लाम में काफी सुरक्षा मिली। हालाँकि इस बारे में भी कई मत है।

1.2.5 मध्ययुग कालीन इतिहासः पाश्चात्य जगत

लगभग समस्त पाश्चात्य देशों मे प्राचीन विधि संहिताओं मं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई ऐसा भी क्षेत्र नहीं था जहाँ राज्य का हस्तक्षेप न होता हो। बाद में यदि कुछ विधियाँ आयीं थीं जिनमें अधिकारों का उल्लेख था तो वे केवल सामंतो तक सीमित थीं और यह अधिकार वस्तुतः राजाओं और सामंती सभाओं के मध्य संविदाओं द्वारा उत्पन्न हुए। पहली बार 1188 में कोरटार, जो इबेरियन प्रायद्वीप पर लियोन राजा की सभा थी, को राजा अल्फोंसो IX के द्वारा अधिकारों का प्रमाणीकरण मिला और इन अधिकारों में अभियुक्तों के अधिकार तथा न्यायालय द्वारा नियमित परिक्षण (मुकदमा) चलाना, उनके जीवन का सम्मान, घर एवं संपत्ति को नुकसान न पहुँचाने का अधिकार आदि शामिल थे। राजा एंड्रयू II (हंगरी 1222) के गोल्डन बुल में राजा ने सामंतों के कुछ अधिकारों यथा क्रमबद्ध न्यायालय सम्मत प्रक्रिया का पालन करते हुए सजा होने तक उनको गिरफ्तार न करना या उनको बर्बाद

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

न करना आदि को मान्यता प्रदान की गयी। राजाओं द्वारा समय–समय पर व्यक्त की गयी मानवाधिकारों के प्रति सबसे अधिक प्रभावशाली प्रतिबद्धता इंग्लिश मैग्नाकार्टा में दिखाई देती है जिसे रूनीमीड में वर्ष 1215 में राजा जॉन द्वारा स्वीकार किया गया था। मैग्नाकार्टा का सामंतों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए ज्यादा प्रयोग किया। मैग्नाकार्टा का आशय सभी सामान्य जनों के अधिकारों और स्वतंत्रता को स्वीकार करना नहीं था। हालांकि इसके कुछ प्रावधानों विशेषकर खंड 39, जिसके अनुसार किसी स्वतंत्र व्यक्ति को विधिपूर्ण न्याय नियंत्रण और विधि सम्मत ढंग के सिवाय बंदी नहीं बनाया जायेगा या देश निकाला नहीं दिया जायेगा या उनको बर्बाद नहीं किया जाएगा, का निर्वचन भूतलक्षी किया गया।

मध्ययुग में अपने–अपने सांप्रदायिक सिद्धांतो के श्रेष्ठ सिद्ध करने के अनुक्रम में विभिन्न संप्रदायों को मानने वालों में बहुत से युद्ध किये और इस युग में मानवअधिकारों को सर्वाधिक धक्का पहुँचा। चर्च के आदेशों की अवहेलना करने पर भयानक दुष्परिणाम होते थे। मध्य युग में स्त्रियों की दशा बहुत सोचनीय थी। उनके कोई अधिकार नहीं थे। सामंतवाद के चलते सामान्य जनता के हितों को गहरा धक्का पहुँचा। उनसे अमानवीयता का व्यवहार किया जाने लगा। दासता और बंधुआ मजदूरी स्वीकार्य थी।

मानवाधिकारों के ऐसे ही उल्लंघनों के कारण मध्ययुग में फ्रांस एवं यूरोपीय देशों में बहुत सी क्रांतियाँ हुईं और इन्ही क्रांतियों के दौरान ही मानवाअधिकारों की संकल्पना का विकास हुआ। रूसो ने कहा है "कि मनुष्य जन्म से तो स्वतंत्र है, परन्तु हर जगह बेड़ियों में है"।

बोध प्रश्न

1. मानवाधिकारों के इतिहास को जानना क्यों आवश्यक है?

....

....

....

2. प्राचीन भारत में मानवाधिकारों की स्थिति की विवचेना कीजिए।

....

....

....

3. मेसोपोटामिया की सभ्यता के समय मानवाधिकारों की क्या स्थिति थी।

....

....

....

4. रोमन काल के प्रमुख घटनाक्रम को मानवाधिकारों से संबंधित हो की चर्चा कीजिए।

....

....

....

5. पश्चिमी जगत में मध्य युग काल में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

6. मैग्नाकार्टा से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1.3 आधुनिक युग में मानवाधिकार

वैसे तो मानवाधिकारों के बारे में ठोस शुरूआत तो द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात ही शुरू हो पायी लेकिन 15वीं एवं 16वीं शताब्दियों से ही इस क्रम की नींव पड़नी प्रारम्भ हो चुकी थी। 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ज्ञान–विज्ञान जगत में कई खोजें हुईं और पुरानी मान्यताओं एवं प्रथाओं को तीव्र आघात पहुँचे जिससे मानवाधिकारों की दिशा में मंथर गति से ही सही प्रगति हुई। सुविधा की दृष्टि से आप इसका अध्ययन निम्नलिखित पूर्वक करेंगे:

1.3.1 पूर्व आधुनिक काल:

15वीं एवं 16वीं शताब्दियों में अमेरिका (उत्तरी एवं दक्षिणी) पर स्पेन का कब्जा होना शुरू हुआ और इसी के साथ स्पेनिश अमेरिकी उपनिवेश में मानवाधिकारों के बारे में बहस होनी शुरू हुई। यह खोजों का युग था। क्रिश्चियन पादरियों द्वारा उपदेशों के माध्यम से मानवाधिकारों की वकालत की गई जिसके परिणाम स्वरूप स्पेन के राजा ने कुछ कानून बनाये जो बालश्रम, स्त्रियों के अधिकार, मजदूरी आदि के बारे में थे।

1.3.2 पुनर्जागरण काल:

17वीं एवं 18वीं शताब्दी में कई यूरोपियन चिंतकों जिनमें जॉन लॉक का महत्वपूर्ण स्थान है ने प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त का विकास किया जिसके अनुसार मनुष्य प्राकृतिक रूप से स्वतन्त्र एवं समान हैं।

1.3 आधुनिक युग में मानवाधिकार:

इंग्लैण्ड में 1688 ई0 में 'अधिकारों के लिए याचिका' और 1689 ई0 में 'बिल ऑफ राइट्स' द्वारा मानवाधिकारों का सफलतापूर्वक बचाव किया गया। यही दस्तावेज आगे चलकर उपनिवेशों में स्वतंत्रता आंदोलनों के आधार बने। 1776 ई0 में अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा, अधिकारों की वर्जीनिया घोषणा, 1791 ई0 में अमेरिकन बिल ऑफ राइट्स, 1789 ई0 को फ्रांस क्रांति एवं 1917 ई0 की रूसी क्रांति आदि घटनाक्रमों से मानव अधिकारों को प्राप्त करने की दिशा में अभूतपूर्व प्रगति हुई।

1917 के मैक्सिकन गणतन्त्र के संविधान, 1919 में जर्मनी के संविधान एवं 1931 के स्पेन गणतंत्र के संविधान में कम से कम सिविल अधिकारों का भले ही कागज पर उल्लेख तो हुआ।

18वीं शताब्दी के बिलकुल शुरू होने पर साहित्य जगत में उपन्यास विधा का प्रादुर्भाव हुआ जो मनोरंजन का प्रमुख साधन बन गया। इन उपन्यासों के माध्यम से भी मानवाधिकारों को स्वीकार्यता दिलाने की जमीन तैयार हो सकी।

1.3.3 उन्नीसवीं शताब्दी में हुए संघर्ष एवं मानवाधिकार :

उन्नीसवीं सदी में कई देशों ने मिलकर मानवता की रक्षा के युद्ध किये भले उसके पीछे कारण धर्म ही क्यों न रहा हो। उदाहरण के लिए 1827 ई0 में ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस एवं रूस ने तुर्की शासन के ग्रीक जनता पर अत्याचारों को रोकने के लिए ओटोमन साम्राज्य पर सैन्य कार्यवाही की। इसी कारण से 1830 ई0 में ग्रीस स्वतंत्र हुआ। 1860 में सीरिया में ईसाइयों के कत्लेआम को रोकने के लिए कई यूरोपीय देशों ने इसी प्रकार हस्तक्षेप किया, 1886 में क्रेटों को बचाने के लिए और उन्नीसवी सदी में ही तुर्की द्वारा ईसाइयों पर जुल्मों को रोकने के लिए (बाल्कन देशों में) हस्तक्षेप हुए।

1.3.4 उन्नीसवीं सदी, प्रथम विश्वयुद्ध एवं मानवाधिकार :

18वीं एवं 19वीं सदी के दौरान कुछ दार्शनिकों/चिंतकों जिनमें थॉमस पेन, जॉन स्टुअर्ट मिल एवं हीगल प्रमुख थे ने सार्वभौमिकता संबंधी आयामों को विस्तृत किया। लेकिन साथ ही साथ व्यापार में वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए यूरोपीय देशों में एशिया, अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका के अधिकांश भूभागों पर कब्जा कर लिया और वहाँ की जनता को अपना गुलाम बनाकर उनके हित में प्रयुक्त करने के उद्देश्य से उन पर भयानक अत्याचार किये जिनसे पूरी मानवता शर्मसार हो गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्ययुग में होने वाले अत्याचार उनके सामने बौने हो गये हों। परन्तु जैसा कि आप जानते हैं यह काल ज्ञान एवं खोजों का काल था उपनिवेशों की जनता ने भी आवाज उठाना आरम्भ कर दिया जिसके कारण अत्याचारों में और भी वृद्धि हुई। इसी दौरान 20वीं सदी के

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

प्रारम्भ से ही यूरोपियन शक्तियों में भी अधिक से अधिक उपनिवेश बनाने के लिए संघर्ष होने लगे जिन्होने शीर्घ ही विश्वयुद्ध का रूप ले लिया। यह प्रथम विश्वयुद्ध (28 जुलाई 1914 से 11 नवम्बर 1918 तक) जो यूरोप में आरम्भ हुआ में 7 करोड़ सैनिकों जिनमें 6 करोड़ यूरोपियन शामिल हुए थे। 90 लाख से अधिक सैनिक और लगभग 70 लाख नागरिक इस विश्वयुद्ध में मारे गये। वैज्ञानिक एवं तकनीकि विकास के चलते अत्याधुनिक हथियारों का प्रयोग किया गया। इस विश्वयुद्ध में भारी जन संहार हुए और युद्ध संबंधी अपराधों को कार्यरत किया गया। कुल मिलाकर मानवता की आत्मा का जितना हनन इस युद्ध में हो सकता था हुआ। इसकी पुनरावृत्ति न हो सके इसके लीग ऑफ नेशन्स का जन्म 10 जनवरी 1920 को एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में हुआ एक प्रकार से यह एक युद्ध संधि का परिणाम ही था। लीग ऑफ नेशन्स अभिसमय के दो रचयिता थे लार्ड रॉबर्ट सीसिल हर्स्ट एवं जेन स्मट्स। अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने अपना खुद का मसौदा तैयार किया जिसमें उन्होनें राज्य के अनैतिक आचरण को समाप्त करने पर विशेष बल दिया था। 1919 में पेरिस शान्ति सम्मेलन में विल्सन, सीसिल एवं स्मट्स ने अपने–अपने मसौदे प्रस्तुत किये एवं काफी विचार–विमर्श के पश्चात् सीसिल हर्स्ट–मिलर (डेविड हन्टर, मिलर) का मसौदा अन्तिम रूप से लीग ऑफ नेशन्स अभिसमय के आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया। लीग ऑफ का उदय विश्वयुद्ध पर केन्द्रित था अतः इसके केन्द्र बिन्दु में राज्यों का आचरण था ताकि राज्यों के गलत आचरण के कारण पुनः ऐसे ही युद्ध की पुनरावृत्ति न हो सके। लीग ऑफ नेशन्स के प्रमुख अंगो में सभा, परिसर एवं एक स्थायी सचिवालय थे। इसका मुख्यालय जेनेवा में बनाया गया। इसके दो अन्य आवश्यक अंग भी थे, अंतर्राष्ट्रीय न्याय का स्थायी न्यायालय एवं अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन।

1.3.5 द्वितीय विश्वयुद्ध एवं मानवाधिकार :–

जैसा कि आपने देखा कि प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना इसलिए हुई कि फिर से कोई ऐसा युद्ध न हो लेकिन यह आप जानते हैं कि युद्ध को रोकने के लिए की गई संधि (वार्साय की संधि) में अगले विश्वयुद्ध के बीज रोप दिये गये थे। जिसके परिणाम स्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध (1939 से 1945) हुआ और जनधन की ऐसी हानि हुई जिसने प्रथम विश्वयुद्ध को भी बहुत पीछे छोड़ दिया। यह इतिहास की सबसे बड़ी लड़ाई भी जिसमें 30 देशों के 10 करोड़ से ज्यादा सैनिक शामिल थे। इस युद्ध में किसी मान्यता को नहीं माना गया एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं आबादी वाले इलाकों पर भी बमबारी की गयी। इसी युद्ध में हिरोशिमा एवं नागासाकी पर परमाणु बम गिराये गये जिनका दंश जापानी लोग आज तक झेल रहे हैं। इस युद्ध में अनेकों युद्ध अपराध पारित किये गये जिनमें यहूदियों का जनसंहार प्रमुख है। युद्ध के पश्चात् युद्ध अपराधियों को सजा देने के लिए न्यूरेम्बर्ग विचारण प्रारम्भ किया गया।

1.3.6 संयुक्त राष्ट्र संघ एवं मानवाधिकारों के क्षेत्र में हुई प्रगतिः

आप जानते है कि लीग ऑफ नेशन्स युद्ध रोकने में सफल न हो सका। 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गयी। इसका उद्देश्य भी यही था कि आगे से मानवता को ऐसी विभीषिका न झेलनी पड़े। परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में, जैसा कि निरन्तर देखने में आ रहा है, ज्यादातर परमाणु शान्ति संपन्न राष्ट्र लगातार परमाणु बम प्रयोग करने की धमकी दे रहे हैं। जिससे तृतीय विश्वयुद्ध का खतरा बना हुआ है। जहाँ तक मानवाधिकार के हनन का प्रश्न है। क्रमवार हर एक युग के आते रहने के दौरान उत्तरोत्तर वृद्धि ही हुई है। तकनीकी विकास से मानवाधिकारों को शांति काल में तो लाभ हो सकता है परन्तु युद्ध काल में अपरिमित नुकसान उठाना पड़ता है।

1.3.7 जिनीवा अभिसमय एवं युद्ध के दौरान मानवाधिकारः

मानवीय कानूनों (युद्ध संबंधी नियमों) की उन्नीसवीं सदी की संकल्पना के आधार पर शत्रुओं के साथ आचरण एवं युद्ध प्रभावित लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए बहुस्तरीय संधियाँ की गई। स्विटजरलैण्ड के प्रयासों से रेडक्रॉस की अंतर्राष्ट्रीय समिति की स्थापना हुई और जिनीवा में 1864 में युद्ध में घायलों की दशा पर एक अभिसमय अपनाया गया। 1949 में द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामों को देखते हुए जिनीवा में युद्ध पीड़ितों के संरक्षण के लिए चार अभिसमय बनाये गये। लीग ऑफ नेशन्श की प्रसंविदा में तो औपचारिक रूप से मनुष्यों के मानवाधिकारों की बात नहीं की गयी थी लेकिन उसे मानवाधिकारों के कई रूपों में स्वीकार ही नहीं किया गया बल्कि इसे लागू करने का प्रयत्न भी किया गया।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1.3.8 संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन एवं उसके तत्वावधान में हुए प्रयासः

1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद मानवाधिकारों का संरक्षण इसके सबसे प्रमुख विषयों में से रहा है। सेन फ्रांसिस्को में 1945 में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के लिये बुलाये गये संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मेलन में क्यूबा, मैक्सिको एवं पनामा के प्रतिनिधियों ने प्रस्ताव रखा कि सम्मेलन में मानवों के आवश्यक अधिकारों के संबंध में एक उद्घोषणा अंगीकृत करनी चाहिए। समय न होने के कारण ऐसा न हो सका लेकिन 1946 में पनामा के प्रतिनिधियों ने मूलभूत मानवाधिकारों की उद्घोषणा का एक ड्राफ्ट (प्रारूप) प्रस्तुत किया ताकि उसे संयुक्त राष्ट्र सभा के प्रथम सत्र में रखा जा सके। हालाँकि कई प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को अंगीकृत किया गया। संयुक्त राष्ट्र सभा द्वारा इस घोषणा पत्र को अंगीकृत करते हुए यह उद्घोषणा की गयी कि यह मानवाधिकार सभी लोगों, सभी राष्ट्रों, प्रत्येक व्यक्ति एवं प्रत्येक सामाजिक समूह के लिए चरितार्थ किये जाएंगे।

1950 के पश्चात मानवाधिकारों के संबंध में कार्य करने वाली बहुत सी संस्थायें उभर कर सामने आयीं। मानवाधिकार आयोग एवं महिलाओं की प्रास्थिति पर आयोग, संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के आनुषंगिक निकाय के रूप में स्थापित हुए और दोनों में सरकारी प्रतिनिधि होते हैं।

9 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र सामान्य सभा ने प्रस्ताव पारित कर जन संहार के अपराध का निवारण एवं दंड अभिसमय अनुमोदित किया। जन संहार संबंधी अवधारणा का सीधा संबंध द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात न्यूरेम्बर्ग के अंतर्राष्ट्रीय सैन्य अधिकरण संस्था द्वारा लागू किये गये सिद्धांतों से था।

1966 में संयुक्त राष्ट्र सभा ने सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों और सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों संबंधी दो अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं को अपना लिया। 1980 का दशक रिफ्यूजी (शरणार्थी) संबंधी समस्याओं और उसके निदान पर केंद्रित रहा। शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र का उच्च आयोग सरकारों से शरणार्थियों के मानवाधिकारों के संरक्षण को कहता है।

1998 में 120 देशों ने अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय का रोम कानून अंगीकृत किया। यह संधि 2002 से प्रभाव में आयी। इसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य मानवाधिकारों संबंधी अपराधों, जनसंहार, युद्ध अपराध एवं मानवता के विरूद्ध अपराधों को रोकने के लिए किया गया। यह न्यायालय मूलतः न्यूरेम्बर्ग अधिकरण, पूर्व यूगोस्लाविया के लिए अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण एवं रवांडा के लिए अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक अधिकरण के माडल एवं अनुभव पर आधारित है।

बोध प्रश्नः

---

1. आधुनिक काल के प्रारम्भ में यूरोप और अमेरिका में क्या–क्या परिवर्तन हुए ?

....

....

....

2. 19वीं सदी में मानवाधिकारों को लेकर हुए कुछ प्रमुख संघर्षों को लिखिए ।

....

....

....

3. प्रथम विश्वयुद्ध का मानवाधिकारों के हनन से संबन्ध किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है ?

....

....

....

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

4. संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन के पश्चात् मानवाधिकारों के संस्था के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रयासों के बारे में लिखिए।

....

....

....

5. लीग ऑफ नेशन्स का मानवाधिकारों का संरक्षण में क्या योगदान रहा ?

....

....

....

6. संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अंगीकृत किसी एक मानवाधिकार संबंधी घोषणा एवं किन्ही दो प्रसंविदाओं का नाम लिखिए।

....

....

....

1.4 सारांश:

मानवाधिकार मानव को मिले (प्रकृति प्रदत्त) अधिकार हो जिनका संरक्षण अति आवश्यक है। यह संरक्षण राज्य ही कर सकता है क्योंकि राज्य सर्व शक्तिशाली है। सत्ता संघर्ष होने की संभावनाओं के रहते हुए आदर्श स्थिति है कि जो इस संघर्ष में लिप्त नहीं हैं उनको या उनके अधिकारों को प्रभावित नहीं किया जाना चाहिए, परन्तु इतिहास साक्षी है कि संघर्षों का सबसे ज्यादा शिकार आम मानव ही होता है। इस इकाई में आपने देखा कि प्राचीन विश्व से लेकर आधुनिक काल तक मानवता की रक्षा के लिए प्रयास भी किये गये लेकिन साथ ही साथ उनका हनन भी चरम सीमा तक हुआ। ऐसा प्रतीत होता है, मानवाधिकार संबंधी नियम–कानून, मानवाधिकारों के हनन के सापेक्ष कमजोर हैं। या दूसरी प्रकार से इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि कानून यदि हैं भी तो उनका अनुपालन सुनिश्चित करवा पाना एक बड़ी चुनौती है।

युद्ध होने की स्थिति में तो यह और भी बड़ी चुनौती होती है जैसा कि आपने देखा कि प्राचीन भारत में मानवाधिकार संबंधी नियम युद्ध के अवसरों पर ही अधिक प्रयोग में लाये जाते थे और जिनका वर्तमान स्वरूप हम जिनीवा की संधि में पाते हैं। इतिहास जानना बहुत आवश्यक है ताकि हम इतिहास से सबक लेते हुए एक बेहतर भविष्य की रचना कर सकें। संयुक्त राष्ट्र संघ, जो एक कमजोर संगठन है, के तत्वावधान में मानवअधिकारों के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है परन्तु यह प्रगति मानवाधिकारों के हनन के वर्तमान परिदृश्य के मुकाबले कमतर प्रतीत होती है। आज भी ताकतवर का बोलबाला है।

महत्वपूर्ण शब्द:

- अभिसमय, प्रोटोकॉल एवं प्रसंविदा– संधि के लिए प्रयोग किये जाने वाले विशेष शब्द।
- मसौदा (ड्राफ्ट)– किसी दस्तावेज की रूपरेखा।
- विचारण (ट्रायल)– किसी मुकदमे की सुनवाई।
- चार्टर– एक प्रकार की राजाज्ञा।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

- **साइरस सिलिंडर– मानवाधिकारों पर साइरस महान द्वारा कुछ कानून पके हुए मिट्टी के बेलन पर खुदवाये गये थे।**

कुछ उपयोगी पुस्तकें:

- ***Human Rights and Inhuman Wrongs-Justice V.R. Krishna Iyer.***
- ***Human Rights in India (Historical, Social and Political perspectives) by Chiranjivi J. Nirmal.***
- ***Human Rights in Constitutional Law by Durga Das Basu.***
- ***Constitution of India by V.N. Shukla.***

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई– 2 मानवाधिकार आंदोलन

2.0 उद्‌देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मानवाधिकार की परिभाषा

2.3 मानवाधिकार का विकास एवं आंदोलन

- **2.3.1** इंग्लैण्ड में मानवाधिकारों का विकास एवं आंदोलन
- **2.3.2** संयुक्त राज्य अमेरिका में मानवाधिकारों का विकास एवं आंदोलन
- **2.3.2** फ्रांस में मानवाधिकारों का विकास एवं आंदोलन
- **2.3.4** सोवियत संघ में मानवाधिकारों का विकास एवं आंदोलन
- **2.3.5** कनाडा में मानवाधिकारों का विकास एवं आंदोलन
- **2.3.6** विश्व के अन्य देशों में मानवाधिकारों की स्थिति

2.4 मानवाधिकार आंदोलन अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य

- **2.4.1** मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा
- **2.4.2** मानवाधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाएं
- **2.4.2.1** नागरिक व राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा,1966
- **2.4.2.2** आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966
- **2.4.3** अन्य महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संधिया एवं मानवाधिकार

2.5 मानवाधिकारों की क्षेत्रीय संरक्षण व्यवस्था

- **2.5.1** मानवाधिकारों पर यूरोप अभिसमय, 1950
- **2.5.2** मानवाधिकारों का अमेरिकी अभिसमय, 1969
- **2.5.3** मानव एवं लोगों के अधिकारों का अफ्रीकी चार्टट, 1981
- **2.5.4** मानवधिकारों का अरब आयोग

2.6 वर्तमान समय में विभिन्न देशों में मानवाधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध आंदोलन

- **2.6.1** लीबिया
- **2.6.2** तिब्बत
- **2.6.3** ट्यूनीशिया
- **2.6.4** भारत
- **2.6.5** मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993
- **2.6.6** पाकिस्तान अधिकृत जम्मू एवं कश्मीर में मानवाधिकारों की समस्या

2.7 सारांश

2.0 उद्देश्य

मानव सभी प्राणियों से बुद्धि एवं विवेक में श्रेष्ठ है। विवेक ही वह तत्व है जो मानव को शेष प्राणियों से

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

अलग एवं श्रेष्ठ स्थिति प्रदान करता है। यह विवेक उसे एवं असत्य की पहचान कर सर्वोत्तम जीवन जीने हेतु सक्षम बनाता है, जिसके कारण मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में विविध व्यवस्थाओं व रीतियों का संचयन करता है एवं अपनी अन्तर्निहित क्षमताओं का सम्पूर्ण विकास कर स्वयं एवं समाज के लिए सर्वोत्तम जीवन स्तर व जीवन मानदण्डों की स्थापना करता है। समाज, राज्य व इसी प्रकार की अन्य व्यवस्थायें मानव की इसी मूलभूत प्रवृति के परिणाम है। इसी श्रृंखला की एक कड़ी अधिकार एवं दूसरी कड़ी मानवाधिकार हैं। मानवाधिकार का निहितार्थ स्पष्ट करने से पूर्व अधिकार का विवेचन अनिवार्य हो जाता है। वस्तुतः मनुष्य एक समाजिक प्राणी है। वह समाज में जन्म लेता है, जीवित रहता है एवं विभिन्न कार्य निष्पादित करता है। समाज में उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति, उसके व्यक्तित्व का विकास और वह अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है, किन्तु यदि समाज के द्वारा उसे जीवन की सुविधाओं और विकास के अवसर न मिले तो उसका व्यक्तित्व अपूर्ण और अविकसित रह जाता है। इन अवसरों और सुविधाओं के अतिरिक्त उसे स्वतंत्रता की भी आवश्यकता होती है जिससे वह अपनी इच्छानुसार मार्ग का अनुसरण करके अपने विकास के साधन खोज सकें। वे सुविधायें एवं परिस्थितियाँ जो व्यक्ति के विकास के लिए अपरिहार्य हैं वही अधिकारों के रूप में परिभाषित की जाती हैं। अर्थात अधिकार ऐसी अनिवार्य परिस्थितियाँ हैं जो मनुष्य के विकास के लिए आवश्यक हैं। इस सम्बन्ध में लास्की ने स्पष्ट संकेत किया है कि अधिकार जीवन की वे परिस्थितियाँ होती हैं जिनके बिना साधारणतया कोई व्यक्ति अपने उच्चतम स्वरूप की प्राप्ति नहीं कर सकता है। इस इकाई का अध्ययन करके आप यह समझने में सक्षम होंगे कि मानवाधिकारों का वर्तमान स्वरूप अपने आप नहीं हो गया है। इसके पीछे आंदोलनों का लम्बा इतिहास है। परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या आंदोलनों का सिलसिला समाप्त हो गया है? एवं मानवाधिकारों को पूर्णतया मिल गयी है? सभी मानव अब सुखी हैं?

2.1 प्रस्तावना

अधिकार की संकल्पना बहुत व्यापक है इसमें कई प्रकार और स्वरूप के अधिकारों की गणना की जाती है उसी में से ही एक मानवाधिकार है मनुष्य के लिए जिस प्रकार रोटी, कपड़ा एवं मकान आवश्यक है, उसी प्रकार उसके साथ कतिपय ऐसी अन्य चीजें हैं जो आधुनिक मानव समाज के लिए अत्यन्त अवश्यक है और इसमें मानवाधिकार भी शामिल हैं।

मानवाधिकार मनुष्य को जन्म से प्राप्त होता है। ये वे अधिकार हैं जो प्रत्येक मानव को मानव होने के नाते बिना किसी भेदभाव के प्राप्त होते हैं। अतः ये अधिकार जो मानव को भय और भूख से मुक्ति दिलाने के लिए आवश्यक हैं, को मानवाधिकार कहा जा सकता है।

मानवाधिकार के सम्बर्धन और संरक्षण का जो आन्दोलन आज विश्वस्तर पर चल रहा है उससे ऐसा लगता है कि मानवाधिकारों का विकास वर्तमान में हुआ है। परन्तु ऐसा नहीं है। इसकी जड़ें प्राचीन हैं। प्राचीन काल से ही राजाओं, सामन्तों और शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा मनुष्य जाति का शोषण किया जाता रहा है। वे मानवों को विभिन्न प्रकार की यातनाएँ देते थे जैसे चोरी के अपराध के लिए हाथ काट देने से लेकर राजद्रोह के लिए मृत्युदण्ड की सजा। और मृत्युदण्ड भी ऐसा कि मनुष्य को आरे से दो भाग में काट देता या उबलते तेल या पानी में उसे डाल देना। ऐसे दण्डों और उत्पीड़नों के विरूद्ध मानव हमेशा से संघर्ष करता रहा है और जब–जब उसे अवसर मिला उसने राजाओं और शासकों के अधिकारों को कम कराया।

2.2 मानवाधिकार का परिभाषा

मानवाधिकार का अर्थ मानव का चहुमुखी विकास है। इस विकास के लिए उसे प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता की रक्षा चाहिए। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बिना मनुष्य जड़ से ज्यादा कुछ नहीं है। आस्था उसकी अन्तचेतना का संबल है। भय या त्रास मनुष्य को कुंठित करता है। इसलिए समुचित विकास के लिए मानव को प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता, अभिवाक् की स्वतंत्रता, अंतःकरण की स्वतंत्रता और भय से मुक्ति मिलना आवश्यक है।

हैराल्ड जे0 लास्की के अनुसार अधिकार मानव के समाजिक जीवन की ऐसी शर्तें हैं, जिसके बिना कोई व्यक्ति अथवा मानव सामान्यतः अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता है।

प्रो0 होब हाउस के अनुसार मानवाधिकार वह है जिसमें हम दूसरों से कुछ आशाएँ करते हैं तथा दूसरे

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

भी हमसे कुछ आशाएँ करते हैं। इस आशा के वातावरण में सभी सार्थक अधिकार एक प्रकार से समाज कल्याण की शर्तें होती हैं। इस प्रकार मानवाधिकार वह है जिसका दावा प्रत्येक व्यक्ति आवश्यक कार्यों की पूर्ति के लिए करता है, ऐसे दावों की समाज आशा करता है। ये दावे दूसरे के समाजिक दायित्व के सहवर्ती हैं। इस प्रकार मानवाधिकार सामाजिक शर्तें हैं।

प्रो0हार्ट के अनुसार यदि मानव प्राणी दूसरों के साथ रहना चाहता है तो उसके द्वारा कुछ मूल नियमों का अनुपालन करना नितांत आवश्यक है। इस प्रकार के अनुपालन को मानव के अधिकार के नाम से संबोधित किया जा सकता है।

न्यायमूर्ति होम्स ने प्राकृतिक विधि का उल्लेख करते हुए कहा है कि अधिकार विशुद्ध रूप से आगमनात्मक कथन की न्यूनतम निश्चित शर्तें हैं, जिनके बिना हम जीवन को उत्तम नहीं बना सकते हैं।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 2(ख) के अनुसार मानवाधिकार ऐसे सांविधानिक प्रत्याभूत हैं जो जीवन से संबधित स्वतंत्रता और व्यक्ति की गरिमा को समाहित करते हैं तथा इनको अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में स्थान प्राप्त है।

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को एक व्यक्ति होने के नाते प्राप्त हैं तथा जो सभ्य समाज में मान्यता प्राप्त होने के साथ ही न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय हैं। ये अधिकार सार्वभौमिक हैं और इनमें स्वाधीनता, समानता और स्वातंत्र्य शामिल हैं। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय विधि में मानवाधिकारों का सार संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में निहित है। इसमें संयुक्त राष्ट्र के लोगों ने "मूल मानवाधिकारों के प्रति मानव की गरिमा और महत्व के प्रति, पुरूषों, स्त्रियों तथा बड़े और छोटे राज्यों के समान अधिकारों के प्रति निष्ठा" की अभिपुष्टि की है। लोकतंत्र मानवाधिकारों के प्रश्रय का आधार है। आज का विश्व बहु निगमी व्यवस्था पर भी निर्भर करता है। जिसके कारण आर्थिक अधिकारों को भी मानवाधिकारों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसलिए इसमें सम्पूर्ण सिविल सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक प्रक्रिया आती है।

2.3 मानवाधिकार का विकास एवं आन्दोलन

मानवाधिकारों की अवधारणा का विकास एवं आन्दोलन निरंकुश शासकों व नागरिकों या प्रजाजनों के बीच सम्बन्धों में अवरोध अथवा संघर्ष का परिणाम है। मानवाधिकारों की उत्पत्ति और विकास दो स्तरों पर प्राप्त हुई है। प्रथम–राष्ट्रीय स्तर पर एवं द्वितीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर। परन्तु गैर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ सीमा तक मानवाधिकार के संरक्षण की जड़ें, बेबीलोनियन विधियों, जो लैगास के यूरुकगीना (3260 ई0पू0) अक्कड़ के सारगोन (2300 ई0पू0) और बेबीलोन के हम्मूराबी (1792–1750 ई0पू0) के शासन काल, में मिलती हैं। इसी प्रकार मानवाधिकार के संरक्षण की जड़ें भारत में भी वेद काल के धर्म (1500–500 ई0पू0) में प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार चीन के लाओजे और कन्फ्यूसियस के विधिशास्त्र में भी इसे पाया जा सकता है।

मानवाधिकारों के आतंरिक उल्लंघन का इतिहास बहुत दिनों से चला आया है क्योंकि इसका संबंध राष्ट्र विशेष की सत्ताओं के साथ रहा है, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों का विकास 20वीं शताब्दी के मध्य का है।

2.3.1 इंगलैण्ड में मानवाधिकारों का विकास एवं आन्दोलन

12वीं शताब्दी में इंगलैण्ड में जनता, सामंतों, शासक तथा पादरियों के मध्य संघर्ष चल रहा था। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। राजा की आज्ञा ही सर्वोपरि थी। नागरिक स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं था। दूसरी ओर पादरी धर्म की आड़ में सत्ता की मांग कर रहे थे। शासक–पादरियों के मध्य संघर्ष में प्रजा के अधिकारों का हनन हो रहा था। परिणाम स्वरूप 1215 में सामंतों, पादरियों तथा शासक के बीच एक समझौता हुआ, जिसे मैग्नाकार्टा के नाम से जाना जाता है। इसके द्वारा पादरियों का अधिकार क्षेत्र चर्च तक सीमित कर दिया गया और नागरिकों के मूलभूत प्राकृतिक अधिकारों जैसे विचार– अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, आवागमन एवं निवास की स्वतंत्रता, मनमाने करों पर रोक, सत्ता में भागीदारी की स्वतंत्रता, निरंकुश गिरफ्तारी से स्वतंत्रता इत्यादि को मान्यता प्रदान की गयी।

इंगलैण्ड में यह उक्ति प्रभावी थी कि राजा कोई गलती नहीं करता है। राजा के रूप में इंगलैण्ड के सम्प्रभु

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

का समादेश सर्वोच्च था। सम्प्रभु रूपी सत्ता की शक्ति को प्राप्त करने के लिए ब्रिटेन की संसद तथा क्राउन के मध्य संघर्ष हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप क्राउन की शक्तियों पर अंकुश लगाने के लिए सन् 1628 में "अधिकार याचना पत्र (पिटीशन ऑफ राइट्स)" घोषित किया गया और अंततः 1688 में संसद को सर्वोच्चता प्राप्त हुई। 1679 में चार्ल्स द्वितीय द्वारा हैबियस कार्पस अधिनियम पारित किया गया जिसका उद्देश्य बंदी व्यक्ति के कारावास की वैधता पर शीघ्र विचार करना था। इसके बाद 1689 में संसद द्वारा 'बिल ऑफ राइट्स' पारित किया गया जो वास्तव में हैबियस कॉर्पस का विस्तार था। 'बिल ऑफ राइट्स' मानवाधिकारों की संरक्षा के उद्देश्य से महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके द्वारा संसद को अधिकार दिए गए और संसद के हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा कराए जाने का उपबन्ध किया गया। निर्वाचन के उपरान्त निश्चित अवधि के पश्चात् पुनः निर्वाचन कराए जाने की व्यवस्था की गयी। इसीलिए निर्वाचन की पद्धति के आधार पर संसद आज भी जनता के प्रति उत्तरदायी है। साथ ही बिल और राइट्स का मुख्य उद्देश्य उन लोगों को लाभ पहुँचाना था जो आपराधिक आरोपों से अलग आक्षेपों में बन्दी बनाये गये थे।

2.3.2 संयुक्त राज्य अमेरिका में मानवाधिकारों का विकास एवं आन्दोलन

संयुक्त राज्य अमेरिका में स्वतंत्रता का संघर्ष 1763 ई0 में शुरू हुआ। यह संघर्ष उपनिवेशवाद के विरोध में हुआ था। इसने क्रान्ति का स्वरूप धारण कर लिया था, परिणाम स्वरूप 4 जुलाई 1776 को संयुक्त राज्य अमेरिका स्वतंत्र हुआ। 1776 ई0 में 'वर्जीनिया बिल ऑफ राइट्स' स्वीकार किया गया जिसमें घोषणा की गयी कि प्राकृतिक रूप से सभी मुक्त एवं स्वंत्रत हैं। वे निम्नलिखित अधिकार रखते हैं–जीवन व स्वंत्रता के उपयोग का अधिकार, सम्पत्ति अर्जित करने, धारण करने तथा सुख प्राप्त करने का अधिकार।

अमेरिकी संविधान के मूल दस्तावेज में मानवाधिकारों का उल्लेख नहीं था। 15 दिसम्बर 1791 को अमेरिकी संविधान में किये गये प्रथम दस संशोधनों द्वारा मानवाधिकारों को संविधान का एक भाग बना दिया गया। इन संशोधनों का अमेरिका के मानवाधिकारों के रूप में अधिकार पत्र (बिल ऑफ राइट्स) नाम से संबोधित किया जाता है।

2.3.3 फ्रांस में मानवाधिकारों का विकास एवं आन्दोलन

फ्रांस में निरंकुश तंत्र के विरोध में लगातार जनता के संघर्ष के परिणाम स्वरूप फ्रांस की क्रांति का उदय हुआ। फ्रांस की क्रान्ति के परिणाम स्वरूप निरंकुश राजतंत्र का 1789 में अंत हुआ। 1789 में फ्रांसीसी राज्य क्रांति के बाद गठित असेम्बली द्वारा मानव तथा नागरिकों का फ्रांसीसी घोषणा पत्र जारी किया गया। जिसके परिणाम स्वरूप फ्रांस की जनता को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त हुए। इसके अलावा इसके अंतर्गत महिला और पुरूष को समान अधिकार, विभेद का अंत, संगठन बनाने का अधिकार, काम और नियोजन का अधिकार, प्रबन्धन में भागीदारी का अधिकार, राष्ट्रीय सम्पत्ति का सामुहिक अधिकार, व्यक्तिगत और पारिवारिक विकास का अधिकार, माताओं, बच्चों और वृद्धजनों के कल्याण तथा आर्थिक अधिकार, शिक्षा का अधिकार, राष्ट्रीय आपदा के समय समता का अधिकार शांति और रक्षा का अधिकार तथा उपनिवेशवाद के अंत का अधिकार आदि की घोषणा की गयी। उपरोक्त अधिकारों को फ्रान्स के गणतांत्रिक संविधान ने 24 सितम्बर 1946 को उपयुक्त स्थान दिया।

2.3.4 सोवियत संघ में मानवाधिकारों का विकास एंव आन्दोलन

सोवियत संघ में 1917 ई0 में क्रान्ति हुई थी। इसके परिणाम स्वरूप ही मानवाधिकार विकास का क्रम निरंतर संविधान के सृजन पर प्रतिबिम्बित होता रहा है। यह क्रम 1918, 1924, 1936 और 1977 तक चलता रहा। सोवियत संघ की अर्थ व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति के कारण नवीन संविधान का सृजन हुआ। इस संविधान के भाग 9 में व्यक्ति की संविधानिक स्थिति का उपबन्ध किया गया है। इस संविधान द्वारा नागरिकों को निम्न अधिकार प्रदान किये गये हैं जैसे–समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, उत्पादन के साधनों तथा सार्वजनिक सम्पत्ति के उपयोग का अधिकार, भौतिक तथा सांस्कृतिक संपदा का उपयोग करने का अधिकार, अपना शिक्षा स्तर ऊँचा उठाने तथा सार्वजनिक, राजनैतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार। संविधान में कहा गया है, कि सोवियत नागरिकों के अधिकार, आर्थिक, राजनैतिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में समान हैं। सोवियत संघ में समता का अधिकार के अन्तर्गत महिलाओं और पुरूषों के समान शिक्षा और

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

व्यवसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी है।

2.3.5 कनाडा में मानवाधिकारों का विकास एवं आन्दोलन

19वीं शताब्दी में कनाडा की प्रशासन व्यवस्था को संचालित करने के लिए एक अधिनियम पारित किया गया था। जिसका नाम ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट, 1867 था। परन्तु इस अधिनियम में कनाडा के लोगों के लिए मानवाधिकार से संबंधित कोई उपबन्ध नहीं किया गया था। परन्तु व्यक्ति की स्वतंत्रता के उपबन्धों को ब्रिटेन में विधि के समान्य सिद्धान्तों के माध्यम से ग्रहण किया गया था। अधिनियम का उद्देश्य विधायी कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाना था परन्तु यदि विधायिका व्यक्ति की स्वंत्रता को सीमित करने वाली कोई विधि बनाती थी तो विधायिका को रोकने के लिए इसमे कोई उपबन्ध नहीं किया गया था। यह व्यवस्था द्वितीय विश्वयुद्ध तक रही।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के निवासियों को व्यक्ति की स्वतंत्रता पर विचार करने के लिए विवश किया। इससे कनाडा भी अछूता नहीं रहा। मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 का प्रभाव कनाडा पर भी पड़ा। जिसके कारण कनाडा ने 1960 में 'कनेडियन बिल ऑफ राइट्स' पारित किया इस 'बिल ऑफ राइट्स' में व्यक्तियों के लिए निम्न अधिकार प्रदान किये गये हैं जैसे–विधि के समक्ष समता, धर्म, अभिव्यक्ति, संगम, संगठन और प्रेस की स्वतंत्रता का अधिकार परन्तु कनेडियन 'बिल ऑफ राइट्स' से व्यक्तियों की सिविल स्वतंत्रताओं का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पाया, क्योंकि यह स्वतंत्र उपनिवेश की साधारण विधि थी।

इसके बाद जब अंतराष्ट्रीय स्तर पर सिविल और राजनैतिक अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 पारित हुआ तब कनाडा ने इसे 1977 ई0 में स्वीकार किया। जिसके परिणाम स्वरूप कनाडा ने 1977 ई0 में 'कनेडियन ह्यूमन राइट्स' अधिनियम पारित किया। परन्तु यह अधिनियम भी मानवाधिकारों को संरक्षित करने के लिए उपयुक्त साबित नहीं हुआ। इसके बाद 1982 में कनाडा अधिनियम, 1982 पारित किया। यह कनाडा का संविधानिक अधिनियम है। इसके प्रथम भाग में कनेडियन चार्टर ऑफ राइट्स एंड फ्रीडम का उपबन्ध किया गया है।

2.3.6 विश्व के अन्य देशों में मानवाधिकारों की स्थिति

वर्तमान समय में विश्व के सभी लोकतंत्रात्मक देशों के संविधानों में मानवाधिकारों का उपबन्ध किया गया है। चीन के गणतंत्रात्मक संविधान के अध्याय 3 में नागरिकों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का उपबन्ध किया गया है। साथ ही साथ वहाँ के नागरिकों को संविधान के द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार भी प्राप्त हैं। इसी प्रकार लोकतंत्रात्मक गणराज्य जर्मनी के संविधान में भी लोगों की स्वतंत्रता तथा अधिकारों का उपबन्ध किया गया है।

2.4 मानवाधिकार आंदोलनः अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य

आइये अब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पत्ति के पश्चात् उसके तत्वावधान में हुए प्रयासों पर एक दृष्टि डाल लें।

2.4.1 मानवाधिकारों का सार्वभौम घोषणा के रूप में विकास

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के मानव अधिकारों से संबंधित प्रावधानों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने मानवीय अधिकारों के एक अन्तर्राष्ट्रीय बिल को तैयार करने का निर्णय लिया। इसके बाद आर्थिक और सामाजिक परिषद् (चार्टर के अनुच्छेद 68 के अन्तर्गत) के तत्वावधान में 1946 ई0 में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार आयोग का गठन किया। इस आयोग का प्रथम कार्य मानवाधिकार विधेयक को तैयार कराना था। यह कार्य आयोग को तीन चरणों में पूर्ण करना था। प्रथम चरण–मानवाधिकार को परिभाषित करना, द्वितीय चरण–परिभाषित मानवाधिकारों के बारे में राज्यों को बाध्य करने वाली प्रसंविदाओं को तैयार करना, एवं तृतीय चरण–मानवाधिकारों को लागू करने के उपायों का एक प्रारूप तैयार करना। इसके बाद मानवाधिकार आयोग ने अपना प्रथम अधिवेशन 1947 में किया। परिणाम स्वरूप 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने प्रस्ताव के द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को अंगीकार कर लिया।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में प्रस्तावना सहित कुल 30 अनुच्छेद हैं। जिसमें सिविल, राजनैतिक,

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों का उपबंध किया गया है। प्रस्तावना में मानव अधिकारों, मानव व्यक्ति की गरिमा एवं मूल्य तथा पुरूष एवं महिलाओं के समान अधिकारों में आस्था प्रकट की गयी है।

इसके 30 अनुच्छेदों में उल्लिखित कुछ मानवाधिकार निम्नलिखित हैं:–

1. सभी मानव जन्म से स्वतंत्र हैं और अधिकार और मर्यादा में समान हैं। उनमें विवेक और बुद्धि है अतएव उन्हें एक दूसरे के साथ भ्रातृत्व भाव युक्त व्यवहार रखना चाहिए।
2. प्रत्येक व्यक्ति, जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य मत, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल, सम्पति, जन्म या प्रास्थिति के भेदभाव के बिना, इस घोषणा में वर्णित सभी अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का अधिकारी है।
3. व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता तथा सुरक्षा का अधिकार।
4. दासता एवं दास व्यापार की निषिद्धि।
5. किसी व्यक्ति को क्रूर अथवा अमानुषिक दण्ड नहीं दिया जायेगा और न उसके साथ अपमान जनक बर्ताव किया जाएगा।

इसके अलावा विधि के समक्ष समता, मनमानी गिरफ्तारी, निरोध या देश निष्कासन की निषिद्धि, राज्य की सीमाओं के भीतर आवागमन एवं निवास का अधिकार, राष्ट्रीयता का अधिकार, सम्पति पर स्वामित्व का अधिकार, विचार, विवेक एवं धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार, शिक्षा का अधिकार आदि दिया गया है।

3.4.2 मानवाधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाएं

मानवाधिकारों के मानकों के विशदीकरण में मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा एक प्रारम्भिक कदम था। इस घोषणा में प्रतिपादित सिद्धांतों तथा नागरिक, राजनीतिक अधिकार व आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों के परस्पर विरोधी सामाजिक दर्शनों के मध्य लम्बे विचार विमर्श के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने अपने 21वें अधिवेशन में 16 दिसम्बर 1966 को सर्वसम्मति से मानवाधिकार संबंधी दो प्रसंविदाओं को अंगीकार किया।

1. नागरिक व राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966
2. आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966।

2.4.2.1 नागरिक व राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा, 1966

इसमें प्रस्तावना के अतिरिक्त कुल 53 अनुच्छेद हैं, जो 6 भागों में विभाजित हैं। प्रथम तीन भागों में व्यक्तियों के विभिन्न अधिकारों और स्वतंत्रताओं को उपबंधित किया गया है। प्रसंविदा के शेष तीन भागों में उपवर्णित अधिकारों के प्रभावी क्रियान्वयन की प्रक्रिया दी गयी है। इस प्रसंविदा में मानवों के निम्नलिखित मानवाधिकार दिये गये हैं। जैसे–जीवन का अधिकार, अमानवीय व्यवहार से मुक्ति, दासता, गुलामी व बलात् श्रम से मुक्ति, स्वतंत्रता व सुरक्षा का अधिकार, बन्दी के साथ मानवतापूर्ण व्यवहार का अधिकार, आवागमन तथा निवास चुनने की स्वतंत्रता का अधिकार, ऋजु विचारण का अधिकार, विचार, अंतः करण एवं धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, शांतिपूर्ण सभा करने का अधिकार, विवाह करने तथा परिवार बनाने का अधिकार आदि।

2.4.2.2. आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966

इस प्रसंविदा में प्रस्तावना के अतिरिक्त कुल 31 अनुच्छेद हैं जो 5 भागों में विभक्त हैं। इस प्रसंविदा में भी मानवाधिकारों तथा उसके प्रवर्तन के उपाय दिये गए हैं। इस प्रसंविदा के अंतर्गत दिये गए कुछ महत्वपूर्ण मानवाधिकार निम्नवत हैं। जैसे–स्वतंत्रता से चुना कार्य करने का अधिकार, कार्य के न्यायसंगत तथा अनुकूल स्थितियों का अधिकार, श्रम संघ बनाने का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, परिवार, मातृत्व, बच्चों एवं

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

युवा व्यक्तियों के संरक्षण एवं सहायता सम्बंधी अधिकार, विवाह में स्वतंत्र सम्मति का अधिकार, पर्याप्त खाद्यान्न, कपड़ा, निवास, जीवन स्तर का अधिकार तथा भूख से मुक्ति, स्वास्थ्य का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, विज्ञान तथा संस्कृति से संबंधित अधिकार इत्यादि।

2.4.3 अन्य महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संधियाँ एवं मानवाधिकार

मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा तथा प्रसंविदा के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ अथवा इसके विशिष्ट अभिकरणों ने समय–समय पर अनेक ऐसे अभिसमय स्वीकार किये हैं, जो मानवाधिकार के संरक्षण एवं सम्वर्धन के उद्देश्य से प्रेरित हैं। इनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं:–

1. नर संहार अभिसमय, 1949।
2. सभी रूपों में जाति विभेद के समापन संबंधी अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय, 1965।
3. युद्ध के समय नागरिक व्यक्तियों के संरक्षण से संबंधित जिनीवा अभिसमय, 1949।
4. व्यक्तियों के अवैध व्यापार, वैश्यावृत्ति एवं शोषण के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय, 1949।
5. दासता, दास व्यापार तथा दासता के समान संस्थाओं एवं अभ्यास समाप्त करने पर पूरक अभिसमय, 1956।
6. महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों से संबंधित अभिसमय, 1952।
7. विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता से संबंधित अभिसमय, 1952।
8. विवाह की सम्मति, विवाह की न्यूनतम आयु तथा विवाह के पंजीकरण संबंधी अभिसमय 1962।
9. जातीय भेदभाव के अपराध के दमन तथा उसे दण्डित करने पर अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय, 1973।
10. यंत्रणामय, क्रूर, अमानवीय या अपमान जनक व्यवहार या दण्ड के विरूद्ध अभिसमय 1984।
11. खेलों में जातीय भेदभाव के विरूद्ध अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय, 1985।
12. महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभावों की समाप्ति पर अभिसमय, 1979।
13. बच्चों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र अभिसमय 1959।
14. सभी प्रवासी कामगारों व उनके परिवारों के अधिकारों के संरक्षण संबंधी अधिसमय 1990।
15. अयोग्यता वाले व्यक्तियों के अधिकारों पर अधिसमय, 2006।

2.5 मानवाधिकारों की क्षेत्रीय संरक्षण व्यवस्था

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में संदर्भित मानव अधिकारों को मूर्त रूप देने के लिए महासभा ने सार्वभौमिक घोषणा तथा इसकी दो प्रसंविदाओं को अंगीकार किया। इसे अधिक स्पष्ट और सारवान बनाने के लिए विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य किया गया।

जैसे मानव अधिकारों पर यूरोप का अभिसमय, 1950, यूरोप का सामाजिक चार्टर, 1961, मानवाधिकारों का अमेरिकी अभिसमय, 1969, मानव एवं लोगों के अधिकारों का अफ्रीकी चार्टर, 1981 इत्यादि। 1968 में मानवाधिकारों का अरब आयोग भी स्थापित किया गया।

2.5.1 मानवाधिकारों पर यूरोप अभिसमय, 1950

इस अभिसमय में सिविल और राजनैतिक अधिकारों का उपबंध किया गया है। इसमें कुल 66 अनुच्छेद हैं जो 5 भागों मे विभाजित हैं। इस अभिसमय के 11 प्रोटोकाल भी हैं। यह अभिसमय संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा से आगे हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं:–

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

(1) मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा में वर्णित अधिकारों के राज्य विधि में प्रयोग की कोई बाध्यता नहीं है। परन्तु यूरोप के अभिसमय को पक्षकारों पर इन अधिकारों को अपनी देशीय विधि में प्रभावी उपचारों के साथ लागू करने की बाध्यता है।

(2) सार्वभौम घोषणा के विपरीत यूरोप का अभिसमय उल्लिखित अधिकारों की स्पष्ट परिभाषा करता है और उनके निर्बन्धनों तथा अपवादों का भी उल्लेख करता है।

(3) यूरोप के अभिसमय में एक मानव आयोग का प्रावधान है। संधि में उल्लिखित अधिकारों के खण्डन की दशा में यह आयोग अन्वेषण कर रिपोर्ट बनाता है।

(4) पक्षकार राज्यों की सहमति पर व्यक्ति अपने राज्य के द्वारा मानवाधिकारों के हनन की शिकायत सीधे मानवाधिकार आयोग को कर सकता है।

2.5.2 मानवधिकारों का अमेरिकी अभिसमय, 1969

यह यूरोप के मानवधिकार अभिसमय के समान ही उपबंध करता है। परन्तु इसमें पक्षकार राज्यों पर अनुसमर्थन के उपरांत व्यक्ति की याचिका स्वीकार करने की बाध्यता आ जाती है। राज्यों के विरूद्ध शिकायत तभी की जा सकती है जब राज्य ऐसी अधिकारिता स्वीकार करने की पृथक घोषणा करते हैं। इस अभिसमय में भी यूरोपीय अभिसमय के समान केवल सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों का उपबंध किया गया है।

2.5.3 मानव एवं लोगों के अधिकारों का अफ्रीकी चार्टर, 1981

इसे वेनेजुल चार्टर भी कहा जाता है। इस चार्टर में मानव के लिए निम्न मानवाधिकारों का उपबंध किया गया है। जैसे–विधि के समक्ष समानता, व्यक्ति के जीवन एवं प्रतिष्ठा के सम्मान का अधिकार, मानव व्यक्ति में अन्तर्निहित गरिमा के सम्मान का अधिकार, व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं सुरक्षाा का अधिकार, अंतः करण, पेशे एवं धर्म के स्वतंत्र अभ्यास की स्वतंत्रता, सूचना का अधिकार, स्वतंत्र संघ बनाने का अधिकार, आवागमन एवं निवास की स्वतंत्रता का अधिकार, सम्पति का अधिकार, शरीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की दशा का उपभोग करने का अधिकार इत्यादि।

2.5.4 मानवाधिकारों का अरब आयोग

अरब राष्ट्रसंघ ने 1968 में एक क्षेत्रीय मानव अधिकार संगठन स्थापित करने का निर्णय लिया और बेरूत के सम्मेलन में एक स्थायी अरब क्षेत्रीय मानव अधिकार आयोग को दिसम्बर 1968 में स्थापित किया। इस आयोग में अरब संघ के सदस्य राष्ट्र हैं।

2.6 वर्तमान समय में विभिन्न देशों में मानवाधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध आंदोलन

आइए अब विश्व के विभिन्न देशों/क्षेत्रों में हो रहे मानवाधिकारों के लिए संघर्षों पर विचार करें।

2.6.1. लीबियाः लीबिया क्रांति 2011 में हुई थी। लीबिया की क्रांति मानवाधिकार के उल्लंघन को लेकर पूरे 8 महीने चली। लीबिया की क्रांति की शुरूआत 15 फरवरी को हुई। 15 फरवरी को मानवाधिकार कार्यकर्ता फेतही तारबेल को गिरफ्तार किया गया। लोग इस गिरफ्तारी से भड़क गए और बेनगाजी शहर में विरोध प्रदर्शन शुरू हो गए। लीबिया के शासक कर्नल मुअम्मर गद्दाफी के द्वारा लोगों का शोषण किया जा रहा था। प्रदर्शन शुरू होने के बाद सब कुछ बहुत तेजी से हुआ। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने गद्दाफी और उनके परिवार पर प्रतिबंध लगा दिये। मिसराता शहर पर गद्दाफी विद्रोहियों ने कब्जा कर लिया और 5 मार्च 2011 को नेशनल ट्रांजीशनल काउंसिल ने खुद को लीबिया का एकमात्र प्रतिनिधि घोषित कर दिया। 19 मार्च 2011 को नाटो सेनाओं ने लीबिया में पहला हवाई हमला किया। इससे एन.टी.सी के हथियार बंद लड़ाकों को मदद मिली। 27 जून 2011 को अंतर्राष्ट्रीय अपराध न्यायलय ने कर्नल गद्दाफी उनके बेटे और खुफिया एजेंसियों के प्रमुख के खिलाफ वारण्ट जारी किया। उन पर मानवता के खिलाफ अपराधों के आरोप लगाए गए। 23 अगस्त को विद्रोहियों ने गद्दाफी के महल पर कब्जा कर लिया। गद्दाफी का कहीं कोई पता नहीं था लेकिन उनकी सत्ता का सबसे बड़ा प्रतीक ध्वस्त कर दिया

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

गया। 8 सितम्बर को लीबिया के अंतरिम प्रधानमंत्री महमूद जिब्रिल पहली बार त्रिपोली पहुँचे। इस प्रकार लीबिया में मानवाधिकार को लेकर संघर्ष के बार वहाँ सत्ता बदली और लोगों को मानवाधिकार प्राप्त हुए।

2.6.2 तिब्बतः तिब्बती राष्ट्रीय क्रांति दिवस के अवसर पर तिब्बती समुदाय के लोगों द्वारा जुलूस निकाला जाता है। तिब्बती समाज के लोग इकट्ठा होते हैं और सभायें करके तिब्बत में हो रहे मानवाधिकारों के हनन एवं तिब्बत में मारे जा रहे निर्दोष नागरिकों एवं उन पर चीन द्वारा किए जा रहे अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाते हैं। तिब्बत की आजादी के लिए उन्हें आत्मदाह करने को मजबूर होना पड़ रहा है। तिब्बतियों के सर्वोच्च धर्म गुरू दलाई लामा तिब्बतियों की स्वतंत्रता एव संस्कृति बचाने हेतु प्रयासरत हैं।

2.6.3 ट्यूनीशियाः ट्यूनीशिया में भी आर्थिक समस्याओं और बेरोजगारी को लेकर विरोध प्रदर्शन हो रहे हैं जिसके कारण लोगों में भय और भूख की समस्या हो गयी है। ट्यूनीशिया में आंतरिक स्तर पर राजनैतिक रस्साकसी, अशांति, व्यापक स्तर पर आतंकवादी गुटों की उपस्थिति, रोजगार के अवसर मुहैया करने के लिए आर्थिक ढांचे और पूंजी निवेश पर सरकार के ध्यान न देने और इसी प्रकार सुरक्षा स्थापित करने और समाज पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए पुलिसिया व राजनैतिक घुटन के माहौल के कारण, इस देश की जनता खास तौर पर जवानों की हालात बहुत कठिन हो गए हैं।

2.6.4. भारत में मानवाधिकारः भारत के संविधान में मानवाधिकारों की व्यापक परिकल्पना की गयी है। भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता की उपलब्धि और व्यक्ति की गरिमा में अभिवृद्धि को भारत के संविधान की उद्देशिका में वर्णित किया गया है। साथ ही संविधान के भाग 3 (अनु0 12–35) में मौलिक अधिकारों का उपबंध किया गया है। इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय का दरवाजा क्रमशः अनु0 32 एवं 226 के तहत खटखटाया जा सकता है। इन अधिकारों के प्रवर्तन को केवल राष्ट्रीय आपात के समय ही निलंबित किया जा सकता है। परन्तु ऐसे आपात के समय भी अनु0 20 तथा अनु0 21 में दिये गए अधिकारों का प्रवर्तन कराया जा सकता है।

भारतीय संविधान के भाग 4 (अनु0 36–51) में राज्य के नीति निदेशक तत्व दिये गए हैं। इसमें आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का उपबंध किया गया है। इनका प्रवर्तन आर्थिक भार डालता है। इसलिए इन अधिकारों को मूल अधिकारो की तरह न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है।

भारत के संविधान में समाज के कमजोर व्यक्तियों, पिछड़ों, अनुसूचित जातियों और जनजातियों तथा अल्पसंख्यक वर्गों के लिए अनेक उपबंध किये गए हैं। अल्पसंख्यकों की संविधानिक सुरक्षाओं के मूल्यांकन और उनके कार्यान्वयन की संस्तुति के लिए एक अल्पसंख्यक आयोग की 1978 में स्थापना की गयी थी। इस आयोग को 1992 में एक अधिनियम के द्वारा कानूनी दर्जा दे दिया गया।

इसी प्रकार महिलाओं के मानवाधिकारों को संरक्षित करने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 के द्वारा एक राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गयी है।

2.6.5 मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993

अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रभाव तथा आतंकवादी गतिविधियों के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिए एवं भारत में मानव की गरिमायुक्त स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए 28 सितम्बर 1993 को भारत के राष्ट्रपति ने अध्यादेश जारी किया। इसके आधार पर भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गयी। इसके बाद मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 संसद द्वारा पारित किया गया। इसका उद्देश्य केन्द्र और राज्य में मानव अधिकार आयोग तथा मानव अधिकार न्यायालय स्थापित कर मानव अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करना है। इस अधिनियम में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग और जिला मानवाधिकार न्यायालय के गठन का उपबंध किया गया है।

इस प्रकार भारत में भी व्यक्ति के मानवाधिकार के संरक्षण के लिए भारतीय संविधान तथा अधिनियमों में उपबंध किये गये हैं। साथ ही साथ भारतीय संविधान तथा अधिनियम में उनके अधिकार प्रदान किये गए हैं। इसलिए भारत ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उपबंधित मानवाधिकारों को अच्छी प्रकार से लागू किया है तथा उनके संरक्षण का भी उपाय किया है। इस संबंध में यह कहना अत्यन्त आवश्यक है कि भारत में मानवाधिकारों को

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

वास्तविक रूप से लागू करने का श्रेय उच्चतम न्यायालय को जाता है।

2.6.6 पाकिस्तान अधिकृत जम्मू एवं कश्मीर में मानवाधिकारों की समस्या

1947 में पाकिस्तान ने जम्मू एवं कश्मीर रियासत के भारत में विलय से परेशान होकर कश्मीर पर आक्रमण किया और उसके लगभग एक तिहाई भूभाग पर अनधिकृत कब्जा कर लिया। तब से लेकर आज तक वहां लोगों को आजादी के नाम पर बहला फुसला कर गुलामों से भी बदतर स्थिति में रखा गया है और यह क्रम अभी तक अनवरत जारी है। हाल ही में वहां के लोगों द्वारा अपने अधिकारों की मांग करने पर जला कर मार देने की घटनाएं सामने आयी हैं।

2.7. सारांश

मानवाधिकार व्यक्ति को जन्म लेने से ही प्राप्त हो जाता है। इसलिए मानव को मानव होने के नाते जो अधिकार मिलता है वह मानवाधिकार कहलाता है। मानवाधिकार आंदोलन वर्तमान समय में नहीं शुरू हुआ है बल्कि इसकी शुरूआत अतीत काल से ही हो गयी थी। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जब से मानव समाज की उत्पत्ति हुई उसी समय से मानवाधिकार की उत्पत्ति हुई है। इसलिए मानवाधिकार आंदोलन बहुत पुराने हैं। क्योंकि जब–जब व्यक्ति के अधिकारों का हनन हुआ है, तब–तब संघर्ष की ज्वाला भड़की है। चाहे पुराने समय में कबीले में रहने वाले लोगों के बीच उनके अधिकारों को लेकर संघर्ष हो या जब राजा के द्वारा प्रजा का शोषण किया जा रहा हो तो उस समय प्रजा के द्वारा अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए राजा के साथ संघर्ष हो। वर्तमान समय में प्रजातांत्रिक देशों में सरकार के द्वारा जब जनता का शोषण किया जाता है तो सरकार तथा जनता के बीच संघर्ष होता है।

मानवाधिकारों के लिए संघर्ष करके जनता, सरकार से अपने अधिकारों की मांग करती है। मानवाधिकार आंदोलन इंग्लैण्ड में मैग्ना कार्टा से शुरूआत हुई तो फ्रांस में फ्रांसीसी क्रांति से तथा रूस में रूसी क्रांति इसका आरम्भ माना जा सकता है। भारत में भी मानवाधिकार के उल्लघंन के लिए क्रांति हुई, जिसे 1857 में सैनिक विद्रोह को माना जा सकता है। भले ही वहां मानवाधिकार शब्द का प्रयोग न किया गया हो क्योंकि शुरूआत में वह सैनिकों के अधिकार से संबंधित थी। लेकिन शीघ्र ही उसने व्यापक रूप ले लिया था और अंग्रेजों ने बड़ी मात्रा में नागरिकों का कत्लेआम भी किया था।

सर्वप्रथम मानवाधिकार को संरक्षित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर 1948 को मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को अंगीकार किया। इसके बाद इसकी दो प्रसंविदाओं को भी 1966 में अंगीकार किया गया। इन सभी में मानवाधिकारों के प्रवर्तन के उपाय किये गए हैं। इसके बाद क्षेत्रीय स्तर पर भी मानवाधिकारों से संबधित अभिसमयों को स्वीकार किया गया। परन्तु फिर भी वर्तमान समय में ऐसे बहुत से देश हैं जहाँ मानवाधिकार का खुला उल्लघंन हो रहा है। वर्तमान समय में आतंकवादियों के द्वारा लोगों के मानवाधिकारों का उल्लंघंन हो रहा है इसलिए विश्व के सभी देशों को एकजुट होकर इसमें काम करना होगा तभी विश्व के लोगों का मानवाधिकार सुरक्षित रहेगा और तभी वसुधैव कुटुम्बकम् की संकल्पना जो भारत ने दी है उसको साकार किया जा सकता है।

बोध प्रश्नः

1. संयुक्त राज्य अमेरिका में मानवाधिकारों के संबंध में हुए आंदोलनों की चर्चा कीजिए।

   ....

2. मानवाधिकारों के विकास एवं आंदोलनों पर टिप्पणी लिखिए।

   ....

3. मानवाधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं का उल्लेख कीजिए।

   ....

4. मानवाधिकारों की क्षेत्रीय संरक्षण व्यवस्था पर टिप्पणी लिखिए।

....

5. भारत में मानवधिकार संबंधी प्रयासों की जानकारी दीजिए।

....

6. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 क्या है? समझाइये।

....

महत्वपूर्ण शब्दः–

उच्चतम न्यायालय – किसी देश का सर्वोच्च न्यायालय

अनुच्छेद – संविधान के उपबंधों का दिया गया नाम

संयुक्त राष्ट्र चार्टर – वह बहुपक्षीय विधिक संधि जिसके द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन हुआ

अधिनियम – संसद द्वारा पारित कानून

अन्य उपयोगी पुस्तकें:–

भारत का संविधान – जे.एन. पाण्डेय

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993

अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदायें (मानवाधिकार)

संवैधानिक विधि के मानवाधिकार – दुर्गा दास बसु

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई 3 मानव अधिकार का सिद्धांत

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मानव अधिकार की अवधारणा

3.2.1 ईसा पूर्व का काल

3.2.2 ईसा के पश्चात

3.2.3 मध्य युग

3.2.4 आधुनिक काल: संवैधानिक व्यवस्थाओं का उदय

3.3 मानव अधिकार की परिकल्पना

3.4 मानव अधिकार के सिद्धांत

3.4.1 नैतिक सिद्धांत

3.4.2 राजनैतिक सिद्धांत

3.4.3 विधिक सिद्धांत

3.5 सारांश

3.0 उद्देश्य

दार्शनिक विचारों की अनुभूति मानव अधिकार के सिद्धान्तों में भली–भाँति होती है। मानव अधिकार राज्य पर कहीं से थोपे नहीं गए हैं बल्कि ये उन सिद्धांतों पर टिके हैं जो राज्य निर्माण की भी नींव हैं। जैसा की पिछले इकाई में हमने देखा कि राज्य निर्माण के साथ ही मानव अधिकार परिलक्षित होने लगे थे, उसी तरह मानव अधिकार के सिद्धांत भी, राज्य निर्माण के साथ अपना रूप पाने लगे थे। जहां ये सिद्धांत, मानव अधिकारों की उपयोगिता तथा प्राथमिकता को तय करते हैं वहीं ये राष्ट्र के कर्त्तव्यों तथा उसके उद्देश्य को भी निर्धारित करते हैं। इस इकाई में हम समझेंगे कि इन सिद्धांतों की अवधाराणओं का कैसे निर्धारण किया गया, इनकी परिकल्पना में किन विचारों की भूमिका रही तथा ये सिद्धांत कौन–कौन से हैं और इन सिद्धांतों ने मानव अधिकार को वर्ततान स्वरूप लेने में कैसे मदद की।

3.1 प्रस्तावना

मानव अधिकार के न्यूनतम अधिकार हैं जिनकी आवश्यकता व्यक्तियों को राज्य के विरूद्ध या लोक प्राधिकारयों के विरूद्ध उनके मानव परिवार के सदस्य होने के कारण होती है। मूल रूप से मानव अधिकारों का केन्द्र राज्य एवं उसकी सीमित शक्ति रहा है। मानवाधिकारों की संकल्पना नैसर्गिक विधि पर आधारित नैसर्गिक अधिकारों के प्राचीन सिद्धान्त पर टिकी है। किसी भी सभ्य समाज में जहां कोई शासन व्यवस्था होती है शासक वर्ग की कमियों और अत्याचारों के विरूद्ध सामान्य जन को कुछ संरक्षण चाहिए और इसी के चलते उच्चतर विधियों की अवधारणा की गई और कहा गया कि ये उच्चतर विधियाँ सामान्य जन को कतिपय अधिकार देती हैं जो समाज के अस्तित्व में आने से पहले की हैं। ये मनुष्यों द्वारा बनाये गये कानूनों से प्रदत्त अधिकारों से बड़ी हैं और दुनिया के किसी भी हिस्से में रहने वाले लोगों पर लागू होती हैं। धीरे–धीरे सभ्यता के विकास के क्रम में और बाद में राष्ट्रों द्वारा निर्मित संविधानों में इन उच्चतर विधिक अधिकारों को संहिताबद्ध किया जाने लगा।

मानवाधिकार ऐसे मूलभूत और अहस्तांतरणीय अधिकार हैं जो मानव के जीवन के लिए अति आवश्यक हैं। दूसरे शब्दों में इनके अभाव में जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। यह अधिकार प्रत्येक मनुष्य को मिले हैं चाहे वह किसी देश, जाति, संप्रदाय या लिंग आदि का हो और ऐसा इसलिए कि वह मानव है। इनके बिना मानव

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

का संपूर्ण विकास संभव नहीं है। ये प्रकृति प्रदत्त अधिकार हैं और सिद्धान्ततः यह किसी विधायिका या सरकारी आदेश द्वारा लिए नहीं जाने चाहिए अथवा इनका हनन नहीं किया जाना चाहिए। विभिन्न देशों में संविधानों या विधियों जिनमें इस मूलभूत अधिकारों का उल्लेख होता हो वह भी इन अधिकारों का स्रोत नहीं है बल्कि वे तो केवल इन अधिकारों की केवल घोषणा मात्र करते हैं। वे अधिकार विधायिका द्वारा नहीं बनाए गये थे। वे प्राकृतिक अधिकारों के समान हैं। कानूनी रूप से इनको लिख देने का अर्थ है कि हमने इनको अपनी राष्ट्रीय विधि व्यवस्था का अंग स्वीकार कर लिया है। इनको संशोधित भी नहीं किया जा सकता है।

3.2 मानव अधिकार की अवधारणा

मानव अधिकार की अवधारणा का वर्तमान स्वरूप एक लम्बे दार्शनिक, राजनीतिक, विधिक और सामाजिक विकास का परिणाम है। साथ ही साथ यह समाज की लोकतान्त्रिक व्यवस्था पर भी टिका हुआ है। सामंत वाद के विरोध में हुए आंदोलनों के राजनीतिकरण के कारण इसको एक नया आयाम मिला है।

3.2.1 ईसा पूर्व का काल

मानव अधिकारों के संरक्षण के प्रमाण प्राचीन काल की बेबीलोनिया विधि, असीरिया विधि, हित्ती विधि तथा भारत में वैदिक कालीन धर्म में पाए जा सकते हैं। विश्व के सभी प्रमुख धर्मों का आधार मानवता वाद है। विभिन्न संप्रदायों की अंतर वस्तु में भेद होने के बावजूद भी वे सभी मानव अधिकारों का समर्थन करते हैं। मानव अधिकारों की जड़ें प्राचीन विचार तथा प्रकृतिक विधि और प्राकृतिक अधिकारों की दार्शनिक अवधारणा में पायी जाती हैं। कुछ यूनानी तथा रोमन दार्शनिकों ने प्राकृतिक अधिकारों के विचारों को मान्यता प्रदान की थी। प्लेटो उन सर्वप्रथम लेखकों में से एक थे जिन्होंने नैतिक आचरण के सार्वभौमिक मानक की वकालत की थी। इसका अभिप्राय यह था कि विदेशियों से उसी प्रकार संव्यहार करना चाहिए जैसा कि अपने देश के लोगों से करते हैं। इसमें सभ्य ढंग से युद्ध के संचालन की भी अपेक्षा की गई। रिपब्लिक (400बी.सी.) के माध्यम से उन्होंने सार्वभौमिक सत्यों के विचार का प्रस्ताव रखा जिसे सभी को मान्यता देनी चाहिए। व्यक्तियों को सार्वजनिक कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए। अरस्तु (384–322 बी.सी) ने 'राजनीति' में लिखा कि न्याय, सद्‌गुण तथा अधिकार, भिन्न प्रकार के संविधानों तथा परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। सिसरो (106–43 बी.सी) जो एक रोमन राजनेता थे, ने अपनी कृति–दि लॉज में प्राकृतिक विधि तथा मानव अधिकारों की नींव रखी। सिसरो का यह विश्वास था कि ऐसी सार्वभौमिक मानव अधिकार विधियाँ होनी चाहिए जो रूढ़िगत तथा सिविल विधियों से श्रेय हों। सोफोक्लेज (495–406 बी.सी) राज्य के विरूद्ध अभिव्यक्ति की स्वन्तंत्रता के विचार की अभिव्यक्ति करने वाले व्यक्तिओं में से अग्रणी थे। स्टोइक ने विधि की उच्चतर व्यवस्था को निर्दिष्ट करने के लिए प्राकृतिक विधि की ऐसी नैतिक अवधारणा का प्रयोग किया जो प्रकृति के समरूप थी तथा जो सभ्य समाज एव सरकार की विधियों के मानक के रूप में प्रयोग की जानी थी।

3.2.2 ईसा के पश्चात

ईसाई धर्म के उद्‌भव के पश्चात्, विशेषकर सेंट थॉमस एक्विनास, ने इस प्राकृतिक विधि की जड़ ईश्वरीय विधि में खोजने का प्रयत्न किया जिसको ईश्वर–प्रदत्त अधिकारों के माध्यम से मनुष्य द्वारा अंशतः पता लगाया जा सकता था क्योंकि यह मनुष्य को दैवी ढंग से प्रकाशित हुई। यूनान के सिटी–स्टेट में नागरिकों को वाक् की स्वतंत्रता, मताधिकार, लोकपद पर निर्वाचित होने का अधिकार, व्यापार करने का अधिकार तथा न्याय प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया। इसी प्रकार के अधिकार रोमन विधि 'जस सिविल' (सिविल विधि) द्वारा रोम वासिओं को सुनिश्चित कराये गये। इस प्रकार, मानव अधिकारों की अवधारणा की उत्पत्ति सामान्यतया ग्रीक–रोमन प्राकृतिक विधि के स्टोइसिज़्म के सिद्धांतों में पाया जाना माना जाता है। जिसके अंतर्गत यह धारणा है कि एक सार्वभौमिक शक्ति सभी जीवों पर व्याप्त है और इसीलिए, मानव आचरण प्राकृतिक विधि के अनुसार होना चाहिए।

3.2.3 मध्ययुग

इंग्लैण्ड के सम्राट द्वारा 15 जून, 2015 को इंग्लिश सामंतो को प्रदान किया गया मैग्नाकार्टा, तृतीय धर्मयुद्ध द्वारा सृजित भारी कराधान के भार के बदले देना पड़ा। इंग्लिश सामंतों ने भारी करों का विरोध किया था तथा वे अपने अधिकारों में बिना किसी रियायत के सम्राट जॉन को पुनः शासन चलाने देने के इच्छुक

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

नहीं थे। मैग्नाकार्टा का मूल उद्देश्य या विषय सम्राट के निरंकुश कृत्य के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करना था। भूमि तथा संपत्ति का अब कोई मनमाना अधिग्रहण नहीं किया जा सकता था। कोई भी कर सामान्य परिषद के बिना अधिरोपित नहीं किया जा सकता था। बिना किसी न्यायिक जाँच के कोई भी कारावासित नहीं किया जा सकता था। व्यापारियों को इंग्लैण्ड के भीतर तथा बाहर स्वतंत्रता पूर्वक यात्रा करने का अधिकार प्राप्त हुआ। मैग्नाकार्टा के खंड 39 में विचारण की अवधारणा को प्रारम्भ किया। जिसमें मनमाने पूर्ण ढंग से की गई गिरफ्तारी तथा कारावास के विरूद्ध संरक्षण प्रदान किया गया। इस प्रकार, चार्टर में यह सिद्धांत पेश किया गया कि सम्राट की शक्ति आत्यंतिक नहीं होती है। यद्यपि चार्टर विशेषाधिकार प्राप्त उच्च वर्गीय लोगों के लिए लागू होता था, शनैः शनैः इस अवधारणा का विस्तार हुआ और वर्ष 1689 में बिल ऑफ राइट्स में समस्त इंग्लिश व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया और अंततः सभी नागरिक इसकी परिधि में आ गए।

सेंट थॉमस एक्विनास तथा ग्रोसियस के लेखों में भी इस विचार की झलक मिलती है कि मानव जाति को कतिपय व्यापक अधिकार प्राप्त हैं।

3.2.4 आधुनिक कालः संवैधानिक व्यवस्थाओं का उदय

व्यक्तियों के मूल अधिकारों की अभिव्यक्ति कई राज्यों की घोषणाओं और संवैधानिक दस्तावेजों में पायी जाती है। उदाहरण के लिए, 1776 में संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा, संयुक्त राज्य अमेरिका के 1787 के संविधान में तथा उसके पश्चात के संशोधनों द्वारा व्यक्तियों के अधिकारों को शामिल किया गया। नागरिकों के अधिकारों की 1789 में फ्रांसीसी घोषणा ने अन्य यूरोपीय देशों को मानव अधिकार के संरक्षण के लिए उनकी विधियों में प्रावधान शामिल करने के लिए उत्प्रेरित किया। 19वीं शताब्दी प्रारंभ से ही अधिकतर राज्यों द्वारा यह मान्यता दी गई कि मानव कतिपय अधिकारों को धारण करते हैं। अतः, मानव व्यक्तित्व की तथा उसके संरक्षण की आवश्यता कई विकसित राज्यों द्वारा महसूस की जाने लगी और मानव को अधिकार प्रदान किया जाने लगा। 1809 में स्वीडन, 1812 में स्पेन, 1814 में नार्वे, 1813 में बेल्जियम, 1849 में डेनमार्क, 1850 में प्रशा और 1874 में स्विट्ज़रलैंड में लोगों (नागरिकों) के मूल अधिकारों के लिए प्रावधान किये गए।

अतः यह कहा जा सकता है कि कई राज्यों ने उन्नीसवीं सदी तक अपने अपने संविधानों में मानव के अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रावधान बना लिए थे। किन्तु उन अधिकारों को मानव अधिकार नहीं कहा जाता था। मानव अधिकार शब्द सर्वप्रथम थॉमस पेन द्वारा इस्तेमाल किया गया जो फ्रांसीसी घोषणा में व्यक्तियों के अधिकारों का अंग्रेजी अनुवाद है। मानव अधिकार शब्द मनुष्यों के अधिकार का अंग्रेजी अनुवाद है। मानव अधिकार शब्द मनुष्यों के अधिकार शब्द से अधिक उपर्युक्त प्रतीत होता है।

3.3 मानव अधिकार की परिकल्पना

वर्तमान समय में लगभग प्रत्येक दिन समाज में मानव अधिकार को लेकर एक संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मानव अधिकार तथा स्वाधीनता को समाज के प्रथम तल पर रखना ही बौद्धिक, सांस्कृतिक, और नैतिक दृष्टि से उस समाज की उन्नति को दर्शाता है। इससे यह भी पता चलता है कि समाज अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों को अपने अंदर समाहित किये हुए है अथवा नहीं मानव अधिकार की परिकल्पना, कम हथियार, कम युद्ध, ज्यादा सुरक्षा और ज्यादा खुशहाली की परिकल्पना भी है, और यही बात इसको अधिक महत्वपूर्ण बनाती है।

न केवल राष्ट्रीय बल्कि अंतर्राष्ट्रीय रूप से आज हम अनेकानेक प्रश्नों से घिरे हैं, जिनका आधार मानव को मिलने वाले अधिकार से ही है। उदाहरण स्वरूप अगर किसी व्यक्ति को दो समय की रोटी नसीब नहीं हो रही है तो यह सिर्फ उसके मानव अधिकार का हनन नहीं बल्कि यह उस राज्य की राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था का असफल होना भी दिखाता है, जहाँ वो व्यक्ति निवास करता है।

मानव समाज के विकास के साथ मानव अधिकार की परिकल्पना ने जन्म लेना प्रारम्भ कर दिया था। पाषाण युग के भी पहले, जब मनुष्य जंगलों में जीव जन्तुओं की तरह रहता था, तब उसके पास अधिकार ही अधिकार थे और कर्तव्य का बोध लगभग नगण्य था। उन अधिकारों की पारगम्यता तथा उपयोगिता सिद्धि के लिए, मनुष्य समूह में विचरण करने लगा, और धीरे–2 कृषि के विकास के साथ समाज का भी विकास हुआ। परन्तु जब समाज का निर्माण होने लगा तो सामाजिक कर्तव्यों का निर्माण भी प्रारम्भ हो गया। कर्तव्य को पूर्ण करने हेतु अधिकार की अनदेखी प्रारम्भ हो गई। समाज के उच्च पदों पर बैठे कुछ लोगों ने ऐसे कानून बनाने

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

प्रारम्भ कर दिए जिससे समाज वर्गों में विभाजित हो गया और निम्न वर्ग के मनुष्यों के पास केवल कर्तव्य रह गए और उनके अधिकार शून्य हो गए। समाज मनुष्य के कुछ आधारभूत अधिकारों की पूर्ति के लिए बना है, परन्तु जब इसी समाज का एक बहुत बड़े वर्ग का अधिकार लगभग शून्य होता है, तब वह समाज ताश के पत्तों के घर की तरह कभी भी बिखर जाता है। प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब कई राष्ट्रों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया तब अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने ये समझ लिया कि बिना आधाभूत मानवाधिकारों के राज्य का अस्तित्व ही बेईमानी हो जाता है। और इसीलिए 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र की सार्वजनिक सभा ने मानवाधिकारों की वैश्विक उद्घोषणा को अपनाया।

3.4 मानवाधिकारों के सिद्धान्त

आइये मानव अधिकारों के संबंध में कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की चर्चा करते हैं।

3.4.1 नैतिक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार मानवाधिकारों का सृजन नहीं हो सकता बल्कि ये मानव समुदायों में पहले से ही निहित होते हैं। इनको बाहर से थोपा नहीं जा सकता। इन अधिकारों की उत्पत्ति मानवता के नैतिक मूल्यों द्वारा होती है। आदेशित विधि द्वारा, राज के निर्देशों तथा अदालतों के आदेशों का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इनका अस्तित्व किसी भी सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर नहीं करता। अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार समूह इनका सृजन नहीं कर सकते और न ही इनके न मानने से कोई मानवाधिकार समाप्त हो जाता है। इस सिद्धान्त का उद्देश्य, किसी भी मानवाधिकार को एक अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा देना है, जिसकी निर्भरता समय विशेष या स्थान विशेष पर न हो।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस सिद्धांत के अनुसार मानवाधिकार सार्वभौमिक होते हैं। ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक और अन्य तरह के समाज के अन्दर आपसी सम्बन्ध का इनपर कोई प्रभाव नहीं होता। ये एक तरह के विशेष कर्तव्यों का सृजन करते हैं जो संसार के हर व्यक्ति के लिए होता है। मानवता के अलावा अगर किसी कर्तव्य का किसी और सम्बन्ध से सृजन होता है, जैसे राजा के लिए, मित्र के लिए अथवा एक नागरिक होने का कर्तव्य, तो ऐसा कर्तव्य आधारभूत मानवाधिकारों का सृजन कर सकेगा, ऐसा नहीं माना जा सकता। इसलिए ऐसे कर्तव्यों का तथा इनके संगत अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार समूहों द्वारा मान्यता नहीं की जानी चाहिए।

3.4.2 राजनीतिक सिद्धान्त

नैतिक सिद्धान्तो के विलोम (उलट) राजनीतिक सिद्धान्त कहता है कि आधारभूत मानवाधिकारों का निर्गम संप्रभु के उन कार्यों के विरोध में हुआ है, जो तत्काल रूप से व्यक्ति के अस्तित्व को खतरे में डालते हैं। ये सार्वभौमिक नहीं होते तथा इनका निर्माण सामाजिक व्यवस्था, (जब राज्य तथा नागरिक सम्बन्ध विकसित हो चुका था,) उसके बाद हुआ। नागरिकों के अधिकार को संप्रभु के समक्ष प्रस्तुत करना तथा राज्य के नागरिकों की उपेक्षा का विरोध नागरिकों के प्रतिनिधि करते हैं। और इसी विरोध तथा प्रार्थना की प्रक्रिया में आधाभूत मानवाधिकारों का निर्माण होता है। यह सिद्धान्त मानता है कि नागरिकों के आधारभूत मानवाधिकारों के संरक्षण की प्राथमिक जिम्मेवारी राज्य की होती है और उसके बाद अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार समूहों की बारी आती है।

3.4.3 विधिक सिद्धान्त

नैतिक तथा राजनीतिक सिद्धांत के विपरीत विधिक सिद्धांत ये मानता है कि मानवाधिकारों की व्युत्पत्ति कानूनों द्वारा हुई है। इसकी मान्यता है कि सिर्फ विधि द्वारा ही मानवाधिकार की रचना की जा सकती है। जैसे की भारतीय संविधान के भाग तीन में उल्लिखित मौलिक अधिकारों में शामिल अनुच्छेद 21 में सम्मान के साथ जीने का अधिकार मिला है। यह एक आधारभूत मानवाधिकार है जो कि संविधान के द्वारा पदत्त किया है। अंतर्राष्ट्रीय विधि भी कई तरीकों से मानवाधिकार के निर्माण में सहायक होती है। पैक्टा संट सर्वेडा, जो दो देशों के बीच हुई अंतर्राष्ट्रीय संधियों पर लागू होता है, भी मानवाधिकार का एक देश से दूसरे देश में स्थानांतरण कर देता है। इसी तरह संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार घोषणा में 'विकास का अधिकार' सन्निहित है जो कि एक मानवाधिकार की रचना भी करता है। कुछ ऐसे रीति–रिवाज भी होते हैं, जिनकी मान्यता कानून के द्वारा हो गई

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

है और जो मानवाधिकार को भी आधार देते हैं, विधिक बल तभी प्राप्त करते हैं, जब उनकी मान्यता कानूनों के द्वारा हो जाती है। और इसी कारण उनके द्वारा बनाए गए मानवाधिकार भी नागरिकों को प्राप्त हो जाते हैं। मानवाधिकारों को विधिक बल देना कानून की एक सामान्य तथा प्रभावी प्रक्रिया है। परन्तु विधिक सिद्धांत की कई आलोचनाएं हैं जैसे कि मानवाधिकार विधिक बल के बाद ही मानवाधिकार नहीं बनते बल्कि वो पहले से ही अस्तित्व में रहते हैं। उदाहरण के लिए जीने का अधिकार। जीने का अधिकार एक ऐसा मूलभूत मानवाधिकार है जिसके लिए किसी विधिक बल की आवश्यकता नहीं है। हाँ इसकी उपस्थिति को सम्मानपूर्वक दर्शाने के लिए विधि का सहारा लिया जा सकता है।

3.5 सारांश

वैसे तो 'मानव अधिकार' पद का मूल अंतर्राष्ट्रीय विधि में माना जाता है परन्तु व्यक्तियों के आधारभूत, अहस्तांरणीय अधिकारों (जिनको राज्य के विरूद्ध माना जाता है) की अवधारणा प्राकृतिक विधि एवं प्राकृतिक अधिकारों पर टिकी है। थॉमस हॉब्स (1588–1679), जॉन लॉक (1632–1704) एवं रूसो (1712–1778) उन विचारकों में प्रमुख हैं जिन्होंने यह सिद्धांत कि अधिकार प्रकृति प्रदत्त हैं का प्रतिपादन किया।

थॉमस हॉब्स ने अपनी पुस्तक 'लेवियाथन' में स्पष्ट रूप से कहा है कि मनुष्य के जीवन के प्राकृतिक अधिकार से उसे वंचित नहीं किया जा सकता है। उनका कहना था कि सभी मानव अधिकार बिना किसी प्रतिफल के हैं अर्थात उन पर कोई शर्त लागू नहीं की जा सकती है और यह कि सभी अधिकार बराबर हैं।

जॉन लाक ने अपनी पुस्तक में कहा है कि मनुष्य को उसके प्राकृतिक अधिकार से कोई सरकार वंचित नहीं कर सकती क्योंकि वे इनको किसी भी प्रकार के समाज के गठन के पूर्व मिले थे। रूसो ने अपनी पुस्तक 'द सोशल कांट्रेक्ट' में कहा कि मनुष्य के अहंस्तातरणीय अधिकार प्रकृति प्रदत्त हैं।

कुछ बोध प्रश्न

1. मानव अधिकार के सिद्धांतों से आप क्या समझते हैं?
2. मानव अधिकार के नैतिक सिद्धांत की चर्चा कीजिए।
3. मानव अधिकार का राजनैतिक सिद्धांत क्या है?
4. मानव अधिकार के विधिक सिद्धांत से आप कहाँ तक सहमत हैं?
5. "मानव अधिकार प्रकृति प्रदत्त है" चर्चा कीजिए।

महत्वपूर्ण शब्द–

- अंतर्राष्ट्रीय विधि– राष्ट्रों के व्यवहार को नियंत्रित करने वाली विधि।
- सिविल विधि– नागरिक कानून
- पैक्टा संट सर्वेडा– करार का सम्मान करना चाहिए।
- संविधान– वह मूल दस्तावेज जिसमें राज्य की शासन प्रणाली निहित होती है।
- मूल अधिकार– वे अधिकार जो मानव के गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिए आवश्यक है और सामान्यतया जिनका उल्लेख संविधान में किया जाता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें–

भारत का संविधान – जे. एन. पाण्डेय

संवैधानिक विधि में मानवाधिकार – दुर्गा दास बसु

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-117
मानवाधिकार

खण्ड–3
अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास

इकाई–1

1948 का सार्वभौमिक घोषणापत्र

इकाई–2

अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदायें, नागरिक और राजनीतिक अधिकार 1966

इकाई–3

अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थायें

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई–1 1948 का सार्वभौमिक घोषणापत्र

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 संयुक्त राष्ट्र संघ

1.4 मानव अधिकारों के सार्वभौम घोषणा पत्र

1.5 मानव अधिकारों के सार्वभौम घोषणा पत्र की आलोचना

1.6 मानव अधिकारों के सार्वभौम घोषणा पत्र का महत्व

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 संदर्भ ग्रंथ

1.10 संबंधित प्रश्न

1.1 उद्देश्य

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा पत्र वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों के संरक्षण और मानवीय समानता एवं स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण प्रयास है। वैश्विक स्तर पर देशों में एकजुटता और मानवाधिकारों के लिए जागरूता आवश्यक है। वर्तमान हिंसा, आतंकवाद, अत्याचार के विरूद्ध सफल प्रयोग की आधारशिला मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा पत्र है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने पूरे विश्व में मानवाधिकार के लिए कुछ निर्देश और मार्गदर्शन का प्रयास किया। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संयुक्त राष्ट्र संघ के बारें में जानेगे।
- मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा पत्र के बारे में जानेगे।
- मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा पत्र के उद्देश्य और उसमें लिखे अधिकारों के बारे में जानेगे।
- मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा पत्र के महत्त्व के बारें में जानेगे।

1.2 प्रस्तावना

वास्तव में देखा में जाये तो संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में मानवाधिकार के लिए कोई विशेष या अलग के प्रावधान नहीं है। परन्तु चार्टर की विभिन्न धाराओं में से कुछ धाराओं में मानवाधिकार के बारें में उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा समय– समय पर जो प्रयास विश्व स्तर पर किये गये है वह निश्चय ही मानवाधिकार के संरक्षण में विशेष रूप से सराहनीय प्रयास है। यद्यपि चार्टर में अलग से मानवाधिकार के लिए कोई घोषणा या विशेष दस्तावेज तो नहीं लिखा गया है परन्तु अनेक स्थानों पर स्पष्ट शब्दों में मानवाधिकार के लिए दशा, दिशा और खुले शब्दों में मानवाधिकारों के संरक्षण और अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर एकजुटता का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है जब भी मानवाधिकारों की बात आती है तब मानव अधिकारों के सार्वभौम घोषणा पत्र का जिक्र अवश्य आता है। मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा पत्र वैश्विक आधार पर सर्वमान्य और प्रचलित है।

1.3 संयुक्त राष्ट्र संघ

विश्व जब दो–दो विश्व युद्धों की त्रासदी झेल चुका और शांति के महत्व को समझने लगा तब उसने राष्ट्रीय

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

और अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर ऐसे प्रयास शुरू किये जिनसे वह जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं और दशाओं को प्राप्त कर सके। ऐसे ही प्रयासों का परिणाम संयुक्त राष्ट्र संघ है। जब विश्व ने प्रथम विश्वयुद्ध का संकट देखा तो युद्ध के समाप्त होने के बाद लींग ऑफ नेशन बना जो शांति और वैश्विक सौहार्द के लिए था। विश्व उसके महत्व को समझा न सका और लींग ऑफ नेशन की असफलता का परिणाम दूसरा विश्व युद्ध रहा। लेकिन दूसरे विश्व युद्ध की विभिषिका ने पुरी दुनिया को शांति के महत्व को समझा दिया। जिसका परिणाम का था कि सम्पूर्ण विश्व एकमत हो गया वैश्विक संस्थाओं के महत्व और आवश्यकता को समझने मे। 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ अस्तिव में आया। संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्यालय मैनहैटन टापू, न्यूयॉर्क शहर, न्यूयॉर्क राज्य, संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थित है।

संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर की प्रस्तावना में : " मानव के मौलिक अधिकारों, मानव के व्यक्ति के गौरव तथा महत्व मे, तथा पुरूष एवं स्त्रियों के समान अधिकारों में" विश्वास प्रकट किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक और सामाजिक परिषद को मानवाधिकारों के संरक्षण का दायित्व दिया गया।

वही संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर के अनुच्छेद 68 के अधीन यह परिषद मानवाधिकारों के लिए आयोग का गठन कर या अन्य आयोगों को स्थापित कर सकती थी।

इस अनुच्छेद 68 को ही आधार मान कर परिषद द्वारा 12 फरवरी 1946 को एक आयोग अनुमोदित किया गया इस प्रकार 1946 में मानवाधिकार आयोग की स्थापना हुयी। चूंकि राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों को बढ़ाना जरूरी है, अत: संयुक्त राष्ट्रों के सदस्य देशों की जनताओं के बुनियादी मानव अधिकारों, मानव व्यक्तित्व के गौरव और योग्यता में और नर–नारियों के समान अधिकारों में अपने विश्वास को अधिकार–पत्र में विस्तृत रूप से वर्णित किया जिससे अधिक व्यापक रूप से मानवीय स्वतंत्रता के अंतर्गत सामाजिक प्रगति एवं जीवन के बेहतर स्तर को ऊंचा किया जाएं और संयुक्त राष्ट्रों के सहयोग से मानव अधिकारों और बुनियादी आजादियों के प्रति सार्वभौम सम्मान की वृद्धि करने के लक्ष्य को ध्यान में रखकर कार्य किया गया।

1.4 मानव अधिकारो का सार्वभौम घोषणा (Universal Declaration of Human Rights)

ज्ञातव्य हो कि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में यह कथन था कि संयुक्त राष्ट्र के लोग यह विश्वास करते हैं कि कुछ ऐसे मानवाधिकार हैं जो कभी छीने नहीं जा सकते है। मानव की गरिमा है और स्त्री–पुरुष के समान अधिकार हैं। सांस्कृतिक और सामाजिक क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य मानवीय अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को ही माना गया। 1946 में मानवाधिकार आयोग की स्थापना के बाद जनवरी 1947 में आयोग की प्रथम बैठक हुयी। इस बैठक में श्रीमती इलेनार रूजवेल्ट (भूतपूर्व राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी0 रूजवेल्ट की विधवा) को अध्यक्ष चुना गया। यहाँ से मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा पत्र के विचार को आधार मिला। उसके बाद से काफी वक्त तक विचार विमर्श होता रहा कुछ समरू– समय पर बैठक भी होती रही। विचार मंथन के बाद 7 दिसम्बर 1948 को एक प्रारूप स्वीकार किया गया और 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने पेरिस में मानवाधिकारों के विश्वव्यापी घोषणापत्र को स्वीकार कर लिया गया।

इस घोषणा के परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर 1948 को मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा को अंगीकार किया गया। इसके बाद से ही प्रत्येक वर्ष 10 दिसम्बर को मानव अधिकार दिवस मानया जाता है।

1.5 मानव अधिकारो का सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद

मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा में प्रस्तावना सहित 30 अनुच्छेद है। यह अनुच्छेद विश्व में मानवाधिकार संरक्षण की दिशा में मार्गदर्शक का कार्य करते है। इनमें न केवल नागरिक और राजनीतिक आधिकारों को विस्तारपूर्वक बताया गया वरन मानव के सामाजिक और अधिकारों का भी विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया। 30 अनुच्छेदों वाला यह घोषणापत्र का मूलपाठ इस प्रकार है।

अनुच्छेद 1,

- सभी मनुष्यों को गौरव और अधिकारों के मामले में जन्मजात स्वतंत्रता और समान है। उनमें बुद्धि और अंतरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर उन्हें भाईचारे के भाव से बर्ताव करना चाहिए।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

अनुच्छेद 2,

- सभी को इस घोषणा में सन्निहित सभी अधिकरों और आजादी को प्राप्त करने का हक है और इस संदर्भ में जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य विचार–प्रणाली, किसी देश या समाज विशेष में जन्म, संपत्ति या किसी प्रकार की अन्य मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार न किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, चाहे कोई देश या प्रदेश स्वतंत्र हो, संरक्षित हो, या स्वशासन रहित हो, या परिमित प्रभुसत्ता वाला हो, उस देश या प्रदेश की राजनैतिक क्षेत्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के आधार पर वहां के निवासियों के प्रति कोई फर्क न रखा जाएगा।

अनुच्छेद 3,

- प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद 4,

- कोई भी मानव गुलामी या दासता की हालत में न रखा जाएगा, गुलामी–प्रथा और गुलामों का व्यापार अपने सभी रूपों में निषिद्ध होगा।

अनुच्छेद 5,

- किसी को भी शारीरिक यातना न दी जाएगी और न किसी के भी प्रति निर्दय, अमानुषिक या अपमानजनक व्यबहार होगा। न कोई ऐसा दंड दिया जायेगा।

अनुच्छेद 6,

- हर किसी को अधिकार होगा कि वह सर्वत्र कानून के अधिक माना जायेगा।

अनुच्छेद 7,

- कानून की निगाह में सभी समान हैं और सभी बिना भेदभाव के समान कानूनी सुरक्षा के अधिकारी हैं। यदि इस घोषणा का अतिक्रमण करके कोई भी भेदभाव किया जाए या उस प्रकार के भेदभाव को किसी प्रकार से उकसाया जाए, तो उसके विरुद्ध समान संरक्षण का अधिकार सभी को प्राप्त है।

अनुच्छेद 8,

- सभी को संविधान या कानून द्वारा प्राप्त बुनियादी अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले कार्यों के विरुद्ध समुचित राष्ट्रीय अदालतों की कारगर सहायता पाने का हक है।

अनुच्छेद 9,

- किसी को भी मनमाने ढंग से गिरफ्तार, नजरबंद, या देश–निष्कसित न किया जाएगा।

अनुच्छेद 10,

- सभी को पूर्णतः समान रूप से हक है कि उनके अधिकारों और कर्तव्यों के निश्चय करने के मामले में और उन पर आरोपित फौजदारी के किसी मामले में उनकी सुनवाई न्यायोचित और सार्वजनिक रूप से निरपेक्ष एवं निष्पक्ष अदालत द्वारा हो।

अनुच्छेद 11,

- प्रत्येक व्यक्ति, जिस पर दंडनीय अपराध का आरोप किया गया हो, तब तक निरपराध माना जाएगा, जब तक उसे ऐसी खुली अदालत में, जहां उसे अपनी सफाई की सभी आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हों, कानून के अनुसार अपराधी न सिद्ध कर दिया जाए।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

- कोई भी व्यक्ति किसी भी ऐसे कृत या अकृत (अपराध) के कारण उस दंडनीय अपराध का अपराधी न माना जाएगा, जिसे तत्कालीन प्रचलित राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार दंडनीय अपराध न माना जाए और न उससे अधिक भारी दंड दिया जा सकेगा, जो उस समय दिया जाता जिस समय वह दंडनीय अपराध किया गया था।

अनुच्छेद 12,

- किसी व्यक्ति की एकांतता, परिवार, घर, या पत्रव्यवहार के प्रति कोई मनमाना हस्तक्षेप न किया जाएगा, न किसी के सम्मान और ख्याति पर कोई आक्षेप हो सकेगा। ऐसे हस्तक्षेप या आक्षेपों के विरुद्ध प्रत्येक को कनूनी रक्षा का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद 13,

- प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक देश की सीमाओं के अंदर स्वतंत्रतापूर्वक आने, जाने और बसने का अधिकार है।
- प्रत्येक व्यक्ति को अपने या पराए किसी भी देश को छोड़ने और अपने देश वापस आने का अधिकार है।

अनुच्छेद 14,

- प्रत्येक व्यक्ति को सताए जाने पर दूसरे देशों में शरण लेने और रहने का अधिकार है।
- इस अधिकार का लाभ ऐसे मामलों में नहीं मिलेगा जो वास्तव में गैर–राजनीतिक अपराधों से संबंधित हैं, या जो संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों और सिद्धांतों के विरुद्ध कार्य हैं।

अनुच्छेद 15

- प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राष्ट्र–विशेष को नागरिकता का अधिकार है।
- किसी को भी मनमाने ढंग से अपने राष्ट्र की नागरिकता से वंचित न किया जाएगा या नागरिकता का परिवर्तन करने से मना न किया जाएगा।

अनुच्छेद 16,

- व्यस्क स्त्री–पुरुषों को बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म की रुकावटों के आपस में विवाह करने और परिवार स्थापन करने का अधिकार है। उन्हें विवाह के विषय में वैवाहिक जीवन में, तथा विवाह विच्छेद के बारे में समान अधिकार है।
- विवाह का इरादा रखने वाले स्त्री–पुरुषों की पूर्ण और स्वतंत्र सहमति पर ही विवाह हो सकेगा।
- परिवार समाज का स्वाभाविक और बुनियादी सामूहिक इकाई है और उसे समाज तथा राज्य द्वारा संरक्षण पाने का अधिकार है।

अनुच्छेद 17,

- प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरों के साथ मिलकर संपत्ति रखने का अधिकार है।
- किसी को भी मनमाने ढंग से अपनी संपत्ति से वंचित न किया जाएगा।

अनुच्छेद 18,

- प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अंतरात्मा और धर्म की आजादी का अधिकार है। इस अधिकार के अंतर्गत अपना धर्म या विश्वास बदलने और अकेले या दूसरों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप में अथवा निजी तर पर अपने धर्म या विश्वास को शिक्षा, क्रिया, उपसाना, तथा व्यवहार के द्वारा प्रकट करने की स्वतंत्रता है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

अनुच्छेद 19,

- प्रत्येक व्यक्ति को विचार और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। इसके अंतर्गत बिना हस्तक्षेप के कोई राय रखना और किसी भी माध्यम के जरिए से तथा सीमाओं की परवाह न करके किसी की सूचना और धारणा का अन्वेषण, ग्रहण तथा प्रदान सम्मिलित है।

अनुच्छेद 20,

- प्रत्येक व्यक्ति को शांति पूर्ण सभा करने या बनाने की स्वतंत्रता का अधिकार है।
- किसी को भी किसी संस्था का सदस्य बनने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 21,

1. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के शासन में प्रत्यक्ष रूप से या स्वतंत्र रूप से चुने गए प्रतिनिधिओं के जरिए हिस्सा लेन का अधिकार है।
2. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकारी नौकरियों को प्राप्त करने का समान अधिकार है।
3. सरकार की सत्ता का आधार जनता की इच्छा होगी। इस इच्छा का प्रकटन समय–समय पर और असली चुनावों द्वारा होगा। ये चुनावों सार्वभौम और समान मताधिकार द्वारा होंगे और गुप्त मतदान द्वारा या किसी अन्य समान स्वतंत्र मतदान पद्धति से कराए जाएंगे।

अनुच्छेद 22,

- समाज के एक सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के उस स्वतंत्र विकास तथा गौरव के लिए–जो राष्ट्रीय प्रयत्न या अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के संगठन एवं साधनों के अनुकूल हो– अनिवार्यतः आवश्यक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति का हक है।

अनुच्छेद 23,

1. प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, इच्छानुसार रोजगार के चुनाव, काम की उचित और सुविधाजनक परिस्थितियों को प्राप्त करने और बेकारी से संरक्षण पाने का हक है।

2. प्रत्येक व्यक्ति को समान कार्य के लिए बिना किसी भेदभाव के समान पारिश्रामिक पाने का अधिकार है।
3. प्रत्येक व्यक्ति को जो काम करता है, अधिकार है कि वह इतना उचित और अनुकूल पारिश्रामिक पाए, जिससे वह अपने लिए और अपने परिवार के लिए ऐसी आजीविका का प्रबंध कर सके, जो मानवीय गौरव के योग्य हो तथा आवश्यकता होने पर उसकी पूर्ति अन्य प्रकार के सामाजिक संरक्षणों द्वारा हो सके।
4. प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों की रक्षा के लिए श्रमजीवी संघ बनाने और उनमें भाग लेने का अधिकार है।

अनुच्छेद 24,

- प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है। इसके अंतर्गत काम के घंटों की उचित निर्धारण और समय–समय पर निर्धारित और अवधि अनुसार छुट्टियां पाने का अधिकार सम्मिलित है।

अनुच्छेद 25,

1. प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवनस्तर को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसे और उसके परिवार के स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए पर्याप्त हो। इसके अंतर्गत खाना, कपड़ा, मकान, चिकित्सा–संबंधी सुविधाएं और आवश्यक सामाजिक सेवाएं सम्मिलित है। सभी को बेकारी, बीमारी, असमर्थता, वैधव्य, बुढ़ापे या अन्य किसी ऐसी परिस्थिति में आजीविका का साधन न होने पर जो उसके हालत काबू के बाहर हो, सुरक्षा

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है।

2. जच्चा और बच्चा को खास सहायता और सुविधा का हक है। प्रत्येक बच्चे को चाहे वह विवाहिता माता से जन्मा हो या अविवाहिता से, समान सामाजिक संरक्षण का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद 26,

1. प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारंभिक और बुनियादी अवस्थाओं में निःशुल्क होगी। प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य होगी। टेक्निकल, यांत्रिक और पेशों–संबंधी शिक्षा साधारण रूप से प्राप्त होगी और उच्चतर शिक्षा सभी को योग्यता के आधार पर समान रूप से उपलब्ध होगी।

2. शिक्षा का उद्देश्य होगा मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव अधिकारों तथा बुनियादी स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान देना है। शिक्षा द्वारा राष्ट्रों, जातियों, अथवा धार्मिक समूहों के बीच आपसी सद्भावना, सहिष्णुता और मैत्री का विकास होगा और शांति बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्रों के प्रयत्नों को आगे बढ़ाया जाएगा।

3. माता–पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वह चुनाव कर सकें कि किस प्रकार की शिक्षा उनके बच्चों को दी जाएगी।

अनुच्छेद 27,

1. प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता–पूर्वक समाज के सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने, कलाओं का आनंद लेने, तथा वैज्ञानिक उन्नति और उसकी सुविधाओं में भाग लेने का हक है।

2. प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक साहित्यिक या कलात्मक कृति से उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितों की रक्षा का अधिकार है जिसका रचयिता वह स्वयं है।

अनुच्छेद 28,

- प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की प्राप्ति का अधिकार है जिसमें उस घोषणा में उल्लिखित अधिकारों और स्वतंत्रताओं का पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

अनुच्छेद 29,

1. प्रत्येक व्यक्ति का उसी समाज के प्रति कर्तव्य है जिसमें रहकर उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र और पूर्ण विकास संभव हो।

2. अपने अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपयोग करते हुए प्रत्येक व्यक्ति केवल ऐसी ही सीमाओं द्वारा बंध होगा, जो कानून द्वारा निश्चित की जाएंगी और जिनका एकमात्र उद्देश्य दूसरों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं के लिए आदर और समुचित स्वीकृति की प्राप्ति होगा तथा जिनकी आवश्यकता एक प्रजातंत्रात्मक समाज में नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और समान्य कल्याण की उचित आवश्यकताओं को पूरा करना होगा।

3. इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपयोग किसी प्रकार से भी संयुक्त राष्ट्रों के सिद्धांतों और उद्देश्यों के विरुद्ध नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30,

- इस घोषणा में उल्लिखित किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए जिससे प्रतीत हो कि किसी भी राज्य, समूह या ब्यक्ति को किसी ऐसे प्रयत्न में संलग्न होने या ऐसा कार्य करने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहां बताए गए अधिकारों और स्वतंत्रताओं में से किसी का भी विनाश करना हो।

मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा की चुनौती – मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा एक आधार और महत्वपूर्ण प्रयास था विश्व स्तर पर मानवीय संवेदनाओं को जागने का सकरात्मक प्रयास था। इसकी सबसे बड़ी चुनौती यह है कि यह कोई कानूनी लेखपत्र तो नही है न ही इसे वैधानिक ताकत प्राप्त है।

यह मानवीय अधिकारों की व्याख्या तो कर देता है परन्तु इन्हें कार्यान्वित करने के लिए कोई विशेष साधन

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

या व्यवस्था का प्रावधान नही है। इसके साथ ही यह वैश्विक स्तर पर कोई सन्धि या उत्तरदायित्व की व्यवस्था करता है यह मात्र एक मौलिक सिद्धांतों का घोषणापत्र मात्र है, जिसपर सदस्यों ने औपचारिक रूप से मतदान किया है। अतः अभी भी वैश्विक स्तर पर सभी के मानवाधिकार की रक्षा हो यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा का महत्व – मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा से विश्व के सभी देशों को मानवाधिकार के संदर्भ में प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। विश्व के लगभग सभी देश मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा के बाद से वैश्विक रूप से मानवाधिकारों को समझ सके और एकमत राय से मानव के अधिकारों को अपने संविधान या अधिनियमों के द्वारा मान्यता देने और क्रियान्वित करने के लिए प्रयत्नशील हुए हुए। सभी देशों ने अनपे अपने देश के संविधान और कानूनों में अधिकार का दर्जा दिलाने का प्रयास किया।

1.6 सारांश

10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकृत और घोषित किया गया। यह सामान्य सभा घोषित करती है कि मानव अधिकारों की यह सार्वभौम घोषणा सभी देशों और सभी लोगों के अधिकारों की रक्षा का प्रयास है। जो मानवाधिकार की प्राप्ति की सफलता के प्रति एक आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करती है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक देश, समाज और व्यक्ति के हितों , अधिकारों और आजादियों के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत हो। इसमें 30 अनुच्छेद है जिनमें ऐसे राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय उपाय और दिशा निर्देश है जिनसे सदस्य देशों की जनता तथा उनके द्वारा अधिकृत प्रदेशों की जनता इन अधिकारों की सार्वभौम स्वीकृति दे और उनका पालन कराएं। प्रत्येक वर्ष 10 दिसम्बर को अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस मनाया जाता है।

1.7 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न?

- मानवाधिकार क्या है?
- अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा का महत्व आप क्या समझते है?
- अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा की आवश्यकता के बारे में वर्णन कीजिए।

विस्तृत उत्तरीय

- अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा के बारे में लिखिए।
- अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा के समक्ष कौन–कौन सी चुनौतियां है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

अ. संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकृत और घोषित किया।

क. 10 दिसम्बर 1948 ख. 10 दिसम्बर 1940

ग. 12 दिसम्बर 1948 घ. 12 दिसम्बर 1940

ब. प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरों के साथ मिलकर संपत्ति रखने का अधिकार है और किसी को भी मनमाने ढंग से अपनी संपत्ति से वंचित न किया जाएगा यह बात किस अनुच्छेद में कही गयी है।

क. अनुच्छेद 17, ख. अनुच्छेद 18,

ग. अनुच्छेद 19, घ. अनुच्छेद 30,

स. अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस कब मनाया जाता है ?

क. 10 दिसम्बर ख. 12 दिसम्बर

ग. 20 दिसम्बर घ. 30 दिसम्बर

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1.8 संदर्भ ग्रन्थ और उपयोगी पुस्तक

- https://www.fundsforngos.org/featured-articles/worlds-top-ten-human-rights-organisations/
- https://hi.wikipedia.org/wiki/
- http://www.ramasangathan.com/@archives/apne.html
- http://www.rachanakar.org/2009/07/blog-post_980.html
- http://www.humanrights.com/voices-for-human-rights/human-rights-organizations/non-governmental.html
- http://peprimer.com/human-rights-ngo.html
- https://www.hrw.org/about
- http://www.humanrights.com/voices-for-human-rights/human-rights-organizations/non-governmental.htmlekuokf/kdkj laxBuksa
- फड़िया, डॉ0 कुलदीप, प्रेस कानून और पत्रकारिता, प्रतियागिता साहित्य सीरीज, आगरा (2015)।
- गौतम रमेश प्रसाद और सिंह पृथ्वीपाल सिंह, भारत में मानव अधिकार (उल्लंघन, संरक्षण, क्रियान्वयन एवं उपचार)विश्वविद्यालय प्रकाशन,सागर म0प्र0 (2001)।
- धर्माधिकारी देवदत्त माधव, मानव अधिकार क्यों और कैसे ?साहित्य संगम, इलाहाबाद (2010)
- कौशिक, पीताम्बर दत्त, कल्याणी पब्लिशर्स, नोएडा।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई 2 : अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदायें, नागारिक और राजनीतिक अधिकार

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय

2.3 मानव अधिकार उपकरण

2.4 मानव अधिकार परिषद् के कार्य

2.5 मानव एवं लोक अधिकार पर अफ्रीकन चार्टर

2.6 मानवाधिकार एवं शांति की ओर संक्रमण

2.7 अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायाधिकरण

2.8 सारांश

2.9 बोध प्रश्न

2.10 संदर्भ सूची

2.0 उद्देश्य

- इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों के बारे जान सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायाधिकरण के में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

नागरिक एवं राजनीतिक संबंधी अभिसमय संयुक्त राष्ट्र की संधि है जो मानव अधिकार के सार्वजनिक घोषणा–पत्र है। यह सदस्य राष्ट्रों की शिकायतो से रिपोर्ट को प्रस्तुत करती है। नागरिक एक राजनीतिक अधिकारो की संधि व्यक्तियों आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार हेतु काम करने के लिए सदस्य राष्ट्रों से करती हैं। इसमे महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे एवं मुद्दों पर स्वतंत्र समिति के विशेषज्ञ निर्णाय लेते है।

2.2 नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय (I.C.C.P.R.)

नागरिक एवं राजनीतिक संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एक संयुक्त राष्ट्र की संधि है जो मानवाधिकार संबंधी सार्वजनिक घोषणापत्र पर आधारित है। इसकी रचना 1966 में की गई तथा प्रवर्तन में 23 मार्च 1976 को आयी। इस पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र इसे मानने के लिए बाध्य हैं। आई. सी. सी. पी. आर. का संचालन एक कमेटी करती है और अब यह मानव अधिकार परिषद के अधीन आ गई है। यह ट्रीटी से संबंधित सदस्य राष्ट्रों की शिकायतों से संबंधित रिर्पोट प्रस्तुत करती है। मानव अधिकार कमेटि के सदस्यों की नियुक्ति सदस्य देश करते हैं लेकिन वे किसी राज्य के प्रतिनिधि नहीं होते। अभिसमय में दो वैकल्पिक प्रोटोकाल हैं। पहले प्रोटोकाल के अंतर्गत व्यक्तिगत शिकायत प्रणाली का वर्णन है जिसके अंतर्गत सदस्य राष्ट्रों की व्यक्तिगत शिकायत दर्ज किए जाते हैं जो कम्युनिकेशन्स के नाम से जाना जाता है और इसकी समीक्षा मानव अधिकार कमिटि करती है। दूसरा प्रोटोकाल मृत्यु दंड को समाप्त करने से है, लेकिन देशों को युद्ध के समय सैन्य प्रवृति वाले गंभीर अपराध में मृत्यु दंड अपनाने की अनुमति है। आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संबंध संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय (The International Covenant on Economic Cultural and Social Relations) बहुउद्देशीय आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एक बहुउदेशीय संधि है जिसे संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 16 दिसंबर 1966 को स्वीकार किया तथा 3 जनवरी 1976 से यह प्रवर्तन में आयी। यह संधि व्यक्तियों के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार दिलाने हेतु काम करने के लिए सदस्य राष्ट्रों से अनुबंध करती है। यह

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

मानवाधिकार की दूसरी पीढ़ी के रूप में लायी गई।

2.3 मानव अधिकार उपकरण (Human Rights Instruments)

- संपूर्ण प्रजाति की हत्या के अपराध से बचाव एवं दंड पर सम्मेलन (1948 में स्वीकृत, 1951 में प्रवर्तित)
- प्रजातीय भेदभाव के समस्त रूपों का उन्मूलन पर सम्मेलन (सी.ई.आर.डी) (1966 में स्वीकृत तथा 1969 में प्रवर्तित)
- महिलाओं के प्रति भेदभाव के सभी रूपों का उन्मूलन पर सम्मेलन (सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू) (1931 में प्रवर्तित)
- यातना के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (सी.ए.टी.) (1984 में स्वीकृत, 1934 में लागू)
- बच्चों के अधिकारों पर सम्मेलन (सी.आर.सी.) (1989 में स्वीकृत, 1989 में लागू) सभी विस्थापित कामगार एवं उसके परिवार के सदस्यों के अधिकारों की सुरक्षा पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (आई. सी. आर. एम. डब्ल्यू) (1990 में स्वीकृत) अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायालय की रोम संविधि (आई.सी.सी.) (2002 में लागू)

मानवाधिकार समिति (Human Rights Committee)

1993 में हुए मानवाधिकार संबंधी विश्व सम्मेलन में वियना घोषणापत्र एवं कार्य योजना को स्वीकार किया। मानवाधिकार के संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त के नेतृत्व में मानवाधिकार के मामले के अध्ययन तथा अवलोकन करने हेतु संयुक्त राष्ट्र ने ट्रीटी आधारित इकाई की स्थापना की। यह इकाई स्वतंत्र विशेषज्ञों की समिति है जो महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संधि के अनुपालन का अवलोकन करती है। अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार तंत्र दो बड़े समूहों को समाहित करती है – अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार संधियां (संधि इकाई) एवं मानवाधिकार पर संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार परिषद द्वारा स्थापित प्रावधान (विशेष प्रक्रिया) ये विशेष देशों में (भौगोलिक मैन्डेट) या थीमेटिक मामले (थीमेटिक मैन्डेट) में मानव अधिकारों के मामले को संबोधित करते हैं। मानवाधिकार समिति (एच. आर. सी) नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय (1966) एवं इसके वैकलिपक प्रोटोकाल के प्रभावशाली अनुपालन का अवलोकन करता है। निम्नलिखित कुछ मुख्य मानवाधिकार समितियां हैं जो मानवाधिकार के मामले का वर्णन करते हैं। मानवाधिकार समिति (1976 में स्थापित) आई.सी.सी.पी. आर. के अनुरूप प्रभावी भूमिका निभाती है। इस समिति में 18 सदस्य हैं। यह उन देशों, जो इस संधि को स्वीकारती हैं, के खिलाफ शिकायतों पर सदस्य राष्ट्रों की सलाहों के आधार पर निर्णय करती है। इसका फैसला कानूनी रूप से बाध्य नहीं है। आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक अधिकार समिति हस्ताक्षरित देशों की भूमिका पर आई.सी.ई.एस.सी. आर. का अवलोकन करती है और उस पर सामान्य विश्लेषण प्रस्तुत करती हैं। इसे शिकायत प्राप्त करने का अधिकार नहीं है।

प्रजाति भेदभाव उन्मूलन समिति (सी.ई.आर.डी.) प्रजातीय भेदभाव का अवलोकन करती है और विभिन्न देशों की भूमिका की निरंतर समीक्षा करती है। यह शिकायतों पर फैसला सुनाती है लेकिन कानूनी तौर पर बाध्य नहीं है। यह कन्वेंशन के गैरकानूनी बचाव के प्रयास की चेतावनी जारी करता है। महिलाओं के प्रति भेदभाव उन्मूलन समिति (सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू.) महिलाओं के प्रति भेदभाव का अवलोकन करती है। यह राज्यों की भूमिका तथा उनके सुझाव वाली रिपोर्ट को स्वीकार करती है और 1999 के वैकल्पिक प्रोटोकाल के अंतर्गत देशों के विरूद्ध प्राप्त शिकायत पर फैसला भी करती है। यातना के विरूद्ध समिति (सी. ए. टी.) यातनाओं का अवलोकन करती है और प्रत्येक चार वर्ष पर राज्यों द्वारा अधिकारों के गलत इस्तेमाल पर रिपोर्ट प्रस्तुत करती है तथा उस पर सुझाव भी देती हैं। यह अपनी इच्छानुसार देशों का भ्रमण और मामले की जांच कर सकती है।

बच्चों के अधिकार पर समिति (सी.आर.सी.) बाल अधिकार से संबंधित मामलों का अवलोकन करती हैं और प्रत्येक पांच वर्षों पर राज्यों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर सुझाव पेश करती है। इसे शिकायत स्वीकार करने की शकित नहीं है। विस्थापित मजदूरों पर समिति की स्थापना वर्ष 2004 में हुई और यह (आइ.सी. आर. एम. डब्ल्यू.) मजदूरों से संबंधित मामलों एवं समस्याओं की देख–रेख करती है। साथ ही राज्यों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर हरेक पांच वर्ष पर सुझाव पेश करती है। संधि से जुड़ी हुई प्रत्येक संस्था मानवाधिकार उच्चायुक्त के कार्यालय की संधियों एवं कमीशन शाखा द्वारा सचिवालय स्तर पर समर्थन प्राप्त करती है। सी. इ. डी. ए. डब्ल्यू. अपनी मीटिंग न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र के मुख्यालय में आयोजित करता है जबकि अन्य संधि से जुड़ी संस्थाएं सामान्यतः जेनेवा में संयुक्त

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

राष्ट्र कार्यालय में अपनी मीटिंग को आयोजित करती है। मानवाधिकार समिति प्रायरू अपनी मीटिंग न्यूयार्क शहर में मार्च सत्र में आयोजित करती है।

इनके अलावा, हाल में दो नए अभिसमय प्रस्तुत किए गए हैं। पहला है अशक्त व्यकितयों के अधिकार संबंधी कन्वेशन और इनके वैकलिपक प्रोटोकाल जो हस्ताक्षर के लिए 30 मार्च 2007 से खुला पड़ा है। 81 देश और यूरोपीयन परिषद ने इस कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए और 42 देशों ने वैकल्पिक प्रोटोकाल पर हस्ताक्षर किए। दूसरा है बलात विलुप्तप्राय समस्त व्यक्तियों के सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन। यह जेनेवा सभा द्वारा 20 दिसंबर 2006 को स्वीकृत हुआ।

2.3.1 संधि संस्थाओं के प्रति राज्यों के दायित्व (State's Obligation to treaty bodies)

यदि कोई राज्य अन्तर्राष्ट्रीय संधि को स्वेच्छा से लागू करना चाहता है तो उसे राष्ट्रीय स्तर पर संधि के प्रावधानों को लागू करने हेतु अपना अनुबंध बनाए रखना होगा। उसे संधि के अनुसार प्रावधानों के अंतर्गत अधिकारों को सुनिश्चित करने वाली रिपोर्ट संधि संस्था को समय–समय पर देना होगा। राज्यों की ऐसी रिपोर्ट का संधि संस्था परीक्षण करेगी। इसके लिए वो विभिन्न स्रोतों से सूचनाएं प्राप्त करेगी, जैसे संयुक्त राष्ट्र एजेंसी, राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाएं, नागरिक समाज तथा संबंधित राज्य में कार्यरत दल आदि। रिपोर्ट के परीक्षण के दौरान संबंधित राज्य से बातचीत होगी और परीक्षण समाप्त करने पर परिणाम या सुझाव को स्वीकारा जाएगा, जिसके अंतर्गत संधि संस्था राज्यों को भविष्य के लिए कुछ विशेष सुझाव देगी जिसमें वह संयुक्त राष्ट्र एजेंसी या अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों या जो उपयुक्त हों उनसे मदद ले सकती है। राज्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वे संधि संस्था के सुझावों को लागू करने की प्रक्रिया खुद तय करेंगे और इसकी रिपोर्ट वह समय–समय पर संधि संस्था को देंगे।

2.3.2 मानव परिषद अधिकार (Human Rights Council)

15 मार्च 2006 को महासभा ने एक नयी संस्था के रूप में मानव अधिकार परिषद की स्थापना की। यह मानवाधिकार आयोग के विकल्प के रूप में उच्च स्तरीय परिषद है जो मानवाधिकार की वर्तमान महत्ता तथा केन्द्रीयता के बारे में संयुक्त राष्ट्रर को बताता है।

2.4 मानव अधिकार परिषद के कार्य (Functions of the Human Rights Council)

मानव अधिकार परिषद मानवाधिकार पर बहस, सहयोग और सम्मेलन हेतु संयुक्त राष्ट्र की प्रमुख संस्था की तरह काम करती है। यह सदस्य राष्ट्रों को बातचीत, क्षमता निर्माण तथा तकनीकी सहायता द्वारा मानवाधिकार के अनुपालन हेतु सलाह देती है। यह परिषद मानवाधिकार के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास हेतु महासभा की सिफारिशों को तैयार करती है।

इसके सदस्यों की संख्या 42 है जो महासभा द्वारा पूर्ण बहुमत द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। परिषद की बैठक एक वर्ष में कम से कम तीन बार न्यूनतम 10 सप्ताह के लिए होती है। यह आपात स्थिति का सामना सामूहिक तौर पर करती है और विशेष सत्र बुला सकती है। परिषद की एक नयी भूमिका यह है कि वह मानवाधिकार की इच्छापूर्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र के प्रत्येक सदस्य राष्ट्रों के लिए सार्वजनिक आवधिक समीक्षा कर सकती है। इस परिषद की पहली बैठक दो सप्ताह के लिए 19–30 जून 2006 को हुई।

2.4.1 विशेष प्रक्रिया (Special Procedures)

मानवाधिकार परिषद द्वारा एक उपकरण को श्विशेष प्रक्रिया का नाम दिया गया जो या तो देश की कुछ विशेष स्थिति या थीमेटिक मामलों को देखती है। परिषद के लिए विशेष प्रक्रिया का अर्थ है वर्ष भर किसी खास विषय में संलग्न रहना। ये किसी भी रूप में अपनायी जा सकती है। विशेष प्रक्रिया की संस्था सामान्यतः या तो एक व्यकित जो विशेष अन्वेषक कहलाते हैं या कोई प्रतिनिधि या एक स्वतंत्र विशेषज्ञ या व्यकितयों के एक समूह जो कार्य समूह कहलाते हैं, के रूप में हो सकती है। विशेष प्रक्रिया के अंतर्गत संबद्ध व्यकित एवं समूह किसी खास देश में या प्रमुख मानवाधिकार भावना और विश्वस्तरीय घटनाक्रम की स्थिति में जांच, संचालन, सलाह और सार्वजनिक रिपोर्ट हेतु मैन्डेट (मानवाधिकार परिषद के प्रस्ताव द्वारा) तैयार करने का कार्य करते हैं

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

मानवाधिकार सुरक्षा हेतु क्षेत्रीय व्यवस्था (Regional System for the Protection of Human Rights)

मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए कुछ क्षेत्रीय व्यवस्थाएं लागू की गई जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

मानवाधिकार सुरक्षा हेतु यूरोपीय व्यवस्था (The European System for the Protection of Human Rights)

मानवाधिकार सुरक्षा हेतु यूरोपीय व्यवस्था (इसे 30 देशों ने स्वीकृत किया) और मौलिक स्वतंत्रता (कन्वेंशन) की प्रगति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण में प्रवेश करने के कारण यह परिषद् की सबसे महत्वपूर्ण सफलता है। कन्वेशन के नियंत्रण तंत्र इसके उल्लेखनीय सुधार का नवीनतम साक्षय है। इसने प्रोटोकाल संख्या 9 को अपनाया जो न्यायालय के सामने व्यक्तिगत कार्यों के अधिकार की स्थापना करता है तथा प्रोटोकाल संख्या 11 जिसके अंतर्गत यूरोपीय कमीशन तथा मानवाधिकार कोर्ट आपस में मिलकर एकमात्र न्यायिक अधिकरण में परिणत हो गया। यह हस्ताक्षर के लिए 4 नवंबर 1950 को पेश हुआ और अस्तित्व में 3दिसम्बर 1955 को आया। इसके बाद से ही अन्य प्रोटोकाल को भी इसमें शामिल किया गया है, जिसें चार व्यक्तियों के अधिकार एवं स्वतंत्रता से संबंधित है।

मानवाधिकार संबंधी अंतर अमेरिकी आयोग (Inter & American Commission on Human Rights)

मानवाधिकार पर अंतर अमेरिकी आयोग अमेरिकी राज्य संगठन (ओ.ए.एस.) के स्वायत्त अंग के रूप मे काम करता है। अमेरिकी राज्य संगठन अंतर अमेरिकी मानवाधिकार कोर्ट के साथ–साथ गानंतर अमरिकी पदति दवारा मानवाधिकार के संरक्षण तथा प्रोत्साहन का काम करता है। पाई थागी इकाई है, इसका मुख्यालय वाशिंगटन की. मी. (संयुक्त राज्य) में है। यह संबद्ध क्षेत्र में मानवाधिकार के हनन के आप की जांच हेतु वर्ष में कई बार नियमित मग विशेष रूप से बैठक आयोजित करती है।

अंतर अमेरिकी आयोग संगठन (Composition of the Inter&American Commission)

अंतर अमेरिकी मानवाधिकार आयोग के पदस्थापन अधिकारियों में सात आयुक्त होते हैं। अयुक्त चार वर्ष के कार्यकाल के लिए अमेरिकी राज्य संगठन की महासभा द्वारा निर्वाचित होते हैं। वे एक बार पुनः निर्वाचित हो सकते हैं मगर उनका कार्यकाल आठ वर्ष से अधिक नहीं हो सकता है। में कार्यालय में अपने व्यक्तिगत क्षमता के आधार पर काम करते हैं। वे अपने किसी मूल देश के प्रतिनिधित्व नहीं करते (कन्वेशन की धारा 43)। कन्वेंशन की धारा 42 के अनुसार उन्हें उच्च आदर्श वाले व्यक्ति अवश्य ही होने चाहिए जिन्हें मानवाधिकार के क्षेत्र में अच्छी जानकारी हो। एक ही राज्य से दो आयुक्त नहीं बन सकते (धारा 37) और आयुक्त को उनके गृह राज्य से संबंधित मामलों पर बहस में भाग लेने पर रोक है।

2.5 मानव एवं लोक अधिकार पर अफ्रीकन चार्टर (African Charter on Human and People's Rights)

मानव एवं व्यक्ति के अधिकारों पर अफ्रीकन चार्टर (बांजुल चार्टर के नाम से भी जाना जाता है) एक अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार प्रणाली है जो अफ्रीकी महादेश में मानव अधिकार एवं मौलिक स्वतंत्रता को संरक्षण तथा प्रोत्साहन देता है। अफ्रीकन यूनिटी के संगठन (बाद में यह अफ्रीकन यूनियन हो गया) की छत्रछाया में यह प्रवर्तन में आया। यूरोप (Europeon Convention of Human Rights) तथा अमेरिका (American Convention of Human Righta) के समान ही अफ्रीकी राज्य एवं सरकारों के प्रमुखों ने 1979 में पूरे महादेश के मानवाधिकार उपकरण के रूप में एक विशेषज्ञ समिति के गठन हेतु इस प्रारूप के प्रस्ताव को सहमति दी। इस समिति ने एक ड्राफ्ट प्रस्तुत किया जिसे बिना किसी हिचकिचाहट के ओ.ए.यू. सभा ने 1981 में स्वीकृत कर लिया। मानव एवं व्यकित के अधिकार पर अफ्रीकन चार्टर 21 अक्टूबर 1986 से प्रभावी हो गया, जिसके सम्मान में 21 अक्टूबर को अफ्रीकी मानव अधिकार दिवस घोषित किया गया। मानव एवं व्यकित के अधिकार पर अफ्रीकन चार्टर के प्रबंध तथा अनुपालन का दायित्व अफ्रीकन आयोग को दिया गया है। इसे 1987 में स्थापित किया गया और अब इसका मुख्यालय (जैम्बिया) में है। इसके बाद 1989 के अंतर्गत चार्टर के एक प्रोटोकाल को स्वीकार किया गया। इसके बाद मानव एवं व्यक्ति के अधिकारों पर अफ्रीकन न्यायालय (ए.सी. एच.पी.) का गठन किया गया। यह प्रोटोकाल 25 जनवरी 2005 से अस्तित्व में आया। जुलाई 2004 में अफ्रीकन यूनियन एसेंबली ने ए. सी. एच.पी. को अफ्रीकन कोर्ट आफ जस्टिस के साथ एकीकरण करने का निर्णय लिया। जुलाई 2005 में अफ्रीकन यूनियन एसेंबली ने निर्णय लिया कि अब ए. सी. एच.पी. को काम शुरू कर देना चाहिए। इसके बाद 22 जनवरी 2006 को खारतूम

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

(सूडान) में अफ्रीकन यूनियन की कार्यकारी परिषद के 8वें साधारण सत्र में अफ्रीकन कोर्ट आफ हयूमन एंड पीपुल्स राइटस के जजों की की नियुक्ति की गई। मानव अधिकार के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र तथा उससे संबद्ध विशेष संगठनों की भूमिका (The role of United Nations and its affiliated Organizations in the field of human rights)

मानव अधिकार समिति ने 56 देशों से संबंधित रिपोर्टों का अध्ययन किया और 270 निर्णयों को प्रकाशित किया। विभिन्न समितियों के द्वारा दी गई राय तथा सिफारिशों को राष्ट्रों द्वारा मानना कानूनी रूप से बाध्य नहीं है जबकि वे अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। राष्ट्र प्रायः इन निर्णयों को मानते हैं और संवैधानिक परिवर्तन या नीति–निर्माण में इन सिफारिशों के आधार पर परिवर्तन लाते हैं। तीन मानव अधिकार समितियां व्यक्तिगत संबंध की अनुमति देते हैं। ये हैं मानवाधिकार समिति, यातना के विरुद्ध समिति तथा प्रजाति भेदभाव उन्मूलन समिति। ये कमेटियाँ राज्यों के नागरिकों द्वारा व्यक्तिगत शिकायत को स्वीकार करती हैं। दो विशेषीकृत एजेंसियों, यूनेस्को (संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन) तथा आई.एल.ओ. (अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन) अपने अधिकार क्षेत्र में पड़ने वाले भेदभाव के आरोपों को निपटाते हैं। 1967 में आर्थिक एवं सामाजिक परिषद ने प्रस्ताव 1235 को स्वीकार किया जिसके अंतर्गत मानवाधिकार आयोग एवं अल्पसंख्यकों के संरक्षण एवं भेदभाव से बचाव संबंधी उप आयोग मानवाधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रता के व्यापक हनन की सूचनाओं की जांच करता है। 1970 में परिषद ने प्रस्ताव संख्या 1503 लागू किया जिसके अंतर्गत व्यकितगत शिकायतों की जांच हेतु एक इकाई की स्थापना की गई जो अब सामान्यतः 1503 प्रक्रिया के नाम से जाना जाता है। सारी शिकायतों के पिटारों को एक गुप्त दस्तावेज के रूप में छोटा कर मानवाधिकार आयोग के पास समीक्षा के लिए भेजा जाता है। अगर नियमित पद्धति के आधार पर मानवाधिकार हनन के गंभीर मामले प्रकाश में आते हैं तो आयोग अपनी एक पद्धति श्विशेष प्रक्रिया के द्वारा स्थिति की जांच कर सकता है।

2.6 विशेष प्रक्रिया (Special Procedures)

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार कार्यक्रम एवं संधि यह संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत अतिरिक्त कन्वेंशनल मशीनरी की पद्धति है जो सामान्यतः मानवाधिकार पर आयोग की विशेष प्रक्रिया के रूप में चिलिचि हित होती है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में मानवाधिकार हनन से संबंधित निशिचत घटनाक्रम या थीमेटिक मेन्डेंट के संबंध में या निश्चित देशों में मानव अधिकार की स्थिति की जांच, मूल्यांकन एवं सार्वजनिक रिपोर्ट हेतु आयोग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की एक स्वतंत्र विशेषज्ञों को नियुक्त कर सकता है। ये विशेषज्ञ अपने व्यक्तिगत क्षमता के अनुसार कार्य करते हैं। अमूमन ये विशेष अन्वेषक, प्रतिनिधि, स्वतंत्र पर्यवेक्षक या कार्य समूह आदि के रूप में जाने जाते हैं।

विशेष पर्यवेक्षक सभी विश्वासी सूत्रों का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र हैं जो उनकी रिपोर्ट तैयार करने के लिए उपलब्ध होते हैं। उनका शोधकार्य क्षेत्रों में होता है जहां वे संबंधित अधिकारियों, गैर सरकारी संगठनों एवं मानवाधिकार हनन के शिकार से यथासंभव सबूत इकट्ठा करने के उद्देश्य से साक्षात्कार करते हैं। 1997 में कुछ तथ्यों का पता लगाने के लिए आयोग ने मानवाधिकार की स्थिति को देखने हेतु 14 देशों का भ्रमण किया। इसके अलावा इसने 5000 मामलों की जांच की तथा उनसे संबंधित रिपोर्ट सरकार को प्रेषित कर दिया। विशेष पर्यवेक्षक मानवाधिकार की स्थिति पर आयोग को वार्षिक रिपोर्ट सौंपते हैं तथा उसके कार्यान्वयन हेतु कुछ सुझाव भी देते हैं। उसके द्वारा प्राप्त किए गए तथ्य ट्रीटी इकाइयों के लिए उपयोग में लाए जाते हैं, विशेषतः राज्यों की रिपोर्ट के मूल्यांकन में। 1998 के मध्य में करीबन 20 या अधिक देशों ने मानवाधिकार स्थिति पर विशेष क्षेत्रों में मैन्डेट जारी किया। देश के पर्यवेक्षकों ने इन क्षेत्रों में मानवाधिकार जटिल स्थिति की जांच की, जहां पर बड़े पैमाने पर हनन के मामले मिले, सामान्यतः बड़े पैमाने पर हिंसा या टकराव जैसे कंबोडिया, रवांडा एवं पूर्व यूगोस्लाविया में। मानवाधिकार आयोग ने 1994 में एक विशेष पर्यवेक्षक की नियुक्ति रवांडा के मानवाधिकारों के हनन के मामले में की। समिति का उद्देश्य स्थिति के अनुसार सभी मानवाधिकार हनन एवं निर्दयतापूर्ण कृत्य के लिए मौलिक एवं उत्तरदायी कारण एवं मानवाधिकार को दबाना आदि की जांच करना था। 1997 में आयोग ने रवांडा में प्रभावशाली रूप से कार्य करने वाले एवं स्वतंत्र राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना में सहायता देने हेतु एक विशेष प्रतिनिधि की नियुकिल की। उसी समय महासभा ने महासचिव से आग्रह किया कि पूर्व युगोस्लाविया विशेषतः बोस्निया एवं हर्जेगोविना गणतंत्र में सैन्य विद्रोह के दौरान महिलाओं एवं बच्चों के साथ व्यवस्थित बलात्कार तथा उनके मौलिक मानवाधिकार के हनन की मामला की जांच करे 113 विशेषज्ञों ने थीमेटिक मैन्डेट को स्वीकार किया जिसने वैश्विक महत्ता के विशेष मानवाधिकार हजन के मामले में कार्य करना शुरू किया।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

उदाहरण जीने की अधिकार को सर्वोत्तम अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया और राज्यों द्वारा इसका हनन अन्तर्राष्ट्रीय विषय बन गया। प्रवर्तन एवं अनभिप्रेत संबंधी पर कार्यसमूह, जिसकी स्थापना 1980 में हुई, व्यक्तिगत शिकायतों को सुनने वाला पहला समूह था जो राष्ट्रों का भ्रमण कर सकता था। 1995 में कार्य समूह के एक विशेषज्ञ द्वारा पूर्व युगोस्लाविया में गायब लोगों की समस्याओं की जांच शुरू की। मई 1997 में दी गई अपनी अंतिम रिपोर्ट में विशेषज्ञ ने कहा कि बोसनिया एवं हर्जेगोविना से लगभग बीस हजार लोग आज तक लापता हैं जिसमें मुसिलम मूल वाले बोसिनया लोग अधिक यात्रा में थे जो बोसिनया सर्ब सैनिकों द्वारा 1992 से 1995 के बीच प्रजाति उन्मूलन कार्यक्रम के अंतर्गत प्रताड़ित किए गए थे। 1997 में विशेष पर्यवेक्षक ने रवांडा का भ्रमण किया तथा महिलाओं के खिलाफ हिंसा के मामले और उनके मानवाधिकारों के हनन की घटनाओं का किया। उसने कई जीवित बचे महिलाओ से भी किए।

2.6 मानवाधिकार एवं शांति की ओर संक्रमण अध्ययन साक्षात्कार (**Human Rights and the Transition to peace**)

1993 में मानवाधिकार संबंधी वैशिवक सम्मेलन ने एक तरफ अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा तथा दूसरी तरफ विधि के शासन एवं मानवाधिकार के बीच महत्वपूर्ण संबंध जोड़ने का प्रयास किया। इसने खूनी विद्रोह तथा मानव निर्मित तबाही में तेजी से वृद्धि को रोकने हेतु जरूरी उपबंधों को पुनरू लागू करने पर व्यापक बल दिया। टकराव तथा मानवीय संकट के मूल कारण मैं मानवाधिकारों के हनन की पहचान करने के बाद संयुक्त राष्ट्र ने पूर्व चेतावनी क्षमता को मजबूत करने का कदम उठाया। मानवाधिकार हनन के मामलों के आरोपों को निपटाने हेतु शांति कायम रखने की प्रक्रिया में मानवाधिकार के एकीकरण द्वारा इसकी योग्यता में वृद्धि करने का प्रयास किया गया है। मानवाधिकार उच्चायुक्त कार्यालय संयुक्त राष्ट्र के विभागों, कार्यालयों तथा कार्यक्रमों के साथ गहरा संपर्क बनाते हैं जो मानवीय सहायता तथा शांति बनाए रखने के लिए उत्तरदायी हैं। इन विभागों में प्रमुख हैं शांति बनाए रखने के अभियान का विभाग (डी.पी.के.ओ.), मानवीय मामले पर नियंत्रण का विभाग (ओ. सी. एच. ए.) एवं शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त कार्यालय (यू. एन. एच. सी. आर.) इत्यादि।

हाल के वर्षों में कई शांतिपूर्ण अभियान तथा अन्य राजनीतिक प्रयत्नों द्वारा मानवाधिकार के संघटकों का ध्यान रखा गया है, जैसे कम्बोडिया, अल सल्वाडोर, ग्वाटेमाला और हैती में मानवाधिकार के मामले को बनाए रखने हेतु शांति प्रक्रिया अपनायी गई। हैती में अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक अभियान 1993 के फरवरी से ही मानवाधिकार के सम्मान को बनाए रखने के लिए प्रयासरत है। अक्टूबर 1994 के दौरान मिशन ने अपने कार्यों का विस्तार करते हुए मानवाधिकार को प्रोत्साहन, नागरिक शिक्षा, चुनावी सहायता तथा संस्था निर्माण आदि के क्षेत्र में अपनी भूमिका निभानी शुरू की। इसने राष्ट्रीय सत्य एवं न्याय आयोग को समर्थन दिया और हैती के न्यायिक एवं पैनल पद्धति में मजबूती लाने में मदद की। मानवाधिकार आयोग अल सल्वाडोर एवं ग्वाटेमाला में सैन्य विद्रोह के बाद विश्वास एवं सदभावना के वातावरण को पुनः बनाने में तथा मानवाधिकार के क्षेत्र में उल्लेखनीय भूमिका निभायी। ग्वाटेमाला में सरकार तथा विपक्षी खेमा के बीच शांति समझौता के अंतिम रूप में आने से दो वर्ष पहले ही 1994 में मानवाधिकार जांच मिशन का गठन किया गया। संयुक्त राष्ट्र का यह जांच मिशन 13 क्षेत्रीय एवं उपक्षेत्रीय कार्यालय तथा 245 अन्तर्राष्ट्रीय स्टाफ के साथ जुडकर और बड़ा हो गया, मिनुगुआ की क्षेत्रीय उपस्थिति ग्वाटेमाला के अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं से अधिक व्यापक हो गया। हाल के वर्षों में मिशन ने यातना की शिकायतों, अपहरण करना तथा गैरकानूनी गिरफ्तारी के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता पाई।

मानवाधिकार उच्चायुक्त ने कई मानवाधिकार क्षेत्रीय अभियान स्थापित किए हैं, उदाहरणतः बुरुण्डी, रवांडा, पूर्व यूगोस्लाविया एवं कांगो गणतंत्र आदि में। प्रत्येक मामले में जहां भी मानवाधिकार उल्लंघन की शिकायत या घटना की रिपोर्ट आई, विद्रोहात्मक स्थिति के बाद वहां इनमें विश्वास का वातावरण तैयार करने हेतु तथा मानवाधिकार के सम्मान के लिए प्रयास किए गये। 1990 के दशक के दौरान संयुक्त राष्ट्र के लिए यह एक दुरूह विषय था।

पूर्व यूगोस्लाविया के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायाधिकरण

(International Criminal Tribunal for the Former Yugoslaviya)

यूगोस्लाविया गृहयुद्ध के दौरान मुसिलम, सर्ब, क्रोसियाई समुदायों के बीच प्रजातीय उन्मूलन की नीति के चलते व्यापक हिंसक कार्रवाई का सामना करने के बाद 1993 संयुक्त राष्ट्र प्रभावित लोगों की न्याय दिलाने हेतु

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण का गठन किया। मई 1993 में संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अध्याय टप्प के आधार पर सुरक्षा परिषद ने 1991 से पूर्व यूगोस्लाविया के भौगोलिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय मानवीय कानून अनुबंध के गंभीर हनन के लिए उत्तरदायी लोगों की दोषसिद्धि के लिए अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण की स्थापना की। न्यायाधिकरण मानवाधिकार के हनन के ऐसे मामलों में शीघ्रता एवं प्रभावी निष्पादन हेतु एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायालय के गठन का सुझाव दिया। रवांडा के लिए

2.7 अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायाधिकरण (International Criminal Tribunal for Ravanda)

रवांडा में गृहयुद्ध तथा आंतरिक विद्रोह ने बड़े पैमाने पर नरसंहार को बढ़ावा दिया। अप्रैल से जुलाई 1994 के बीच क्रांतिवादी हुतु मिलिसिया ने योजनागत ढंग से जनसंहार को अंजाम देते हुए 5 से 10 लाख लोगों की। इस जनसंहार में मुख्य पीडितों में तुत्सी अल्पसंख्यक तथा सुधारवादी हु के सदस्य थे। गृह युद्ध ने कई रवांडा नागरिकों को पड़ोसी देशों में पलायन के लिए मजबूर किया। जुलाई के मध्य में बीस लाख से अधिक रवांडाई शरणार्थी बुरुण्डी, तन्जानिया तथा जैरे के केम्पों में रहने को बाध्य हो गए। हजारों की संख्या में रवांडा के लोग रवांडा के क्षेत्रों से आंतरिक रूप से विस्थापित हो गए।

नवंबर 1994 में सुरक्षा परिषद ने रवांडा के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय मानवीय कानून अनुबंध के चलते नरसंहार तथा अन्य गंभीर उल्लंघन के लिए उत्तरदायी लोगों को सजा दिलाने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायाधिकरण की स्थापना की। न्यायाधिकरण ने रवांडाई नागरिकों को भी न्याय के कटघरे में खड़ा किया जो जनसंहार, मानवता के विरुद्ध अपराध तथा पड़ोसी देशों में 1 जनवरी 1994 से 31 दिसम्बर 1994 के बीच युद्ध अपराध के लिए उत्तरदायी थे। कम्बोडिया–अल सल्वाडोर, हैती, रवांडा और पूर्व यूगोस्लाविया में सफल होने के बाद संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार विशेषज्ञों ने कानून के प्रवर्तन के लिए मानवाधिकार मानक हेतु स्वतंत्र न्यायिक व्यवस्था, पुलिस प्रशिक्षण और सुरक्षा बल निर्माण में काफी मदद की। वे प्रेस स्वतंत्रता कानून, अल्पसंख्यक विधान तथा महिलाओं की समानता संबंधी कानून के लिए भी कुछ दिशा निर्देश प्रदान किए। अक्टूबर 2005 में आतंकवाद के खिलाफ वैशिवक युद्ध पर अमेरिका द्वारा मानवाधिकार के उल्लंघन के मामले के मिले सबूतों का मूल्यांकन करने हेतु संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति जेनेवा में कुछ गैर सरकारी संगठनों के साथ एक बैठक भी की।

2.8 सरांश (Conclusion)

जनतंत्रात्मक समाजों में मौलिक मानवाधिकार और स्वतंत्रता को कानूनी गारंटी के अंतर्गत रखा गया है। यह अधिकार दो रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है, एक नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार तथा दूसरा, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार, पहला अधिकार व्यक्तियों के अभिन्न स्वतंत्रता संबंधी अतिक्रमण से राज्यों के अधिकरण के खिलाफ अधिक प्रतिबंधात्मक प्रकृति का है, जबकि दूसरा अधिकार व्यक्तियों को पहले अधिकार को सही रूप से पालन करने स्थिति की राज्यों से मांग करता है। दोनों अधिकारों का उदेश्य समाज के मामलों में व्यकितयों की प्रभावशाली सहभागिता को बढ़ावा देना है। यधपि दोनों अधिकार व्यक्तियों के लिए उपलब्ध हैं, फिर भी न तो मानव व्यक्तित्व का समुचित विकास हो पाया है और न ही आदर्श जनतंत्र की स्थापना हो पायी है। 1945 से ही संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार इन दोनों समूहों के प्रोत्साहन तथा संरक्षण के लिए प्रयत्नशील है। अपने स्थापना के तीन वर्ष बाद महासभा द्वारा स्वीकृत मानवाधिकार एवं मानव गरिमा के संदर्भ में मानवाधिकार संबंधी सार्वजनिक घोषणापत्र इस दिशा में विश्व में स्वतंत्रता, न्याय तथा शांति का आधार स्तंभ है। मानवाधिकार के समस्त तंत्र मानवाधिकार की प्राथमिकता की गारंटी के विकास में वर्षो से लगा हुआ है तथा विश्व में जहां भी मानवाधिकार हनन की घटनाएं परिलक्षित होती है उनके निष्पादन का प्रयास करता है।

2.9 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मानव अधिकार परिषद् के कार्य वर्णन कीजिए
2. मानवाधिकार समिति पर टिप्पणी लिखिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मानव अधिकार में नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों का वर्णन कीजिए।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

2. अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायाधिकरण पर टिप्पणी लिखिये।

2.10 सन्दर्भ सूची

1- *Basu] D.D; Human Rights in Constitutional Law. Prentice Hall of India] New Delhi] 1994] p.34.*

2. *Jaytilak Guha Roy] "Human Rights Dimensions of Public Administration in India"] in Bidyut Chakrabarty and Mohit Bhattacharya (eds.) Public Administration:A reader] Oxford University Press] New Delhi. 2003. p.394.*

3. *P.D. Mathew] Law for the Protection of Human Rights in India] Legal Literacy Series No. 38. Indian Social Institute. New Delhi. 2006. p. 16.*

4. *N. Gopalaswamy] "National Human Rights Commission:A Profile"] in S. Mehartaj Begum.(ed.) Human Rights in India: Issues and Perspectives] APH Publishing Corporation] New Delhi] 2000.p.13.*

5. *Bidyut Chakrabarty and Rajendra Kumar Pandey] Indian Government and Politics] Sage] New Delhi] 2008. pp. 217&220.*

6. *D. R. Kaarthikeyan] Human Rights : Problems and Solutions] Gyan Publishing House] New Delhi] 2005] pp. 170&171.*

7. *V. S. Malimath] 'Report on the National Human Rights Commission of India' in Kamal Hossain et. al.(eds.½. Human Rights Commissions and Ombudsman Offices : National EÛperiences throughout the World] Kluwer Law International] The Hague] 2000] p. 215. H. Hohfeld*

8. *Anfeld] W.] Fundamental Legal Conceptions as Applied in Judicial Reasoning] Yale university Press] New Haven] 1923.*

9. *Kashyap] Subhash C.] Human Right and Parliament] Delhi : Metropolitan Book Co.] 1978. 10. bennett] A. Leroy] International Organizations: principles and Issues] Fourth Edition] New Jersey: Prentice Hall International Editions] 1988.*

11. *Guha Roy] Jayatilak] Human Rights for twenty first Century] New Delhi: IIPA] 2004. 12. Brogan]*

13. *Marshall] T.H.] Citizenship and Social Class] Cambridge university Press] Cambridge] 1950.*

14. *Turner] 15. Heater] Derek] Citizenship: The Civic ideal in Word History] Politics and Education] Orient Longman] London] 1990. B.S.] Citizenship and Capitalism] George Allen and Unwin] London] 1986.*

16. *Barbalet] J.M.] Citizenship] World view] New Delhi] 1997.*

17. *Hoffman] John and Graham] paul] Introduction to Political Theory] new DelhiEducation] 2006. Press*

18. *Kymlicka] Will] Multicultural Citizenship: Liberal theory of Minority Rights] Clarendan OÛford] 1995.*

19. *Soysal] yasemin] Limits of Citizenship] University of Chicago Press] Chicago] 1994. Greave 20. http://sol.du.ac.in/mod/book/ view.php\id)1475&chapterid)1394 : person]*

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई – 3 अन्र्तराष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थायें

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 लीग ऑफ नेशंस
3.4 संयुक्त राष्ट्र संघ
3.6 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन
3.7 एमनेस्टी इंटरनेशनल
3.8 ह्यूमन राइट्स वॉच
3.9 बच्चों की सुरक्षा कोष (सीडीएफ)
3.10 मानवाधिकार एक्शन केंद्र
3.11 सीमाओं के बिना मानव अधिकार
3.12 अंतरराष्ट्रीय यहूदी मानवाधिकार संगठन साइमन विजंथल केंद्र
3.13 संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को)
3.14 शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र के उच्चायुक्त के कार्यालय–
3.15 लोकतंत्र, मानवाधिकार और श्रम की अमेरिकी विदेश विभाग के ब्यूरो
3.16 लोकतांत्रिक संस्थाओं और यूरोप में सुरक्षा और सहयोग के लिए संगठन (ओएससीई) के मानव अधिकारों के कार्यालय
3.17 मानवाधिकार आयोग, यूरोप की परिषद
3.18 यूरोपीय संघ लोकपाल
3.19 रोजगार, सामाजिक मामलों और समान अवसर के लिए यूरोपीय आयोग निदेशालय
3.20 मानव और लोगों के अधिकारों पर अफ्रीकी आयोग
3.21 एशियाई मानवाधिकार आयोग
3.22 रेड क्रॉस की अंतर्राष्ट्रीय समिति–वैश्विक अधिकारों
3.23 मानव अधिकार के लिए इंटरनेशनल फेडरेशन
3.24 नार्वे शरणार्थी परिषद
3.25 अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थियों
3.26 ह्यूमन राइट्स फाउंडेशन
3.27 सारांश
3.28 शब्दावली
3.29 संदर्भ ग्रंथ
3.30 संबंधित प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे–

- मानवाधिकार की परिभाषा
- अन्र्तराष्ट्रीय संगठन की परिभाषा
- विश्व के प्रमुख अन्र्तराष्ट्रीय संगठन

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

- विश्व के प्रमुख अर्न्तराष्ट्रीय संगठन के महत्व और कार्यो की जानकारी
- विश्व के प्रमुख अर्न्तराष्ट्रीय संगठन से जुड़ी वेबसाइटें

3.2 प्रस्तावना

दुनिया भर के कई संगठनों के मानव अधिकारों की रक्षा और मानव अधिकारों का हनन समाप्त करने के लिए अपने प्रयासों को समर्पित करते हैं। यह सरकारी संगठन और गैरसरकारी संगठन दोनों प्रकार के अर्न्तराष्ट्रीय संगठन है जो वैश्विक स्तर पर मानव अधिकारों के कार्य कर रहे है। मानवाधिकार के लिए विशेष रूप से गैर सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) की अहम भूमिका है।

प्रमुख मानव अधिकार संगठनों व्यापक रूप से मानवों के अधिकारों के लिए कार्य रहे है उनके अपने स्तर पर मानवाधिकारों के लिए कार्य करते है साथ ही गैर सरकारी संगठन सरकारों के कार्यों पर भी नजर रखते और मानव अधिकारों के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने के लिए उन्हें प्रेरित करते है कभी – कभी आवश्यकता पड़ने पर दबाव भी डालते हैं। वैश्विक स्तर पर अनेक अर्न्तराष्ट्रीय संगठन है जो कि अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार के लिए कार्य कर रहे है। कुछ उदाहरण अग्रलिखित हैं।

3.3 अर्न्तराष्ट्रीय संगठन

अर्न्तराष्ट्रीय संगठन शब्द के तात्पर्य है कि अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर अर्न्तराष्ट्रीय सहयोग और विचारों के आदान प्रदान के लिए विश्व शान्ति और आपसी समझ के लिए कोई संगठन जो वैश्विक स्तर पर कार्य करे ।

अर्न्तराष्ट्रीय संगठन शब्द के अविष्कारक स्कॉटलैण्ड के प्रमुख विद्वान और विधिवेत्ता जेम्स लोरिमर जिन्होनें 18 मई 1867 में अपने भाषण में सर्वप्रथम प्रयोग किया था। इसके बाद अनेक विद्वानों ने समय–समय पर अर्न्तराष्ट्रीय संगठन का प्रयोग किया। 10 फरवरी 1871 को थॉमस वीलिंग ने अपने पत्र भी प्रयोग किया ।सन् 1920 तक अर्न्तराष्ट्रीय संगठन शब्द को तब अधिकारिक रूप से पहचान मिल गयी जब सम्पूर्ण विश्व प्रथम विश्व युद्ध झेल चुका और सभी देश शांति के महत्व को समझे। लींग ऑफ नेशन के निर्माण के समय तक सभी देश अर्न्तराष्ट्रीय संगठन के महत्व और स्वरूप को समझ चुके थे।

प्रमुख विद्वानों द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय संगठन की बतायी गयी परिभाषा अग्रलिखित है–

ईगेलटन के अनुसार– "अर्न्तराष्ट्रीय संगठन स्वतन्त्र राज्यों का वह संगठित औपाचारिक समूह है, जिसकी स्थापना विश्व में शन्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने तथा अर्न्तराष्ट्रीय समुदाय के सामान्य कल्याण में वृद्वि करने के उददेश्य से होती है।"

टुंकिन के अनुसार– "अर्न्तराष्ट्रीय संगठन राज्यों का ऐसा संघ है जिसकी स्थापना सन्धि के आधार पर होती है और जिसका उददेश्य अर्न्तराष्ट्रीय कानून के आधार पर लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है।"

अर्न्तराष्ट्रीय संगठन के शाब्दिक अर्थ और उपयुक्त परिभाषाओं को समझने के बाद हम यह आसानी से समझ सकते है कि यह अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर एकजुटता और आपसी समझ को बढ़ने के लिए बनाये जाते है। प्रस्तुत इकाई में हम मानवाधिकार के लिए कार्यरत अर्न्तराष्ट्रीय संगठनों का अध्ययन करेगे।

3.4 राष्ट्र संघ

राष्ट्र संघ प्रथम विश्व युद्ध के बाद अस्तिव में आया। वास्तव में प्रथम विश्व युद्ध ने दुनिया को यह एहसास दिला दिया था कि शांति की कितनी आवश्यकता है। 10 जनवरी 1920 को औपचारिक रूप से राष्ट्र संघ की स्थापना हुयी थी।

परन्तु विश्व का यह दुर्भाग्य था कि राष्ट्र संघ अपने शांति के लक्ष्य में असफल रहा और जिसका परिणाम दूसरा विश्व युद्ध था।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

3.5 संयुक्त राष्ट्र संघ

विश्व जब दो–दो विश्व युद्धों की त्रासदी झेल चुका और शांति के महत्व को समझने लगा तब उसने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे प्रयास शुरू किये जिनसे वह जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं और दशाओं को प्राप्त कर सके। ऐसे ही प्रयासों का परिणाम संयुक्त राष्ट्र संघ है। जब विश्व ने प्रथम विश्वयुद्ध का संकट देखा तो युद्ध के समाप्त होने के बाद लींग ऑफ नेशंस बना जो शांति और वैश्विक सौहार्द के लिए था। विश्व उसके महत्व को समझा न सका और लींग ऑफ नेशन की असफलता का परिणाम दूसरा विश्व युद्ध रहा। लेकिन दूसरे विश्व युद्ध की विभीषिका ने पुरी दुनिया को शांति के महत्व को समझा दिया। जिसका परिणाम था कि सम्पूर्ण विश्व एकमत हो गया वैश्विक संस्थाओं के महत्व और आवश्यकता को समझने मे। 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ अस्तिव में आया। संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्यालयमैनहैटन टापू, न्यूयॉर्क शहर, न्यूयॉर्क राज्य, संयुक्त राज्य में स्थित है।

3.6 अन्तर्राष्टोय श्रम संघ (International Labour Organisation)

संयुक्त राष्ट्र हमेशा से मानवाधिकार के लिए कार्य करती रही है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट समितियों में सर्वाधिक प्राचीन है। इसकी स्थापना 11 अप्रैल, 1919 को वर्साय की सन्धि के भाग 13 के अनुसार मजदूरों के हित–साधन के उद्देश्य से की गयी थी। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के मध्य के काल में यह संस्था राष्ट्रसंघ की एक सहायक संस्था के रूप में कार्य करती रही। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सन् 1946 में इसे संयुक्त राष्ट्र की एक विशिष्ट समिति के रूप में पुनर्गठित किया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ इस विश्वास पर आधारित है कि सार्वजनिक और स्थायी शान्ति की स्थापना सामाजिक न्याय की आधारशिला पर ही सम्भव है। इसी संकल्पना को आधार मान कर सन् 1944 में अपने फिलाडेल्फिया सम्मेलन में श्रम संघ ने 'विश्व–शान्ति के प्रति अपनी निष्ठा' की पुनर्घोषणा करते हुए अपने सिद्धान्तों और उद्देश्यों के बारें में विस्तृत रूप से विचार– विमर्श और चर्चा की गयी जिसके बाद पुनर्व्याख्या भी की गयी। वास्तव में देखा जाये तो श्रम संघ ने निम्नलिखित 4 सिद्धान्तों पर विशेष बल दिया।

(1) श्रम वस्तु (commodity) नहीं है;

(2) दरिद्रता कहीं भी हो, वह सभी स्थानों की समृद्धि के लिए खतरा है;

(3) अभिव्यक्ति और संगठन की स्वतंत्रता निरन्तर प्रगति के लिए आवश्यक है;

(4) अभाव और दरिद्रता के विरूद्ध प्रत्येक देश में पूरे उत्साह के साथ युद्ध लड़ा जाना चाहिए।

फिलाडेल्फिया घोषणा में जिन उद्देश्यों का प्रतिपादन किया गया उनमें से निम्न प्रमुख थे :

(1) पूरा रोजगार और जीवन–निर्वाह के लिए आवश्यक पूरा वेतन ;

(2) सामाजिक भोजन और आवास की व्यवस्थाओं का विस्तार ;

(3) पर्याप्त भोजन और आवास की व्यवस्थाओं का विस्तार;

(4) सामूहिक रूप से सौदा करने (Collective bargaining) का अधिकार;

(5) अवसर की समानता; तथा

(6) स्वास्थ्य और सुरक्षा के साधनों की उपयुक्त व्यवस्था।

3.7 एमनेस्टी इंटरनेशनल (Amnesty International)

मानवाधिकारों की रक्षा के लिए कार्य करने वाली संगठनों में एमनेस्टी इंटरनेशनल का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। यह एक अर्न्तराष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन है। इस अर्न्तराष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन की स्थापना ब्रिटिश के एक वकील पीटर बेन्सन ने 28 मई 1961 को की थी। 1982 तक भारत, अमेरिका, श्रीलंका, आस्ट्रेलिया,

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

जर्मनी, कनाडा, म्यांमार, नाइजीरिया, नार्वे, स्वीडेन सहित अनेक देशों में इसके कार्यालय खुले। वर्तमान में विश्व के लगभग 150 देशों में एमनेस्टी इंटरनेशनल के सदस्य है और कार्यलय है जो मानव अधिकारों के हनन को समाप्त करने के अभियान के समर्थक है। इसके सदस्यों और कार्यकर्ताओं का मानवाधिकार की जागरूकता और संरक्षण के लिए चलाया जाने वाला यह एक वैश्विक आंदोलन है। संगठन का उद्देश्य अनुसंधान भर में लिए न्याय की मांग करना है। एमनेस्टी इंटरनेशनल दुनिया भर में मानव अधिकारों को हनन को रोकने का प्रयत्न करता है।

सन् 1977 में इसे नोबेल शान्ति पुरस्कार और सन् 1978 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार पुरस्कार प्रदान किया गया। यह संगठन यातना, उत्पीड़न, मृत्युदण्ड के खिलाफ और राजनीतिक बंदियों के खिलाफ भी आवाज उठाता है। इसका मुख्यालय लंदन है। www.amnesty.org

3.8 ह्यूमन राइट्स वॉच (Human Rights Watch)

ह्यूमन राइट्स वॉच दुनिया भर के लोगों के मानव अधिकारों की रक्षा के लिए समर्पित गैर सरकारी संगठन है तथा मानव अधिकारों के उल्लंघन का विरोध कर लोगों को उनके अधिकारों को दिलाने के पक्षधर है। लोगों के प्रति अभद्र व्यवहार को समाप्त करने और अंर्तराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून का सम्मान करने के लिए यह प्रतिबद्ध है।

मानव अधिकार के लिए यह संगठन सक्रियता से कार्य कर रहा है। यह अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार नियमों के उल्लंघन पर रिपोर्ट तैयार करता है। इन रिपोर्टों से अंतरराष्ट्रीय समुदाय का ध्यान मानवाधिकार के हनन और उसे राकने के साथ सुधार करने के लिए सरकारों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के दबाव के लिए आधार के रूप में इस्तेमाल किया जाता हैं।

अफ्रीका, अमेरिका, एशिया, यूरोप और मध्य एशिया, मध्य पूर्व और उत्तरी अफ्रीका, संयुक्त राज्य अमेरिका के देश आदि देशों में सक्रियता से कार्य कर रहे है।

www.hrw.org

3.9 बच्चों की सुरक्षा कोष (सीडीएफ) Children's Defense Fund (CDF)

सीडीएफ बच्चों के हितों के कार्य करने वाला संगठन है। यह सभी बच्चों के लिए सही देख भाल, खानपान और खेलने के साथ बुनियादी सुविधाओं को सुनिश्चित करने के लिए काम करता है। सीडीएफ की नीतियों और कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य गरीबी से बच्चों को मुक्त कर उन्हें शोषण और उपेक्षा से बचाने और बराबर की देखभाल और शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित कराना हैं।

www.childrensdefense.org

3.10 मानवाधिकार एक्शन केंद्र (Human Rights Action Center)

मानवाधिकार एक्शन केंद्र एक गैर–लाभकारी संगठन है। जैक हीली, विश्व प्रसिद्ध मानवाधिकार कार्यकर्ता और अग्रणी की अध्यक्षता में इस संगठन का निर्माण किया गया है। इसका मुख्यालय वाशिंगटन में है। मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा और मानवाधिकार के मुद्दों पर काम करता है। साथ ही कुछ नया करने के लिए और मानव अधिकारों के हनन को रोकने के लिए नई रणनीति विकसित करने के लिए कला और प्रौद्योगिकियों का भी उपयोग करता है। यह संगठन भी पूरी दुनिया में बढ़ रही मानव अधिकार समूहों का समर्थन के लिए कार्य कर रहा है।

www.humanrightsactioncenter.org

3.11 सीमाओं के बिना मानव अधिकार (Human Rights Without Frontiers :(HRWF)

लोकतंत्र को बढ़ावा देने और राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कानून के नियम के रूप में, मानव अधिकारों के क्षेत्र में निगरानी, अनुसंधान और विश्लेषण पर केंद्रित यह एक गैर सरकारी संगठन है।

www.hrwf.net

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

3.12 अंतरराष्ट्रीय यहूदी मानवाधिकार संगठन साइमन विजंथल केंद्र (Simon Wiesenthal Center)

यह एक प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय यहूदी मानवाधिकार संगठन है। जो यहूदीयों के लिए समर्पित है। विरोध, नफरत और आतंकवाद से लड़कर मानव अधिकारों और मानवीय गरिमा को बढ़ावा देने, इजरायल के साथ खड़ा है तथा दुनिया भर में यहूदियों की सुरक्षा की रक्षा और भविष्य के लिए कार्य कर रहा है।

www.wiesenthal.com

3.13 संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization (UNESCO)

यूनेस्को के लक्ष्य के लोगों के मन में शांति का निर्माण करना होता है।यह मानव अधिकारों के क्षेत्र में अपने काम के बारे में जागरूकता को मजबूत करना है और मानव अधिकारों में, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंर्तराष्ट्रीय कार्रवाई के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य कर रहा है। यूनेस्कों के निर्माण का विचार मित्रराष्ट्रों के शिक्षा–मन्त्रियों के जुलाई, 1945 के सम्मेलन में उत्पन्न हुआ था। इस सम्मेलन ने 12 जुलाई, 1945 को एक प्रस्ताव में ब्रिटिश सरकार से एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षणिक और सांस्कृतिक संस्था की स्थापना के सम्बन्ध में विचार– विमर्श के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आमंत्रित करने की प्रार्थना की। इसके फलस्वरूप नवम्बर, 1945 में लन्दन में एक सम्मेलन हुआ जिसमें रूस को छोड़कर अन्य सभी महाशक्तियों सहित 14 राष्ट्रों ने भाग लिया। इस सम्मेलन के निर्णयों के अनुसार 4 नवम्बर, 1946 को यूनेस्को की स्थापना हुई। तब से वर्तमान तक यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षणिक और सांस्कृतिक स्तर पर जागरूकता, सहयोग और गतिविधियों के प्रसार– प्रचार और संरक्षण का कार्यकर रहा है। www.unesco.org

3.14 शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र के उच्चायुक्त के कार्यालय– (Office Of the United Nations High Commissioner for Refugees)

इस कार्यालय द्वारा शरणार्थियों की रक्षा और दुनिया भर में शरणार्थी समस्या को हल करने के लिए अंर्तराष्ट्रीय कार्यवाही का समन्वय करने का कार्य किया जाता है। इसका प्राथमिक उद्देश्य अधिकारों और शरणार्थियों के कल्याण की रक्षा करना और उनके अधिकारों के लिए कार्य करना है। यह भी सुनिश्चित करना है कि हर कोई सही शरण की तलाश में गुमराह ना हो और सुरक्षित शरण घर स्वेच्छा से लौटने के लिए रास्ते बने। शरणार्थियों के लिए विकल्पों के साथ सभी राज्यों में स्थानीय स्तर पर एकीकृत या किसी तीसरे देश में फिर से बसाने या इसी प्रकार के कार्य के लिए अधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र के उच्चायुक्त के कार्यालय द्वारा कार्य सम्पन्न किये जाते है। www.unhcr.org

3.15 मानवाधिकार और यूरोप (Human Rights and Europe)

आयोग यूरोप के भीतर एक स्वतंत्र संस्था है जो की यूरोप के राज्यों में मानव अधिकारों के लिए तथा उनके बारे में जागरूकता और सम्मान को बढ़ावा देने को प्रयासरत भी है। आयोग के काम इस प्रकार से है कि सुधार के उपायों को प्रोत्साहित करते हुए मानव अधिकारों के संवर्धन एवं संरक्षण के क्षेत्र में ठोस सुधार प्राप्त हो।

4 नवम्बर 1950 को मानवाधिकार यूरोपीय अभिसमय स्वीकार किया गया जो कि 3 सितम्बर 1952 को लागू हुआ। इसमें 66 अनुच्छेद है जो कि पाँच अलग–अलग भागों में विभाजित है।

1952 और 1963 में आवश्यकतानुसार कुछ संशोधन भी किये गये। जिसका लक्ष्य मानवाधिकारों की रक्षा करना है। यूरोप में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए यूरोपीय मानवाधिकार आयोग और 1959 में यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय की भी व्यवस्था है। यूरोप में मानवाधिकार परिषद भी स्थित है।

3.16 लोकतांत्रिक संस्थाओं और यूरोप में सुरक्षा और सहयोग के लिए संगठन (ओएससीई) के मानव अधिकारों के कार्यालय (Office of Democratic Institutions and Human Rights of the Organization for Security and Co-Operation in Europe (OSCE):

OSCE के मानवाधिकार कार्यालय यूरोप, मध्य एशिया और उत्तरी अमेरिका आदि के देशों में आंदोलन और

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

धर्म की स्वतंत्रता पर ध्यान केंद्रित कियं है और व्यक्तियों में यातना और तस्करी को रोकने के लिए और मानव अधिकारों की गतिविधियों में सकारात्मक प्रगति हेतु प्रयास में लगे हुए है।

www.osce.org/odihr

3.16 यूरोपीय संघ लोकपाल (European Union Ombudsman)

यूरोपीय संघ लोकपाल संस्थाओं और यूरोपीय संघ के देशों अव्यवस्था एवं कुशासन के बारे में शिकायतों की जांच आदि का कार्य करता है। यूरोपीय संघ लोकपाल लोकपाल पूरी तरह से स्वतंत्र और निष्पक्ष है।

www.ombudsman.europa.eu

3.17 रोजगार, सामाजिक मामलों और समान अवसर के लिए यूरोपीय आयोग निदेशालय– (European Commission Directorate for Employment, Social Affairs and Equal Opportunities)

रोजगार, सामाजिक मामलों और समान अवसर के लिए यूरोपीय आयोग के महानिदेशालय और अधिक और बेहतर रोजगार के अवसर, एक समावेशी समाज और सभी के लिए समान अवसरों के सृजन की ओर काम करता है।

www.ec.europa.eu/social

3.18 मानव और लोगों के अधिकारों पर अफ्रीकी आयोग (African Commission on Human and Peoples' Rights)

अफ्रीकी में 1961 में लागोस (नाईजीरिया) में विधि शासन पर अफ्रीकी सम्मेलन में मानवाधिकारों के रक्षा के लिए स्थानीय स्तर पर प्रयास का प्रस्ताव लाया गया। जिसका परिणाम अनेक प्रयासों और विचार विमर्श के बाद 21 अक्टूबर 1986 को अफ्रीकी चार्टर का लागू होना था।

मानव और लोगों के अधिकारों पर अफ्रीकी आयोग अफ्रीका में कार्यरत है। स्थापना, संरचना और आयोग के कामकाज अफ्रीकी चार्टर के अनुच्छेद 30 के आधार पर एक अफ्रीकी आयोग कार्य कर रहा है।

यह आयोग आधिकारिक तौर पर तीन प्रमुख कार्यों को करता है मानव और लोगों की सुरक्षा के अधिकारों को सुनिश्चित करना , इन अधिकारों को बढ़ावा देना, और मानव और लोगों पर अफ्रीकी चार्टर की व्याख्या करना।

www.achpr.org

3.19 एशियाई मानवाधिकार आयोग (The Asian Human Rights Commission)

एशियाई मानवाधिकार आयोग एशिया में मानवों की आधारभूत प्राथमिकताओं को प्राप्त करने के लिए दूसरों के बीच में काम करता है। रक्षा और निगरानी, जांच, वकालत और एकजुटता कार्रवाई करने से मानव अधिकारों को निरन्तर बढ़ावा देने के लिए कार्य हो रहा है।

www.ahrchk.net

3.20 रेड क्रॉस की अंतर्राष्ट्रीय समिति (ICRC)

रेड क्रॉस की स्थापना के पीछे युद्ध के मैदान में घायल सैनिकों के लिए और या विपदा के समय में पीड़ितों को संरक्षण के लिए राहत सहायता देने की मंशा थी। जिसके लिए प्रथम विचार स्विट्जरलैण्ड के जे0 हेनरी ड्यूनैन्ट के मन में 1859 को इटली में युद्ध के दौरान घायल सैनिकों की दुर्दशा देख कर आया। हेनरी ने 1863 में जिनेवा में इन्टरनेशनल कमेटी फॉर रिलीफ टू द वुन्डेड नाम की संस्था का गठन किया। बाद में इसका नाम बदलकर इन्टरनेशनल कमेटी ऑफ द रेडक्रास कर दिया गया ।

फरवरी 1863 में ड्यूनैन्ट के समर्थन से रेड क्रॉस की अंतर्राष्ट्रीय समिति की स्थापना हुयी। रेड क्रॉस की एक अंतर्राष्ट्रीय समिति (ICRC) है जो स्वायत्त निष्पक्ष, तटस्थ और स्वतंत्र संगठन है। जिसका उद्देश्य विशेष रूप से मानवीय मिशन जीवन और युद्ध और आंतरिक हिंसा और पीड़ितों की गरिमा की रक्षा के लिए सहायता प्रदान करते हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय राहत और सहायता को बढ़ावा देने और मानवीय कानून और सार्वभौमिक मानवीय

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

सिद्धांतों को मजबूत करने के लिए काम करता है। इसका मुख्यालय जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड) में है। दुनिया भर में इसके सदस्य कार्यरत है। ICRC के प्रतिनिधिमंडलों के व्यापक नेटवर्क राष्ट्र है जो कि सशस्त्र संघर्ष और हिंसा से प्रभावित लोगों की सहायता करते है। माली, नाइजर, अफगानिस्तान, यमन, इराक, कोलंबिया, सोमालिया, इजराइल, सोमालिया, कांगो और सूडान लोकतांत्रिक गणराज्य आदि देशों को इससे लाभ प्राप्त हुआ है। स्विट्जरलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, जापान और न्यूजीलैंड के साथ अन्य यूरोपीय राज्यों और यूरोपीय संघ के साथ भी यह संगठन सहयोग करता है।

वेबसाइट: **www-icrc-org**

3.21 वैश्विक अधिकार **(Global Rights)**

वैश्विक स्तर पर मानव अधिकारों की रक्षा और अंर्तराष्ट्रीय मानवाधिकार क्षमता निर्माण के लिए यह गैर सरकारी संगठन (एनजीओ) है जो कि अफ्रीका, एशिया, और लैटिन अमेरिका में कार्य कर रहा है। हाशिए पर रह रही आबादी के अधिकारों की रक्षा करने के लिए सब देश एक साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रहा है यह संगठन इस तरह के अनेक प्रयास करता है।

व्यापक आधार वाली तकनीकी सहायता और प्रशिक्षण के माध्यम से या भागीदारों की मजबूत पहल और कानूनी और नीतिगत सुधार के लिए मानव अधिकारों के हनन को रोकने के लिए यह संगठन कानूनी जानकारी भी प्रदान करता हैं।

गरीब और हाशिए पर स्थित समूहों के लिए न्याय के उपयोग में वृद्धि महिलाओं के अधिकारों और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के अलावा समलैंगिक, उभयलिंगी, ट्रांसजेंडर, और इंटरसेक्स अधिकार और प्राकृतिक संसाधनों और मानव अधिकारों के लिए भी यह कार्य करते है।

यह संगठन अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका , अफगानिस्तान, अल्जीरिया, ब्राजील, बुरुंडी, कोलंबिया, कांगो, मोरक्को, नाइजीरिया, पेरू, सिएरा लियोन, युगांडा आदि देशों के वैश्विक अधिकारों के लिए लिए कार्य कर रहा है। इसके सदस्यों में शामिल वरिष्ठ वकीलों, पत्रकारों, शिक्षाविदों के अलावा मानवाधिकारों की रक्षा के प्रति जागरूकजन आदि है।

वेबसाइट: www-globalrights-org

3.22 मानव अधिकार के लिए इंटरनेशनल फेडरेशन **(International Federation for Human Rights)**

मानव अधिकारों के लिए सम्मान के साथ रक्षा मानव अधिकारों के रक्षक के रूप में कार्य कर रहा है। प्रभावी ढंग से मानव अधिकार सुनिश्चित करने, और सभी के लिए न्याय, घायल सैनिकों के लिए तटस्थता और संरक्षण के लिए राष्ट्रीय राहत के लिए वैश्विक समाज में जागरूकता और आधारभूत अधिकारों के लिए यह संगठन कार्य करते है।

अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, एशिया और 100 से अधिक देशों में 178 मानव अधिकार संगठनों के साथ यह कार्य कर रहे है।

वेबसाइट: **www-fidh-org**

3.23 नार्वे शरणार्थी परिषद **Norwegian Refugee Council**

नार्वे शरणार्थी परिषद एक मानवीय गैर सरकारी संगठन है जो मानव आधिकारों की रक्षा करता और विस्थापन से प्रभावित लोगों के अधिकारों को बढ़ावा देता है। यह शरणार्थियों और विस्थापित लोगों के लिए संघर्ष, मानव अधिकारों के उल्लंघन और तीव्र हिंसा के साथ ही जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक आपदाओं का एक परिणाम के रूप में अपने घरों से पलायन करने के लिए मजबूर हो रहे लोगों के लिए कार्य करता है।

यह नार्वे शरणार्थी परिषद राजनीतिक रूप से स्वतंत्र है और इसकी अपनी कोई धार्मिक मान्यता नहीं है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

एनआरसी केवल नार्वे का संगठन है जो कि सहायता, सुरक्षा और विस्थापन से प्रभावित लोगों के लिए समाधान प्रदान करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयास करता है। एनआरसी के अफ्रीका, एशिया, दक्षिण अमेरिका और मध्य पूर्व भर में 20 देशों में लगभग 3500 कर्मचारियों को रोजगार प्राप्त है। एनआरसी मुख्यालय ओस्लो में स्थित है। इसके अतिरिक्त संगठन ब्रुसेल्स, जिनेवा, अदीस अबाबा और दुबई में मौजूद है।

एनआरसी वर्तमान में मौजूद करीब 20 देशों में फैला हुआ है। अफ्रीका, अमेरिका, एशिया, यूरोप और मध्य पूर्व के देशों में इसकी परियोजनाएं चल रही है। इसके अलावा हम नॉर्वे, स्विट्जरलैंड और बेल्जियम में इसके कार्यालय बने है।

वेबसाइट: www-nrc-no

3.24 अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थियों (Refugees International)

अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थियों का यह एक स्वतंत्र मानवीय संगठन है जो कि विस्थापित लोगों और राज्यविहीन लोगों (शरणार्थियों और आंतरिक रूप से विस्थापित लोगों सहित) के बेहतर समर्थन के लिए सहायता और संरक्षण के समाधान को बढ़ावा देता है। यह संगठन मीडिया का ध्यान, विस्थापन के स्थानों के लिए वकालत, मिशन के माध्यम से अनुसंधान आदि करता है। यह अब विभिन्न रिपोर्टों, तथा विस्थापन के मुद्दे पर साल भर में लगभग पच्चीस क्षेत्र रिपोर्टों के साथ ही टिप्पणियों सहित दुनिया भर में अंतरराष्ट्रीय सहायता के मुद्दों पर प्रकाशित करता है।

अफगानिस्तान, बर्मा, कोलंबिया, कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य, हैती, कुवैत, लीबिया, पाकिस्तान, सोमालिया, दक्षिण सूडान आदि देशों को इस संगठन से विशेष रूप से लाभ पहुँच रहा है।

3.25 ह्यूमन राइट्स फाउंडेशन (Human Rights Foundation)

ह्यूमन राइट्स फाउंडेशन एक गैर लाभकारी संगठन है जो कि विश्व स्तर पर मानव अधिकारों की रक्षा करता है। मानव अधिकार और उदार लोकतंत्र को बढ़ावा देने के साथ स्वतंत्रता और उनके संरक्षण को भी इसने बढ़ावा दिया है।

वेबसाइट: www-humanrightsfoundation-org

3.25 सारांश

वर्तमान समय में मानव अधिकारों के लिए अनेक प्रयास किये जा रहे है। मानव सम्मान के साथ रहे अपने आधारभूत अधिकारों को प्राप्त करें इसके लिए वैश्विक स्तर पर मानव अधिकारों के रक्षक के रूप में अनेक अर्न्तराष्ट्रीय संगठन कार्य कर रहे है। यह संगठन प्रभावी ढंग से मानव अधिकार सुनिश्चित करने, और सभी के लिए न्याय, घायल सैनिकों के लिए तटस्थता और संरक्षण तथा राष्ट्रीय राहत के लिए वैश्विक समाज में जागरूकता और आधारभूत अधिकारों के लिए कार्य करते है। जैसे लीग ऑफ नेशंस, संयुक्त राष्ट्र संघ, एमनेस्टी इंटरनेशनल, ह्यूमन राइट्स वॉच, अंतरराष्ट्रीय यहूदी मानवाधिकार संगठन, संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र के उच्चायुक्त के कार्यालय, लोकतंत्र, मानवाधिकार और श्रम की अमेरिकी विदेश विभाग के ब्यूरो, लोकतांत्रिक संस्थाओं और यूरोप में सुरक्षा और सहयोग के लिए संगठन (ओएससीई), यूरोप की परिषद, यूरोपीय संघ लोकपाल, मानव और लोगों के अधिकारों पर अफ्रीकी आयोग, एशियाई मानवाधिकार आयोग, रेड क्रॉस की अंतर्राष्ट्रीय समिति, मानव अधिकार के लिए इंटरनेशनल फेडरेशन , नार्वे शरणार्थी परिषद अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थियों आदि वैश्विक स्तर पर मानव अधिकारों के लिए कुछ प्रत्यक्ष तो कुछ अप्रत्यक्ष रूप से कार्य कर रहे है।

मानव समाज अधिकारों के लिए उपेक्षा और अवमानना का शिकार न हो तथा उस पर अत्याचार भी नहीं होना चाहिये। दुनिया में मानव विश्वास और स्वतंत्रता का निर्बाध आनंद ले सके और अत्याचार और उत्पीड़न के खिलाफ अंतिम उपाय के रूप में यह आवश्यक है कि वह मानव अधिकार संगठनों की सहायता भी ले सके।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

3.26 शब्दावली

उत्पीड़न	:	शोषण
अवमानना	:	अपमान
मानवाधिकार नीति	:	मानव के आधारभूत आधिकारों से बचने के लिए बनाये गए नियम

3.27 संदर्भ

- https://www.fundsforngos.org/featured-articles/worlds-top-ten-human-rights-organisations/
- http://www.ramasangathan.com/@archives/apne.html
- http://www.rachanakar.org/2009/07/blog-post_980.html
- http://www.humanrights.com/voices-for-human-rights/human-rights-organizations/non-governmental.html
- http://peprimer.com/human-rights-ngo.html
- https://www.hrw.org/about
- http://www.humanrights.com/voices-for-human-rights/human-rights-organizations/non-governmental.htmlekuokf/
- फड़िया, डॉ0 कुलदीप, प्रेस कानून और पत्रकारिता, प्रतियागिता साहित्य सीरीज, आगरा (2015)।
- गौतम रमेश प्रसाद और पृथ्वीपाल सिंह, भारत में मानव अधिकार (उल्लंघन, संरक्षण, क्रियान्वयन एवं उपचार)विश्वविद्यालय प्रकाशन,सागर म0प्र0 (2001)।
- धर्माधिकारी देवदत्त माधव, मानव अधिकार क्यों और कैसे ?साहित्य संगम, इलाहाबाद (2010)।
- पाण्डेय, डॉ0 वी0के0, भारतीय संस्कृति और मानवाधिकार शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद (2009)।

3.28 संबंधित प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न?

- मानवाधिकार क्या है?
- अर्न्तराष्ट्रीय संगठन से आप क्या समझते है?
- अर्न्तराष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता के बारे में वर्णन कीजिए।
- क्या अर्न्तराष्ट्रीय संगठन अपने उद्देश्यों में सफल है?

विस्तृत उत्तरीय

- प्रमुख अर्न्तराष्ट्रीय संगठनों के बारे में लिखिए।
- अर्न्तराष्ट्रीय संगठन के समक्ष कौन–कौन सी चुनौतियां है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

अ. एमनेस्टी इंटरनेशनल कब बना ?

क. 28 मई 1961 ख. 28 मई 1965

ग. 28 मई 2012 घ. 28 अप्रैल 1961

ब. संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण वर्ष क्या है ?

क. 24 अक्टूबर 1945 ख. 24 अक्टूबर 1955

ग. 24 अक्टूबर 2042 घ. 24 अक्टूबर 2008

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-117
मानवाधिकार

खण्ड–4
भारत में मानव अधिकार और कर्त्तव्य

इकाई–1

विकास : स्वतंत्रता आन्दोलन, संविधान निर्माण

इकाई–2

भाग– भारतीय संविधान

इकाई–3

मौलिक कर्तव्य व अधिकार

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई– 1 विकास : स्वतंत्रता आन्दोलन, संविधान निर्माण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 मानवाधिकार एवं संवैधानिक उपबंध

1.3 भारतीय संविधान में प्रदत्त नागरिकों के मूल अधिकार

1.3.1 समता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18 तक) :

1.3.2 स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19–22) :

1.3.3 शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 और 24):

1.3.4 धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28)

1.3.5 संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29 और 30)

1.3.6 संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32):

1.4 न्यायालय द्वारा जारी लेख–

1.5 नीति निर्देशक तत्व एवं मानवाधिकार

1.6 भारत में मानवाधिकार एवं अन्य वैधानिक प्रावधान

1.7 मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993

1.8 सारांश

1.9 बोध प्रश्न

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी समझ सकेंगे कि–

- मानवाधिकारों से सम्बन्धित दस्तावेज भारत में संविधान निर्माण से पहले से विद्यमान थे;
- भारतीय संविधान में प्रदत्त नागरिकों के मूल अधिकार क्या हैं,
- न्यायालय द्वारा नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा हेतु जारी लेख;
- भारतीय संविधान में नीति–निर्देशक तत्व किस प्रकार मानवाधिकार के व्यापक आयाम को पुष्ट करते हैं तथा
- मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 क्या है।

1.1 प्रस्तावना

मानवाधिकारों के उद्भव का इतिहास सौहार्द, समभाव, सहयोग और समता के मापदण्डों पर आधारित माना जाता है। यद्यपि 'मानवाधिकार'' शब्द को आधुनिक आधुनिक देन माना जाता है, तथापि मानवाधिकार का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी कि मानव सभ्यता। बीसवीं शताब्दी के नवीन ''मानवाधिकार'' शब्द को पूर्व में प्रचलित नैसर्गिक अधिकार या व्यक्ति के अधिकारों से लिया गया है। इस प्रकार मानवाधिकार प्राचीन समय में भी प्रभावी थे भलेही उनको दूसरे नाम से जाना जाता था। भारत में वैदिक काल में भी अधिकारों की रक्षा के उपबन्ध

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

विद्यमान थे। भारत में मानवाधिकारों के दर्शन को भूतकाल से पृथक नहीं किया जा सकता है। इसलिए यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि मानवाधिकारों का इतिहास न तो पूर्ण रूप से पाश्चात्य सभ्यता की देन है और न ही आधुनिक व्यवस्था की ही देन है। सत्य यह है कि जो कुछ आज मानवाधिकार के सम्बन्ध में पाश्चात्य सभ्यता ने खोजा है, वह प्राचीन भारतीय इतिहास की जड़ों में भी विद्यमान था। भारत में वर्तमान समय में मानवाधिकारों के स्वरूप को ब्रिटिश शासन काल की शोषणात्मक नीति के विरोध में स्वतंत्रता आन्दोलन के दर्शन में परिलक्षित किया जा सकता है।

इतिहास एवं राजनीति विज्ञान के सभी अध्येता विज्ञ हैं कि भारतीय संविधान पश्चिम की तीन महान क्रान्तियों से सर्वाधिक प्रभावित हुआ– अमेरिकी, फ्रांसीसी एवं रूसी क्रान्ति। फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति के मानव के अधिकारों के फ्रांसीसी घोषणापत्र के जोशीले उद्‌घोष, अमरीकी स्वतंत्रता की घोषणा के इस वक्तव्य कि– 'हम यह स्वसिद्ध समझते हैं कि सभी मनुष्य समान पैदा हुए हैं; रूसी क्रान्ति की बाइबिल 'कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो' के इस जीवन नारे– कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करेगा और प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार पाएगा' नारों से समस्त विश्व के करोड़ों लोग प्रभावित हुए और उन्होंने आशा–आकांक्षाओं को अधिकारों के रूप में पाने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। ये नारे आज भी विश्व की अधिकांश जनता के हृदय पर राज कर रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे संविधान निर्माता भी इन आदर्शों से प्रभावित थे और उन्होंने संविधान में अधिकारों की सर्वाधिक विस्तृत व्यवस्था की और इनके वास्तविक प्रवर्तन के लिए राज्य पर भी कई सकारात्मक उत्तरदायित्व डाले।

मानवाधिकारों को मान्यता देने वाले आधुनिक वैधानिक दस्तावेज भारत में संविधान निर्माण से सदियों पहले से वर्तमान थे। 1829 का सती प्रथा निषेध अधिनियम, 1929 का बाल–विवाह प्रतिषेध अधिनियम आदि को ऐसे दस्तावेजों के रूप में देखा जा सकता है जो बच्चों और महिलाओं के मानवाधिकारों को आश्वास्त करते थे। इसी प्रकार 1895 के इण्डिया बिल, 1928 की नेहरू रिपोर्ट 1945 के सप्रू प्रस्ताव, 1946 के उद्‌देश्य प्रस्ताव में भी ऐसे अनेक अधिकारों की मांग की गई जिन्हें मानवाधिकारों की श्रेणी में रखा जा सकता है। 1946 में संविधान सभा के गठन के समय मूल अधिकारों पर एक उप–समिति गठित की गई।

इस प्रकार भारत के संविधान में अंगीकृत स्वतंत्रता एवं अधिकार तीन महान क्रान्तियों के साथ–साथ अपने सुदीर्घ अहिंसक स्वतंत्रता संघर्ष का भी परिणाम थे। भारत का संविधान न केवल अपने प्रारूपण से पूर्व हुई घटनाओं एवं आन्दोलनों में व्यक्त आशा–आकांक्षाओं को ही व्यक्त नहीं करता वरन् इस वास्तविकता को भी प्रतिबिम्बित करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार का महत्व बढ़ता जा रहा है। भारत का संविधान सार्वभौम वयस्क मताधिकार (अनुच्छेद– 326) के आधार पर सम्प्रभु लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना करता है। भारत के संविधान के भाग–3 में नागरिकों को वे मूलभूत स्वतंत्रताएं व अधिकार दिए गए हैं, जिनका प्रवर्तन सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों द्वारा कराया जा सकता है। भारत का संविधान विशेष समूहों एवं उपेक्षित समूहों हेतु विशेष प्रबन्ध भी करता है और शिक्षा, रोजगार एवं राजनीतिक सहभागिता में उनके लिए आरक्षण की व्यवस्था करता है।

1.2 मानवाधिकार एवं संवैधानिक उपबंध

मानवाधिकारों के सम्बन्ध में संवैधानिक उपबंधों का स्रोत स्वयं संविधान है। भारत का संविधान एक ऐसा राजनीतिक प्रलेख है जिसकी बुनियाद भारत के लोगों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उपाकांक्षाओं पर टिकी है। भारत का संविधान व्यक्तियों को अपने विभिन्न उपबंधों द्वारा ये विभिन्न अधिकार प्रत्याभूत करता है, जिन्हें संयुक्त राष्ट्र अनुबंधों द्वारा मान्यता दी गई है। भारतीय संविधान के विभिन्न प्रावधान यह दर्शाते हैं कि भारतीय संविधान मानवाधिकारों का एक स्वघोषित अधिकार पत्र (Proclaimed Charter) है।

भारतीय संविधान की कुंजी प्रस्तावना में सूक्ष्म रूप से उन मूल्यों, आदर्शों एवं अधिकारों की ओर इशारा कर दिया गया है, जिनको प्राप्त करने का प्रयास विस्तृत संवैधानिक उपबंधों द्वारा संविधान निर्माता करना चाहते हैं।

संक्षेप में, संशोधन सहित प्रस्तावना का पाठ इस प्रकार है– "हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतांत्रिक समाजवादी धर्म निरपेक्ष गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

सुनिश्चित कराने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई0 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं। इस प्रकार प्रस्तावना में ही उन मूलभूत उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है, जिनको संविधान निर्माता राज्य के माध्यम से प्राप्त करना चाहते थे और ये उद्देश्य वस्तुतः मानवाधिकार, मानवतावाद एवं मानवीय मूल्यों से ही सम्बन्धित हैं– ये हैं– (1) स्वतंत्रता (2) समानता (3) न्याय एवं (4) बंधुत्व।

इस प्रकार "प्रस्तावना" मानवाधिकारों की निःसन्देह एक श्रृंखला प्रस्तुत करता है, जिनकी देश के लोगों द्वारा लम्बे समय से आशा–आकांक्षा की जा रही थी। देश के लोगों द्वारा संविधान को 'आत्मार्पित' किया गया है अर्थात् यह सभी जनता के लिए है और स्वयं जनता द्वारा स्वयं के लिए बताया गया है। वस्तुतः प्रस्तावना मानवाधिकार के विधिशास्त्र क सम्पूर्ण दर्शन प्रतिबिम्बित करता है। यही नहीं, प्रस्तावना का वैधानिक महत्व भी है। संविधान की व्याख्या करने में प्रस्तावना में निर्धारित उद्देश्य सहायक है। सर्वोच्च न्यायालय ने इसे स्वीकार किया है कि संविधान के निर्वयन में प्रस्तावना का प्रयोग किया जा सकता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि न्याय, स्वतंत्रता समानता व बंधुत्व वे आधारशिलाएं हैं जिन पर मानवाधिकारों के सम्पूर्ण विधिशास्त्र का भवन टिका हुआ है।

भारतीय संविधान में भारतीय जनमानस की इच्छाओं तथा अपेक्षाओं के अनुरूप मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया है। हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध न्यायाधीश श्री के0 सुब्बाराव ने कहा था– "मौलिक अधिकार परम्परागत प्राकृतिक अधिकारों का दूसरा नाम है।" भारतीय संविधान में लोगों को निम्नलिखित अधिकार दिए गए–

1.3 भारतीय संविधान में प्रदत्त नागरिकों के मूल अधिकार

भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को सात मूल अधिकार प्रदान किये गये किन्तु 44वें संवैधानिक संशोधन (1978) द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मूल अधिकार रूप में समाप्त कर दिया गया है। अब सम्पत्ति के अधिकार को एक वैधिक अधिकार के रूप में बनाये रखने के लिए संविधान में एक नया अनुच्छेद 300–क जोड़ा गया है। अतः सम्पत्ति का अधिकार अब केवल एक कानूनी अधिकार रह गया है। इस प्रकार अब भारतीय नागरिकों को 6 मूल अधिकार प्राप्त हैं : (1) समता का अधिकार, (2) स्वतंत्रता का अधिकार (3) शोषण के विरूद्ध अधिकार, (4) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, (5) संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार तथा (6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

1.3.1 समता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18 तक) :

(i) विधि के समक्ष समता– (अनुच्छेद 14)– अनुच्देद 14 के अनुसार "राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।"

(ii) धर्म, मूलवंश जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध– (अनुच्छेद 15)– अनुच्छेद 15 (1) में कहा गया है कि "राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।"

"सतीश चन्द्र बनाम भारतीय संघ' में उच्चतम न्यायालय ने अपना यह निर्णय किया कि अनुच्छेद 14 के अनुसार सभी व्यक्ति तथा वस्तुएं समान परिस्थितियों में स्थित होते हुए समान समझी जायेंगी चाहे उनको कुछ भी विशेषाधिकार मिले हुए हों।

अनुच्छेद 14 के द्वारा सब नागरिकों को विधि कानून के समक्ष समानता तथा कानून के द्वारा सब को समान संरक्षण का अधिकार दिया गया है, परन्तु उच्चतम न्यायालय ने अनेक अभियोग में यह निर्णय दिया है कि अनुच्छेद 14 राज्य को कानून के द्वारा निर्बल वर्गों के वर्गीकरण को नहीं रोकता है।

'केदारनाथ v/s बंगाल राज्य' नामक मामले में उच्चतम न्यायाल ने यह निर्णय दिया।

"संविधान के अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत जो कानून के समान संरक्षण की गारंटी दी गई है, उसका यह अभिप्राय नहीं है कि सारे कानून स्वरूप की दृष्टि से सामान्य हों और लागू करने में सब पर एक समान हों तथा राज्य को कानून के उद्देश्य व्यक्तियों और वस्तुओं में अन्तर करने तथा उनका वर्गीकरण का अधिकार न हो।"

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

अनुच्छेद 15(2) में कहा गया है कि "किसी भी नागरिक के साथ केवल धर्म मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर (क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश करने या (ख) पूर्णतः या अंशतः राज्य निधि से पोषित या साधारण जनता के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग करने के बारे में कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा। "

अनुच्छेद 15(3) के अनुसार स्त्रियों या बालकों के लिए राज्य द्वारा कोई विशेष उपबन्ध की व्यवस्था करने पर रोक नहीं है।

अनुच्छेद 15 में प्रथम संविधान संशेधन (1951) द्वारा 15(4) के रूप में यह व्यवस्था जोड़ी गयी कि इस अनुच्छेद की किसी बात से अथवा अनुच्छेद 29 (2) से राज्य पर सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए अथवा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबन्ध बनाने पर रोक नहीं होगी।

लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद 16): अनुच्छेद 16(1) के अनुसार राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से सम्बन्धित विषयों में सभी नागरिकों को अवसर की समता होगी। अनुच्छेद 16(2) में कहा गया है कि कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास का इनमें से किसी के आधार पर राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के लिए अपात्र नहीं होगा अथवा उससे भेदभाव नहीं किया जायेगा।

इस अनुच्छेद के तीन अपवाद हैं: (क) अनुच्छेद 16 (3) के अनुसार संसद चाहे विधि द्वारा किसी राज्य के या स्थानीय पद को वहीं के निवासियों के लिए आरक्षित कर सकती है। इस सम्बन्ध में विधि निर्माण का अधिकार केवल संसद को दिया गया है ताकि योग्यताएं पूरे देश में एक समान हों। इस विषय में उल्लेखनीय बात यह है कि यदि संसद के बजाय ऐसी विधि निर्माण का अधिकार राज्य के विधानमण्डलों को दे दिया जाता है तो यह सम्भावना थी कि एक राज्य दूसरे राज्य के नागरिकों को नौकरी पाने के अधिकार से वंचित कर सकता था।

(ख) अनुच्छेद 16 (4) में कहा गया है कि राज्य का पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबन्ध बनाने का अधिकार होगा। इस प्रकार राज्य पिछड़ी जातियों के लिए कुछ पद आरक्षित कर सकता है।

(ग) अनुच्छेद 16 (5) में कहा गया है कि इस अनुच्छेद की कोई बात ऐसी विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी, जो यह व्यवस्था करती है कि किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के कार्य से सम्बन्धित कोई पदधारी या उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का मानने वाला या विशिष्ट सम्प्रदाय का ही हो।

अन्तिम अपवाद की व्यवस्था 'धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार' के परिणामस्वरूप की गयी। यदि किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष के लोग कानून के आधार पर धर्म सम्प्रदाय से सम्बन्धित किसी संस्था में नौकरी का दावा करने लगे तो फिर धर्म की स्वतंत्रता से सम्बन्धित किसी संस्था में धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार का अन्त हो जायेगा।

(iv) अस्पृश्यता का अन्त (अनुच्छेद 17): अनुच्छेद 17 में कहा गया है कि "अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।"

संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार के अन्तर्गत समाज में अस्पृश्यता के रोग समाप्त करने के उद्देश्य से संसद ने सन् 1955 में 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम' पारित किया। इस अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित जातियों के साथ किए जाने वाले भेदभाव को अवैध ठहराना तथा उसके लिए उचित दण्ड की व्यवस्था करना है। सन् 1976 में इस अधिनियम में संशोधन कर इसका नाम 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम' कर दिया गया। सन् 1989 में इस कानून को और अधिक कठोर बनाते हुए इसे 'अनुसचित जाति व जनजाति निरोध कानून' नाम दे दिया गया।

(v) उपाधियों का अन्त (अनुच्छेद 18): अनुच्छेद 18 में यह व्यवस्था की गयी है कि" (1) राज्य, सेना या विद्या सम्बन्धी सम्मान के अलावा और कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा, (2) भारत को कोई नागरिक किसी विदेशी

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा, (3) कोई व्यक्ति जो भारत का नागरिक नहीं है, राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद को धारण करते हुए किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा, (4) राज्य के अधीन लाभ या विश्वास का पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से या उसके अधीन किसी रूप में कोई भी उपलब्धि या पद राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।" परन्तु भारत का कोई नागरिक राष्ट्रमण्डल के किसी भी देश से उपाधि ग्रहण कर सकता है और यह संविधान का उल्लंघन नहीं माना जायेगा।

1.3.2 स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19–22) :

भारतीय संविधान का उद्देश्य 'विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना है।' इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 तक 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' की व्यवस्था की गयी है। ये अनुच्छेद संविधान के मूल अधिकार के अध्याय के सर्वप्रमुख उपबन्ध है। इन्हें 'व्यक्ति स्वातंत्र्य का महाधिकार पत्र' कहा जाता है। इनमें से भी अनुच्छेद 19 सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

मूल संविधान के अनुच्छेद 19 द्वारा भारतीय नागरिकों को सात स्वतंत्रताएं प्रदान की गयी थीं। इनमें से छठी स्वतंत्रता 'सम्पत्ति के अर्जन, धारण एवं व्ययन' की स्वतंत्रता थी। 44वें संवैधानिक संशोधन (1978) द्वारा 'सम्पत्ति के मूल अधिकार' को जब मूल अधिकारों की श्रेणी से हटाकर केवल एक संवैधानिक व कानूनी अधिकार का रूप दिया गया तब उसके साथ–साथ 'स्वतंत्रता के अधिकार' के अन्तर्गत सम्पत्ति की स्वतंत्रता का लोप कर दिया गया। अब अनुच्छेद 19 'वाक्–स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण' शीर्षक के अन्तर्गत नागरिकों को 6 स्वतंत्रताओं का अधिकार प्राप्त है, जो निम्नलिखित हैं–

(i) वाक् एवं अभिव्यक्ति–स्वातन्त्र्य : अनुच्छेद 19 (1) (क) अनुसार भारत के सभी नागरिकों को वाक्–स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति–स्वातन्त्र्य का अधिकार होगा। यह अधिकार लोकतंत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण है और इसका क्षेत्र भी बहुत व्यापक है। अतः भारतीय संविधान में इस पर लगाई गयी सीमाओं के औचित्य की जांच आवश्यक है।

संविधान में वाक–स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति–स्वातंत्र्य के अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता और अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों, सार्वजनिक व्यवस्था शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय–अवमान, मानहानि या अपराध के लिए उत्तेजित करने पर राज्य द्वारा युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने हेतु कोई विधि बनाने से राज्य को रोका नहीं जायेगा।

'अभिव्यक्ति स्वातंत्रय' में 'प्रेस की स्वतंत्रता' भी अन्तर्निहित है, क्योंकि प्रेस अभिव्यक्ति का एक साधन है। 1975 के आपातकाल में प्रेस द्वारा संसद और राज्य विधानमण्डलों की कार्यवाही के प्रकाशन पर रोक लगा दी गयी थी, अब 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी है कि प्रेस संसद और राज्य विधानमण्डलों की कार्यवाही के प्रकाशन के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतंत्र है और राज्य के द्वारा इस सम्बन्ध में प्रेस पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकेगा। उच्चतम न्यायालय ने 10 फरवरी, 1995 के अपने ऐतिहासिक निर्णय में कहा है कि "वाक् एवं अभिव्यक्ति के स्वतंत्र अधिकार में शिक्षित करने, सूचना देने और मनोरंजन करने का अधिकार सम्मिलित है। इसमें खेल–कूद गतिविधियों के प्रसारण भी सम्मिलित हैं।"

(ii) शान्तिपूर्ण एवं निरायुध सम्मेलन की स्वतंत्रताः संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ख) में सभी नागरिकों को शान्तिपूर्ण तथा बिना शस्त्र के एकत्र होने का अधिकार दिया गया है। दूसरे शब्दों में नागरिक शान्तिपूर्ण तथा बिना शस्त्र के सभा या सम्मेलन तथा जुलूस एवं प्रदर्शन का आयोजन कर सकते हैं। यह एक महत्वपूर्ण अधिकार है क्योंकि इसके अभाव में वाक् एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्रय के अधिकार यथार्थ नहीं हो सकते।

यह अधिकार भी असीमित नहीं है। राज्य द्वारा इस अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता और अखण्डता या सार्वजनिक व्यवस्था के हितों में युक्ति–युक्त निर्बन्धन (प्रतिबन्ध) लगाया जा सकता है अथवा राज्य वैसे प्रतिबन्ध लगाने वाली विधि बना सकता है।

(iii) संस्था (संगम) या संघ बनाने की स्वतंत्रताः संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ग) के द्वारा सभी नागरिकों को संस्था या संघ बनाने का अधिकार दिया गया है। इस अधिकार पर भी प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं। इस उपखण्ड द्वारा दिये गये अधिकार के प्रयोग पर राज्य भारत की प्रभुता और अखण्डता या सार्वजनिक

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

व्यवस्था या सदाचार के हितों में युक्ति युक्त निर्बन्धन (प्रतिबन्ध) लगा सकता है अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बना सकता है।

(iv) भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण की स्वतंत्रताः संविधान अनुच्छेद 19(1) (घ) के अनुसार सभी नागरिकों को भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग में अबाध संचरण (घूमने–फिरने) की स्वतंत्रता प्राप्त है। यह अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सार है। इस स्वतंत्रता पर भी राज्य युक्ति–युक्त निर्बन्धन लगा सकता है।

(v) भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भी भाग में निवास करने और बस जाने की स्वतंत्रताः अनुच्छेद 19 (1) (ङ.) द्वारा नागरिकों को भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने या बस जाने की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। यह स्वतंत्रता अबाध संचरण की व्यवस्था की परिपूरक है।

उपखण्ड (घ) और (ङ) दिये गये अधिकारों के प्रयोग पर राज्य साधारण जनता के हितों में या किसी अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए युक्तियुक्त निर्बन्धन लगा सकता है या वैसे निर्बन्धन लगाने वाली विधि बना सकेगा।

(vi) मूल संविधान में उल्लिखित 'सम्पत्ति के अर्जन, धारण एवं व्ययन की स्वतंत्रताः 44वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा समाप्त कर दिया गया और इसे विधिक अधिकार के रूप में अनु0 300 (A) में अन्तःस्थापित कर दिया गया है।

(vii) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार की स्वतंत्रताः अनुच्छेद 19 (1) (छ) द्वारा सभी नागरिकों को वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। वस्तुतः इन स्वतंत्रताओं को प्रत्याभूत कर संविधान निर्माताओं ने एक वास्तविक प्रजातंत्र का निर्माण करने का कार्य किया है। राज्य साधारण जनता के हितों में इस अधिकार के प्रयोग पर युक्तियुक्त निर्बन्धन लगा सकता है अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने हेतु कोई विधि बना सकता है। राज्य उक्त व्यवसायों को करने के लिए आवश्यक योग्यताएं निर्धारित कर सकता है अथवा किसी व्यापार, कारोबार, उद्योग या सेवा को पूर्णतः या अंशतः स्वयं अपने अधिकार में ले सकता है या अपने द्वारा नियंत्रित किसी निगम को सौंप सकता है।

इस प्रकार संविधान द्वारा प्रदत्त उपर्युक्त स्वतंत्रताएं असीमित नहीं हैं और प्रत्येक पर कुछ न कुछ निर्बन्धन लगा दिये गये हैं, किन्तु इन निर्बन्धनों के होते हुए भी ये स्वतंत्रताएं सुरक्षित हैं। इन स्वतंत्रताओं पर केवल युक्ति–युक्त निर्बन्धन ही लगाये जा सकेंगे। कोई निर्बन्धन युक्ति–युक्त है अथवा नहीं, इसका निर्णय करने का अधिकार न्यायालय को है। न्यायालय यदि यह देखता है कि लगाया गया निर्बन्धन युक्ति–युक्त नहीं है तो वह उसे अवैध घोषित कर सकता है।

उच्चतम न्यायालय के निर्णय

रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य तथा वृजभूषण बनाम दिल्ली नामक मामलों में सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि "किसी व्यक्ति की भाषा तथा विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता को मात्र तभी कम किया जा सकता है और राज्य उस पर रूकावटें लगा सकता है जब उस कार्य से राज्य की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो जाए या व्यक्ति का उद्देश्य सरकार को उलटने का हो।" वहीं दूसरी ओर चिन्तामणि बनाम मध्य प्रदेश राज्य नामक केस में सुप्रीम कोर्ट ने यह कहा, कि "विधानमण्डल द्वारा यह निश्चित करना कि उचित रूकावट क्या है, अन्तिम नहीं है। कोई रूकावटें जो विधानमण्डल ने लोगों की स्वतंत्रता पर लगाई हैं, वे उचित हैं या नहीं, यह देखना न्यायालय का काम है। मौलिक अधिकारों के विषय में, सुप्रीम कोर्ट निगरानी रखती है और संविधान में दिए हुए अधिकारों की रक्षा करती है। इन अधिकारों का प्रयोग करती हुई सुप्रीम कोर्ट विधानमण्डल के किसी भी एक्ट को रद्द कर सकती है। यदि वह संविधान द्वारा दी हुई स्वतंत्रताओं का उल्लंघन करें।" संविधान में यह भी व्यवस्था की गई है कि निवारक निरोधक कानून के अतिरिक्त यदि और किसी कानून के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाए, तो सरकार को उस व्यक्ति के विरूद्ध आरोप लगाकर मुकदमा चलाना पड़ेगा।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता

व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के अन्तर्गत अनुच्छेद 20, 21 तथा 22 द्वारा प्रत्याभूत मौलिक स्वतंत्रताएं भी आती हैं:

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

(i) अपराधों के लिए दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण (अनुच्छेद 20): संविधान के अनुच्छेद 20 में कहा गया है कि "(1) किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए तब तक दोषी सिद्ध नहीं ठहराया जा जाएगा, जब तक कि उसने अपराध करने के समय लागू किसी विधि का, अतिक्रमण नहीं किया हो। (2) किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दण्डित नहीं किया जाएगा। (3) किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरूद्ध साक्षी होने (गवाही देने) के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।"

(ii) प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण (अनुच्छेद 21): संविधान के अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि "किसी व्यक्ति को उसके प्राण (जीवन) या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्य किसी प्रकार से नहीं"

44वें संवैधानिक संशोधन (1979) द्वारा इस अधिकार को और अधिक सुरक्षित बना दिया गया है। अब आपात उद्‌घोषणा के काल में भी जीवन और दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार को समाप्त या सीमित नहीं किया जा सकता है।

हमारे उच्चतम न्यायालय ने अपने अनेक निर्णयों में अनुच्छेद 21 का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक कर दिया है। अब इस अधिकार (जीवन के अधिकार) के अन्तर्गत गरिमामय जीवन का अधिकार, स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार तथा अच्छे स्वास्थ्य का अधिकार इत्यादि शामिल है। इसलिए दिल्ली में शहर में पर्यावरण दूषित करने वाले सारे उद्योग बन्द कर दिये गये हैं। यहां तक कि प्रदूषण करने वाले स्वचालित वाहनों पर भी रोक लगा दी गई है। वे ही वाहन चल सकेंगे जो पर्यावरण को दूषित नहीं करेंगे। राजस्थान में भी सरकार ने इस निर्णय से प्रभावित होकर वन क्षेत्रों में किये जाने वाले खनन कार्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

(iii) कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण (अनुच्छेद 22): अनुच्छेद 22 द्वारा बन्दी बनाये जाने वाले व्यक्ति को कुछ संरक्षण प्रदान किये गये हैं। संविधान में कहा गया है कि : (1) किसी व्यक्ति को जो गिरफ्तार किया गया है, ऐसी गिरफ्तारी के कारणों से यथाशीघ्र अवगत कराए बिना बन्दीगृह में निरूद्ध नहीं रखा जायेगा अथवा उसे अपनी रूचि के वकील से परामर्श करने तथा अपने बचाव के लिए प्रबन्ध करने के अधिकार से वंचित नहीं रखा जाएगा। (2) प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो गिरफ्तार किया गया है तथा बन्दीगृह में रखा गया है, उसे गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर, गिरफ्तारी से 24 घण्टे की अवधि में निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जायेगा और ऐसे व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के प्राधिकार के बिना उक्त अवधि से अधिक अवधि के लिए बन्दीगृह में नहीं रखा जायेगा।

किन्तु उपरोक्त दोनों प्रावधान ऐसे व्यक्तियों पर लागू नहीं होंगे, जो : (क) विदेश का है, अथवा (ख) जिसे निवारक निरोध सम्बन्धी अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार/निरूद्ध किया गया है।

निवारक निरोध

संविधान के अनुच्छेद 22 के खण्ड (4) से (7) तक निवारक निरोध की चर्चा की गयी है। यह भारतीय संविधान की एक अत्यधिक विवादास्पद धारणा है। संविधान में निवारक निरोध की परिभाषा नहीं दी गयी है फिर भी यह कहा जा सकता है कि निवारक निरोध का तात्पर्य बिना किसी न्यायिक प्रक्रिया के नजरबन्दी से है। विशेष बात यह हे कि भारतीय संविधान के अनुसार निवारक निरोध शान्तिकाल और आपातकाल दोनों में लागू होगा। संविधान निर्माता इस बात से सजग थे कि निवारक निरोध व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए अत्यधिक खतरनाक सिद्ध हो सकता है। अतः उन्होंने संविधान में इसके संरक्षण की व्यवस्था भी की:

(1) संविधान के अनुच्छेद 22 (4) के अनुसार निवारक का उपबन्ध करने वाली कोई विधि के अनुसार किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक अवधि के लिए निरुद्ध नहीं किया जायेगा जब तक कि ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बने (जो उच्च्य न्यायालय के न्यायाधीश हैं या न्यायाधीश रह चुके हैं या न्यायाधीश होने की योग्यता रखते हैं।) सलाहकार बोर्ड ने तीन मास की अवधि की समाप्ति से पहले यह रिपोर्ट नहीं दी है कि उसकी राय में ऐसे निरोध के पर्याप्त कारण हैं।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

(2) संविधान के अनुच्छेद 22 (5) में कहा गया है कि निवारक निरोध का उपबन्ध करने वाली विधि के अनुसार निरूद्ध व्यक्ति को यथा शीघ्र सूचित किया जायेगा कि किन आधारों पर उसे निरूद्ध करने का आदेश दिया गया है और निरूद्ध व्यक्ति को उस आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र अवसर दिया जायेगा।

निवारक निरोध उचित है या नहीं, इसकी जांच करने का अधिकार न्यायाधीश को प्राप्त है।

(3) संविधान के अनुच्छेद 22 (6) में यह कहा गया है कि खण्ड (5) की किसी बात से आदेश करने वाले प्राधिकारी के लिए ऐसे तथ्यों को प्रकट करना आवश्यक नहीं होगा जिन्हें प्रकट करना वह लोकहित के विरूद्ध समझता है।

(4) संविधानः अनुच्छेद 22 खण्ड (7) द्वारा संसद को निवारक निरोध के सम्बन्ध में विशेष अधिकार प्रदान किया गया है। संसद विधि द्वारा निवारक निरोध की अवधि को सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किये बिना तीन महीने से अधिक बढ़ा सकती है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि संसद द्वारा समय एवं परिस्थिति के अनुसार निवारक निरोध अधिनियम पारित किये जा सकते हैं। संविधान की समवर्ती सूची में दिए जाने के कारण राज्य सरकारों को भी ऐसा ही अधिनियम बनाने का अधिकार प्राप्त है। किन्तु प्रावधान में स्थायी रूप से 'निवारक निरोध अधिनियम' बनाने का कोई प्रावधान नहीं है।

वस्तुतः निवारक निरोध 'एक भरी हुई बन्दूक' के समान है जिसे व्यक्ति की रक्षा व व्यक्ति की हत्या दोनों कामों में उपयोग किया जा सकता है। अतः इसके प्रयोगकर्त्ताओं को काफी सावधानी बरतनी चाहिए।

1.3.3 शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 और 24):

संविधान में यह व्यवस्था भी की गयी है जिससे कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे का शोषण नहीं कर सके।

(i) मानव के दुर्व्यवहार एवं बलात् श्रम का प्रतिषेधः **संविधान के अनुच्छेद 23 में कहा गया कि:**

(1) मानव का दुर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य श्रम निषिद्ध किया जाता है और इसका कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अन्तर्गत दण्डनीय होगा। भारत में सदियों से बेगार तथा दासता की प्रथ किसी न किसी रूप में चली आयी थी जिसके अनुसार पिछड़ी हुई जातियों तथा खेतिहर मजदूरों से बेगार लिया जाता था और उसके साथ दुराचार किया जाता था। भारत के संविधान के अन्तर्गत शोषण के इन रूपों को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया है।

(2) इस अधिकार का एक महत्वपूर्ण अपवाद यह है कि अनुच्छेद 23 (2) के अनुसार राज्य सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अनिवार्य सेवा लागू कर सकता है। ऐसी सेवा लागू करते समय राज्य धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

(ii) कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेधः **अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जायेगा अथवा किसी अन्य जोखिम भरे काम में नहीं लगाया जायेगा।**

भारत में शोषण का एक प्रचलित रूप 'बंधुआ मजदूर' है, जिसे समाप्त करने के लिए कुछ कदम उठाये गये हैं। 1997 में न्यायालयों से बाल प्रथा का निषेध करने पर बहुत बल दिया है जिसके कारण सरकार बाल श्रम को समाप्त करने की दिशा में प्रयत्नशील है।

1.3.4 धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28)

संविधान की प्रस्तावना में 'विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता' पर बल दिया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक में 'धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार' प्रदान किया गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत निम्नलिखित व्यवस्थाएं की गई हैं:

(i) अन्तःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता : **अनुच्छेद 25 (1) में कहा गया है कि सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबन्धों**

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

के अधीन रहते हुए, व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतंत्रता और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने का समान अधिकार होगा।

अनुच्छेद 25 (2) के अनुसार, राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह उसके आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक या अन्य लौकिक कार्यकलापों को व्यवस्थित या निर्बन्धित कर सकता है। राज्य हिन्दुओं की आर्थिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों तथा श्रेणियों के लिए खोल सकता है। दूसरा यह कह सकता है कि हिन्दू समाज के सभी वर्गों के लोगों के लिए मन्दिरों व अन्य स्थानों में समान रूप से प्रवेश करने का अधिकार होगा और इन संस्थाओं में भी व्यक्ति को प्रवेश करने से नहीं रोका जा सकेगा।

संविधान में इस सम्बन्ध में दो स्पष्टीकरण दिए गये हैं: (1) कृपाण धारण और लेकर चलना सिक्ख धर्म का अंग समझा जायेगा तथा (2) 'हिन्दू' शब्द के अन्तर्गत सिक्ख, जैन या बौद्ध धर्म के अनुयायी आते हैं और हिन्दुओं की धारणा संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ इसके अनुसार ही लगाया जायेगा।

(ii) धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध की स्वतंत्रता: अनुच्छेद 26 सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक समुदाय या किसी अनुभाग को अग्रलिखित अधिकार प्रदान करता है:

(क) धार्मिक और धर्मार्थ प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना तथा उनके पोषण का अधिकार।

(ख) अपने धर्म सम्बन्धी कार्यों के अर्जन और स्वामित्व का अधिकार।

(ग) चल और अचल सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व का अधिकार।

(घ) ऐसी सम्पत्ति का विधि के अनुसार प्रशासित करने का अधिकार।

वस्तुतः अनुच्छेद 26, अनुच्छेद 25 का ही एक पूरक सिद्धान्त है तथा संस्थाओं की स्थापना, पोषण तथा उनकी व्यवस्था करने के अधिकार के अभाव में इस स्वतंत्रता का अधिकार अर्थहीन हो जायेगा।

(iii) किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों की अदायगी में स्वतंत्रता: अनुच्देद 27 में कहा गया है कि राज्य द्वारा किसी भी व्यक्ति को करों की अदायगी के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा जिसकी आय किसी विशिष्ट या धार्मिक सम्प्रदाय की अभिवृद्धि या पोषण में व्यय करने के लिए विशिष्ट रूप से विनियोजित कर दी गयी हो।

(iv) राजकीय या राज्य से सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा पर रोक: अनुच्छेद 28 में कहा गया है कि : (1) राज्य निधि से पूरी तरह संचालित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। (2) यह बात किसी शिक्षा संस्था पर लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन राज्य करता है, किन्तु जो ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुई है जिसके अनुसार संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है। (3) राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य आर्थिक सहायता प्राप्त करने वाली शिक्षा संस्था में किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए या उस संस्था में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जायेगा जब कि उस व्यक्ति ने या यदि वह अवयस्क है जो उसके संरक्षक ने, इसके लिए सहमति नहीं दे दी हो।

यहां यह उल्लेखनीय है कि अन्य अधिकारों की भांति धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार भी पूरी तरह प्रतिबन्ध रहित नहीं है। राज्य सार्वजनिक व्यवस्था, सद्व्यवहार एवं स्वास्थ्य आदि के हित में इसके प्रयोग पर हस्तक्षेप कर सकता है।

1.3.5 संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29 और 30)

संविधान द्वारा भारत के सभी नागरिकों को संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार प्रदान किया गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत निम्नलिखित व्यवस्थाएं की गयी है–

(i) अल्पसंख्यक– वर्ग के हितों का संरक्षण: संविधान के अनुच्छेद 29 में कहा गया है कि : (1) जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा।

(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जायेगा।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

(ii) अल्पसंख्यक– वर्ग को शिक्षा संस्थाओं की स्थापना का अधिकारः **अनुच्छेद 30 में कहा गया है कि : (1) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा उनके प्रशासन का अधिकार होगा। (2) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरूद्ध इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक–वर्ग के प्रबन्ध में है।**

44वें संवैधानिक संशोधन (1979) द्वारा यह व्यवस्था की गयी है कि अल्पसंख्यक–वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था की सम्पत्ति को यदि राज्य अनिवार्य रूप से अर्जित करता है तो इसके लिए विधि बनाते समय राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसी उत्पत्ति के अर्जन के लिए विधि द्वारा नियत रकम इतनी हो जिससे कि इस खण्ड के अधीन आधारभूत अधिकार सीमित या समाप्त न हो जाए।

1.3.6 संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32):

संविधान के मूल अधिकारों का केवल उल्लेख करना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उनके क्रियान्वयन के लिए संवैधानिक साधनों की व्यवस्था भी उससे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, उनके बिना मूल अधिकारों का कोई महत्व ही नहीं रह जायेगा। अतः संविधान–निर्माताओं ने इस उद्देश्य से संवैधानिक उपचारों के अधिकार को संविधान में स्थान दिया है।

अनुच्छेद 32 में संवैधानिक उपचारों के अधिकार का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है:

(i) इस भाग में दिए गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए समुचित कार्यवाहियों को उच्चतम न्यायालय की शरण लेने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।

(ii) इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से सिकी को प्रवर्तित करने के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसे निर्देश, आदेश या लेख, जनके अन्तर्गत बंदी प्रत्यक्षीरकण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण–लेख, जो भी उचित हो, निकालने की शक्ति होगी।

(iii) संसद को यह अधिकार होगा कि वह, उच्चतम न्यायालय की शक्तियों पर विपरीत प्रभाव डाले बिना, विधि द्वारा अन्य न्यायालयों को आदेश या लेख जारी करने वाली शक्तियां प्रदान कर सकती है।

(iv) संवैधानिक उपचारों का अधिकार संविधान में किये गये प्रावधान के अतिरिक्त अन्य किसी दशा में निलम्बित नहीं किया जायेगा।

साधारण काल में व्यक्ति अपने मूल अधिकरों की रक्षा के लिए न्यायालय में शरण ले सकता है, किन्तु अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत युद्ध या बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह की स्थिति में जबकि राष्ट्रपति द्वारा आपात की उद्घोषणा कर दी गई हो, नागरिकों के मूल अधिकारों को स्थगित किया जा सकता है तथा मूल अधिकारों की रक्षा के लिए व्यक्ति न्यायालय की शरण नहीं ले सकेंगे। यहां उल्लेखनीय बात यह है कि 'जीवन दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार' आपातकाल में भी स्थगित नहीं किये जा सकते हैं।

1.4 न्यायालय द्वारा जारी लेख–

नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के द्वारा पांच प्रकार के लेख जारी किए जा सकते हैं।

(अ) बन्दी प्रत्यक्षीकरण : **व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए यह लेख सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस लेख द्वारा न्यायालय बन्दी बनाने वाले अधिकारी को यह आदेश देता है कि बन्दी बनाये गये व्यक्ति को एक निश्चित तिथि स्थान पर न्यायालय में उपस्थित किया जाए, जिससे न्यायालय यह निर्णय कर सके कि किसी व्यक्ति को बन्दी बनाये जाने के कारण वैध हैं या अवैध। इस तरह इस लेख में मुख्य उद्देश्य अवैध रूप से बन्दी बनाए गये व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करना अथवा मुक्ति दिलाना है। यह लेख सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त निजी व्यक्तियों संगठनों के विरूद्ध भी जारी किया जा सकता है।**

(ब) परमादेश– **परमादेश का शाब्दिक अर्थ है: "हम आज्ञा देते हैं" परमोदश का लेख उस समय जारी किया जाता है जब कोई व्यक्ति या संस्था अपने सार्वजनिक दायित्व का निर्वाह न कर रहा हो। अतः इस लेख द्वारा प्राधिकारियों को अपने विधिवत् दायित्वों का निर्वाह करने का आदेश दिया जाता है।**

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

(स) प्रतिषेध लेख– यह लेख उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा निम्न न्यायालय को उसके अधिकार क्षेत्र अथवा प्राकृतिक न्याय सिद्धान्त का उल्लंघन करने से रोकने के लिए जारी किया जाता है। उदाहरण स्वरूप उच्च न्यायालय निम्न न्यायालय को किसी मुकदमे की सुनवाई करने से रोक सकता है, जो उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है। यह लेख ऐसी संस्था के विरूद्ध भी जारी किया जा सकता है जिसे अर्ध–न्यायिक अधिकार प्राप्त हैं।

(द) उत्प्रेरण लेख– इस लेख द्वारा किसी निम्न न्यायालय या अद्ध–न्यायिक प्राधिकारी को उसके समक्ष विचारार्थ किसी मुकदमे को ऊपर के न्यायालय में भेज देने का आदेश दिया जाता है। इसका प्रयोग उस समय किया जाता है जब उच्च न्यायालय यह अनुभव करे कि कोई मुकदमा निम्न न्यायालय के अधिकार–क्षेत्र के बाहर का है अथवा उस न्यायालय में सही न्याय मिलने की सम्भावना नहीं है। इस अभिलेख द्वारा आज्ञा देकर उच्च न्यायालय निम्न न्यायालयों से किन्हीं विवादों के सम्बन्ध में अपने पास सूचना मंगा सकता है।

(ड) अधिकार पृच्छा– इसका शब्दिक अर्थ है "किस अधिकार से?" इसके अनुसार उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय किसी ऐसे पदाधिकारी से जिसको उस पद पर कार्य करने का वैधानिक रूप से अधिकार नहीं है, यह पूछ सकता है कि वह किस अधिकार से उस पद पर कार्य कर रहा है और जब तक न्यायालय सन्तुष्ट नहीं हो जाए, वह पदाधिकारी के कार्य करने पर रोक लगा सकता है।

सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों की तुलनात्मक स्थिति– मानव अधिकारों के अन्तर्गत सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों की भारतीय संविधान, सार्वभौमिक घोषणा एवं सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा में किये गए प्रावधानों से सम्बन्धित अनुच्छेदों का तुलनात्मक विवरण निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी–1

भारतीय संवैधानिक कानून	मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता	सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा
अनुच्छेद 14	अनुच्छेद 7	अनुच्छेद– 14
अनुच्छेद 15	अनुच्छेद 2	अनुच्छेद– 26
अनुच्छेद 15	अनुच्छेद 21 (2)	अनुच्छेद– 25 (c)
अनुच्छेद 16 (1)	अनुच्छेद 19	अनुच्छेद 19 (1) (2)
अनुच्छेद 19 (1) (a)	अनुच्छेद 20 (1)	अनुच्छेद 21
अनुच्छेद 19 (1) (b)	अनुच्छेद 23 (4)	अनुच्छेद 21 (1)
अनुच्छेद 19 (1) (c)	अनुच्छेद 13 (1)	अनुच्छेद 12 (1)
अनुच्छेद 19 (1) (d)	अनुच्छेद 13	अनुच्छेद 12
अनुच्छेद 19 (1) (e)	अनुच्छेद 23 (1)	–
अनुच्छेद 19 (1) (g)	अनुच्छेद 11 (2)	अनुच्छेद 15 (1)
अनुच्छेद 20 (1)	अनुच्छेद–	अनुच्छेद 14 (7)
अनुच्छेद 20 (2)	अनुच्छेद–	अनुच्छेद 14 (3) (g)
अनुच्छेद 20 (3)	अनुच्छेद– 3	अनुच्छेद 6 (1) & 9 (1)
अनुच्छेद 21	अनुच्छेद– 9	अनुच्छेद 9 (2), (3) and (4)
अनुच्छेद 22	अनुच्छेद– 4	अनुच्छेद 8

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

अनुच्छेद 23 and 24 अनुच्छेद 25–28 अनुच्छेद 29 (1) अनुच्छेद 32	अनुच्छेद– 16 अनुच्छेद– 27 (1) (2) अनुच्छेद– 10	अनुच्छेद 16 (1) अनुच्छेद 27 अनुच्छेद 14 (1)

1.5 नीति निर्देशक तत्व एवं मानवाधिकार

भारतीय संविधान के भाग–4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों का उपबंध किया गया है, जो देश के शासन में उन मूलभूत लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं, जिन्हें राज्य को प्राप्त है। ये नकारात्मक नहीं सकारात्मक हैं किन्तु न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता। 1966 के आर्थिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय अनुबंध में समाविष्ट अधिकारों को भाग–3 में मूल अधिकारों के रूप में जगह नहीं मिली है, इनको भाग–4 के अन्तर्गत राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों के रूप में समाविष्ट किया गया है। वस्तुतः नीति–निदेर्शक तत्व ही मानवाधिकारों के व्यापक आयाम को पुष्ट करते हैं। यदि हम 1966 के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय अनुबन्धों को लें तो उसके अधिकांश प्रावधान नीति–निर्देशक तत्वों से मेल खाते हैं जैसे– स्त्री–पुरूष दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन (39 d) बाल श्रम का निषेध (39 e), कार्य न्यायपूर्ण एवं मानवोचित दशाएं उपलब्ध कराना, मातृत्व अवकाश (42), निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा (45) आदि। इसके अलावा संविधान निर्माताओं ने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए अनेक ऐसे उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को राज्य के समक्ष रखा है जो भौतिक संसाधन होने पर उन्हें लागू करे और भारत में 'सामाजिक क्रान्ति आए। अन्य निदेशक तत्वों में– धन के केन्द्रीकरण को रोकना, उद्योगों के प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी दुर्बल वर्गों, विशेषतः अनुसूचित जाति और जनजातियों के आर्थिक व शैक्षिक हितों का प्रोन्नयन आदि ऐसे हैं, जिन्हें स्वतंत्रता–पश्चात् राज्य द्वारा अनेक विधान बनाकर प्राप्त करने की चेष्टा की है। मानवाधिकारों के विशेष सन्दर्भ में आलोचकों द्वारा यह बात बार–बार उद्धृत की जाती है कि वास्तविक मानवाधिकारों को संविधान निर्माताओं ने भविष्य के सहारे छोड़ दिया है इनको न्यायालयों द्वारा प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता और जब तक देश में सामाजिक–आर्थिक क्रान्ति की प्रस्तावना करने वाले नीति–निदेशक तत्वों को लागू नहीं किया जाता, तब तक मानवाधिकारों के सन्दर्भ में भारतीय प्रयास अधूरे हैं– आदि–आदि। वस्तुतः देश की आर्थिक स्थिति एवं भौतिक संसाधनों को देखते हुए इन लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को धीरे–धीरे लागू किया जाना था। वस्तुतः राज्य के ये नीति–निर्देशक तत्व एक ऐसे समतामूलक समाज का स्थापना की प्रस्ताव करते हैं जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर आधारित हों।

यद्यपि नीति–निर्देशक तत्व न्यायालयों द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते अर्थात् ये 'न्याय–अयोग्य' है किन्तु ये देश के शासन में 'मूलभूत' है और कोई भी सरकार इनकी अवहेलना नहीं कर सकती नहीं तो अगले चुनाव में जनता उन्हें जवाब देगी, जैसा कि संविधान सभा में बोलते हुए अम्बेडकर ने कहा था। 1973 के पश्चात् सामने आई न्यायिक सोच एवं आधारभूत ढांचे के सिद्धान्त' से निरन्तर नीति–निर्देशक तत्वों की महत्ता बढ़ी है और अनुच्छेद (39 b) एवं (39 c) को एक प्रकार से मूल अधिकारों पर वरीयता प्राप्त है अर्थात राज्य यदि अनुच्छेद (39 b) एवं (39 c) के प्रवर्तन के लिए कोई कारण बताता है तो उसे इस आधार पर शून्य या अविधिमान्य नहीं घोषित किया जा सकता कि वह भाग–3 में दिए गए नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है। समसामयिक वर्षों में कुछ नीति–निर्देशक तत्वों को मूल अधिकारों की प्रास्थिति प्राप्त हो गई है। वस्तुतः नीति–निर्देशक तत्वों के विधिशास्त्र का दर्शन आय अवसर एवं प्रास्थिति की असमानता का उन्मूलन एवं न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था पर आधारित कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। उदाहरणार्थ 6–14 वर्ष तक बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क व अनिवार्य कर दी गई है। (शिक्षा का अधिकार– 21– A) और इसे अब मूल अधिकार का दर्जा प्राप्त हो गया है। इसी प्रकार निःशुल्क विधिक सहायता एवं राज्य के खर्चे पर वकील की सेवाओं को गरीबों को प्रदान करना कि प्रास्थिति भी मूल अधिकार की हो गई है। इन सब महत्वपूर्ण विकासों के अलावा बालश्रम के निषेध, अनुसूचित जाति व जनजातियों के कल्याण के लिए विशेष प्रावधान कानून बने हैं और समान कार्य के लिए समान वेतन अधिनियम, 1976 भी अधिनियमित किया गया है। वस्तुतः भारत में मानवाधिकारों की स्थिति का सच्चा आइना नीति–निर्देशक तत्व दिखाते हैं, जिस दिन भारत में इतने भौतिक संसाधन हो जाए रियेता पूरी तरह से लागू हो पाए, उस दिन वास्तव में भारत में मानवाधिकारों का सच्चा अवतरण होगा।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1.6 भारत में मानवाधिकार एवं अन्य वैधानिक प्रावधान

भारत में संघ सरकार एवं राज्य सरकारों ने समय–समय पर ऐसे विभिन्न अधिनियम अधिनियमित किए हैं, जिनका उद्‌देश्य रहा है। जैसे नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 अनुसूचित जातियों के हितों और अधिकारों को संरक्षित करता है तथा उन्हें समाज में अन्य वर्गों के समान ही स्थान देता है। इसमें अस्पृश्यता को एक "विशेष अपराध" घोषित किया गया है। इसी प्रकार, 1989 का अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति (क्रूरताओं से संरक्षण) अधिनियम के शिकार व्यक्तियों को राहत एवं पुनर्वास दिए जाने की भी व्यवस्था भी की गई है। इस सम्बन्ध में हालिया वर्षों में विशेष अधिनियम 'नारी अशिष्ट चित्रण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986 का उल्लेख भी किया जा सकता है। यह अधिनियम नारी के अशिष्ट अभिचित्रण वाले विज्ञापनों, प्रकाशनों, लेखन–सामग्रियों, चित्रों आकृतियों या किसी अन्य तरीके से अभिचित्रण को दंडनीय घोषित करता है। 1987 का सती प्रथा (निषेध) अधिनियम सती प्रथा के प्रतिषेध हेतु कठोर प्रावधान करता है तथा इसके उदात्तीकरण पर रोक लगाता है। 1987 का मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम मानसिक रूप से रूग्ण व्यक्तियों की देखभाल एवं उपचार हेतु अनेक प्रावधान करता है। प्रसव पूर्व भ्रूण–परीक्षण तकनीक (विनियमन एवं दुरूपयोग के प्रतिषेध) अधिनियम 1994, कन्या भ्रूण हत्या पर रोक लगाने हेतु प्रभावी उपाय करता है।

इसके अलावा बाल न्याय अधिनियम (2000) एक अन्य विधान है जो उपेक्षित एवं बाल–अपराधियों की देखभाल, संरक्षण, उपचार एवं पुनर्वास हेतु विशेष प्रावधान करता है।

बालश्रम (निवारक एवं प्रतिषेध) अधिनियम, 1986 बच्चों को कुछ निश्चित श्रेणीबद्ध व्यवसायों एवं प्रक्रमों में रोजगार करने की मनाही करता है। यह बालश्रम की दशाओं को भी विनियमित करता है। इसी प्रकार बंधुआ श्रम (प्रतिषेध) अधिनियम समाज के दुर्बल वर्गों को शारीरिक एवं आर्थिक शोषण से बचाने हेतु बलात् श्रम के सभी रूपों का प्रतिषेध करता है।

भारत में कई ऐसे श्रम कानून अधिनियमित किए गए हैं जो श्रमिकों और कर्मचारियों को कुछ निश्चित सुविधांए एवं लाभ मुहैया कराते हैं। इन सुविधाओं एवं प्रतिलाभों में स्वास्थ्य, सुरक्षा, कल्याण, काम के घण्टे, प्रसूति एवं मातृत्व अवकाश तथा महिलाओं के लिए मजदूरी वेतन की संरचना आदि शामिल हैं। बाल एवं महिला सहित मानव श्रम को विनियमित करने वाले अन्य कुछ प्रमुख विधान हैं–

1. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947
2. मजदूरी–वेतन का भुगतान अधिनियम, 1936
3. कारखाना अधिनियम, 1948
4. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1988

उपरोक्त चारों अधिनियम मजदूरों/श्रेमिकां की श्रम दशाओं एवं वेतन को विनियमित करते हैं। इसी प्रकार 1926 का ट्रेड यूनियन एक्ट कार्य दशाओं एवं जीवन स्तर को सुधारने के उद्‌देश्य से मजदूर–संगइनों (ट्रेड यूनियन) को गठित करने का प्रावधान करता है। ये सभी विधान 1966 के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के प्रावधानों एवं मूल भावना से मेल खाते हैं।

उपरोक्त वैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त इस दिशा में बोनस भुगतान अधिनियम, 1965 कामगार क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1926, मातृत्व लाभ अधिनियम 1911 का भी नाम लिया जा सकता है जो मानव एवं विभिन्न मानव समूहों के मानवाधिकारों को संरक्षित करते हैं। 1976 का समान मानदेय अधिनियम समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त पर आधारित है जो एक संवैधानिक आदेश भी है।

भारतीय श्रम कानून बच्चों के मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु भी प्रभावी प्रावधान करते हैं। 1948 के कारखाना अधिनियम का सैक्शन–23 बच्चों को खतरनाक मशीनों में काम कराने/करने की मनाही करता है। इसी प्रकार इसी अधिनियम का सैक्शन–27 बच्चों एवं महिलाओं को सती कपड़ों के कारखानों में काम करने से मनाहीं करता है। इस अधिनियम में महिलाओं एवं बच्चों सहित श्रमिकों के कल्याण हेतु अनेक प्रावधान किए गए हैं।

भारत में मानवाधिकारों के विशेष सन्दर्भ में कतिपय अन्य वैधानिक उपाय भी किए गए हैं– जैसे–

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1. जाति निर्योग्यता (उन्मूलन) अधिनियम, 1950,
2. अनैतिक व्यापार (प्रतिषेध) अधिनियम, 1956,
3. बाल अधिनियम, 1960
4. दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961

इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण समकालीन विधानों का उल्लेख किया जा सकता है, जिनके माध्यम से भारत में विभिन्न वर्गों एवं समूहों के मानवाधिकारों का संरक्षण किया जा रहा है। इनमें राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम 1992, तथा मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 का नाम लिया जा सकता है।

1.7 मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993

मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार इस विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को अन्तर्जात रूप से प्राप्त है। इस भावना का प्रतिबिम्ब 1948 के संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणा में देखा जा सकता है। इस घोषणा के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र के बैनर तले विश्व के सभी व्यक्तियों के मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु अनेक समझौते एवं प्रसंविदाएं की गयी हैं। भारत प्रारम्भ से ही मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणापत्र (UDHR) तथा 1966 के नागरिक व राजनीतिक अधिकार प्रसंविदा एवं आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा का हस्ताक्षरकर्ता एवं राष्ट्र रहा है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार संरक्षण के प्रति भारत की प्रतिबद्धता व्यक्त होती है किन्तु विगत 4 दशकों से भारत में मानवाधिकारों के उल्लंघन की शिकायतें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत मानवाधिकार संगठनों एवं पश्चिम के देशों के द्वारा की जाती रही है। 1993 वह वर्ष था, जब उपरोक्त उद्देश्यों एवं प्रतिबद्धताओं को वैधानिक जामा पहनाने हेतु संसद ने 'मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993' पारित किया। यद्यपि इस अधिनियम की कई सीमाएं हैं, तथापि यदि इसे उचित ढंग से क्रियान्वित किया जाए तो यह भारत में मानवाधिकार संरक्षण एंव प्रोन्नयन हेतु एक मील का पत्थर साबित हो सकता है। इस हेतु सरकारी प्रयासों के साथ–साथ जनता एवं गैर–सरकारी संगठनों का सक्रिय समन्वित सहयोग आवश्यक है। यह अधिनियम राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग एवं मानवाधिकार न्यायालयों की व्यवस्था करता है, ताकि मानवाधिकारों का बेहतर ढंग से संरक्षण हो सके। भारत में मानवाधिकार संरक्षण एंव प्रवर्तनकारी अभिकरण के रूप में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग शीर्षस्थ निकाय है।

1.8 सारांश

मानवाधिकारों का प्रभावी संरक्षण तभी संभव है जब इस हेतु एक प्रभावी प्रवर्तन मशीनरी हो। भारत सरकार ने अनेक अधिनियमों के माध्यम से ऐसे बेहतर प्रवर्तन यंत्रवाद को स्थापित करने का प्रयास किया है, ताकि मानवाधिकार सभी वर्गों एवं जमीनी स्तर तक लागू किए जा सके। इसी प्रवर्तन क्रम में आज हमारे पास राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग एवं राष्ट्रीय महिला आयोग हैं। राष्ट्रीय बाल आयोग की स्थापना के प्रयास भी निरन्तर जारी हैं।

1.9 बोध प्रश्न

1. "भारतीय संविधान मानवाधिकारों का एक 'स्वपोषत अधिकारपत्र' (Proclaimed Charter) है"। समझाइये।
2. भारतीय संविधान में प्रदत्त नागरिकों के 6 मूल अधिकार कौन–कौन से हैं?
3. "भारत में मानवाधिकारों की स्थिति का सच्चा आइना नीति–निर्देशक तत्व दिखाते हैं" समझाइये।
4. दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 क्या है?
5. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1968 क्या है?
6. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के बारे में क्या जानते हैं?

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5. देखें भाग 4.2
6. देखें भाग 4.3
7. देखें भाग 4.5
8. देखें भाग 4.6
9. देखें भाग 4.6
10. देखें भाग 4.7

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अतर चन्द, पॉलिटिक्स ऑफ ह्यूमन राइट्स एण्ड सिविल लिबर्टी– ए ग्लोबल सर्वे, 1985
- डा0 फुरकान अहमद, ह्यूमन राइट्स एंड डेवलेपिंग नेशन्स, प्रोविजन्स, प्रोबलम्स एंड प्रेसपैक्टिव, प्रो0 जेड. ए. निजामी एंड डा0 दिविका पाल, संस्करण, ह्यूमन राइट्स इन दि थर्ड वर्ल्ड कन्ट्रीज, 1984
- गुप्ता, यू0एन0 हैंयूमन राइट्स, अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

ईकाई–2 भारतीय संविधान (प्रस्तावना)

रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 संविधान की संकल्पना

2.4 भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ

2.5 भारतीय संविधान

2.6 भारतीय संविधान की प्रस्तावना

2.7 प्रस्तावना की व्याख्या

2.8 संविधान में प्रस्तावना का महत्व

2.9 नीति–निर्देशक सिद्धान्त

2.10 मूल अधिकार एवं नीति–निर्देशक तत्वों में अन्तर

2.11 सारांश

2.12 बोध प्रश्न

2.13 संदर्भ ग्रन्थ/कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 उद्देश्य–

इस अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी समझ सकेंगें–

- भारतीय संविधान की अवधारणा एवं संरचना
- भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ
- भारतीय संविधान की प्रस्तावना एवं प्रस्तावना का महत्व
- भारतीय संविधान में राज्यों के लिए नीति–निर्देशक तत्व
- मूल अधिकार एवं नीति–निर्देशक तत्वों में अन्तर

2.2 प्रस्तावना–

भारत ब्रिटिश साम्राज्य से 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हो गया। स्वतंत्र भारत की पहली महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सफलता थी अपने संविधान का निर्माण। स्वतंत्र भारत ने सबसे पहले एक ऐसे संविधान का निर्माण किया, जो न्याय, स्वाधीनता, समता और बन्धुत्व के मूल सिद्धान्तों पर आधारित था। न्याय, स्वाधीनता, समता और बन्धुत्व–ये मानवता के सर्वोच्च आदर्श माने जाते हैं और इन आदर्शो को वैधानिक नीतियों का रूप प्रदान करना कठिन काम होता है। भारत का संविधान बनाने में सबसे बड़ी समस्या थी विशाल जनसंख्या की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं को ध्यान में रखना– इस विशाल जनसंख्या की मूल जातियों, भाषाओं, धर्मो और विभिन्न सभ्यताओं की जटिलताओं को सुलझाना।

संसार के सबसे बड़े लिखित भारतीय संविधान के निर्माण में एक बड़ी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। भारतीय संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 1858 के भारत शासन अधिनियम से शुरू होती है। ऐसा इसलिए कि 1858 के पहले भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में था और उस समय तक शासन का विधान विभिन्न चार्टरों द्वारा किया जाता था। 1858 में ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन अपने हाथों में ले लिया और उसी वर्ष

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

से ब्रिटिश संसद ने भारत के शासन से संबंधित अधिनियम पारित करने शुरू कर दिए। 1858 के भारत शासन अधिनियम ने भारतीयों में सुखद भविष्य की आशा जगाई, इसलिए उसे भारतीय संविधान–निर्माण–प्रक्रिया का आरम्भिक चरण माना जाता है।

2.3 संविधान की संकल्पना–

संविधान के लिए अंग्रेजी शब्द कॉन्सटीटयूशन, लैटिन शब्द Cnstituere से आया है, जिसका अर्थ है 'स्थापना करना', या 'निर्माण करना' या 'रूप देना'। बाद में फ्रेन्च में, नियामकों और आदेशों के लिए 'Consitutio' के रूप में इसका उपयोग पाया गया है। द न्यू ऑक्सफोर्ड अमेरिकन शब्दकोष, संविधान को मूल सिद्धान्तों या स्थापित पूर्व उदाहरणों का एक समुच्चय (सैट) जिसके अनुसार एक राज्य या अन्य संगठन नियंत्रित होता है' के रूप में परिभाषित करता है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू के अनुसार, 'संविधान एक तरीका है जिसमें राज्य के संघटक भाग नागरिक एक दूसरे से संबंधित होते हुए व्यवस्थित हैं।'

भारत के संविधान का तात्पर्य है मूल सिद्धान्तों या स्थापित उदाहरणों का एक सेट, जिसके अनुसार भारतीय राज्य नियंत्रित होता है। भारत का संविधान राष्ट्र का 'मातृ विधान' या 'बुनियादी कानून' या 'मूल कानून' 'सर्वोच्च कानून (सभी कानूनों का कानून) है। ऐसा निम्नलिखित कारणों से है– 1–अन्य सभी विधान इस पर आधारित है, अर्थात सभी कानूनों, नियमों और विनियमों को भारत के संविधान पर आधारित होना चाहिए। 2–यह सरकार की शक्ति का स्रोत है, अर्थात सरकारों के रूप, संरचना, प्रशासन, शक्तियों और कार्यो को यह निर्धारित करता है। 3–भारत में कोई भी संविधान से ऊपर नहीं है, अर्थात राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री सहित हर किसी को संविधान का पालन करना चाहिए और संवैधानिक प्रावधानों के तहत रहकर काम करना चाहिए और 4– भारत के लोग संविधान की शक्ति का स्रोत हैं, अर्थात संविधान अपनी शक्ति को लोगों से प्राप्त करता है।

2.4 भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ–

भारतीय संविधान सरकार की संघीय प्रणाली के लिए प्रावधान उपलब्ध कराता है। भारतीय संविधान की महत्वपूर्ण संघीय विशेषताएँ इस प्रकार है :

- लिखित संविधान– **भारतीय संविधान संहिताबद्ध रूप में है अर्थात इसमें प्रत्येक प्रावधान जैसे भागों और अनुच्छेदों के लिए नंबर निर्धारित होने के साथ ही यह योजनाबद्ध तरीके से व्यवस्थित है।**
- द्विसदनीयता– **भारतीय संविधान संसद में दो सदनों का उपबंध करता है, अर्थात राज्य सभा (राष्ट्रीय स्तर पर राज्यों का प्रतिनिधित्व) और लोक सभा (भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व)। एक सदनीय प्रणाली का अर्थ, विधायिका में केवल एक सदन का होना होता है।**
- भाक्तियों का विभाजन– **भारत का संविधान केन्द्र और राज्यों के बीच तीन सूचियों के माध्यम से शक्तियों का बंटवारा करता है वे इस प्रकार है–**

  (ए)–केन्द्रीय सूची–**इसमें 100 विषय शामिल है जिन पर कानून बनाने के लिए केन्द्रीय शासन को विशेष शक्तियां प्राप्त है। उदाहरण के लिए रेलवे, पासपोर्ट और वीजा, रक्षा, विदेशी मामले इत्यादि।**

  (बी)–राज्य सूची– **इसमें 61 विषय है जिन पर राज्य सरकारों को कानून बनाने के लिए विशेष शक्ति प्राप्त है। उदाहरण के लिए पुलिस, स्थानीय शासन, कृषि, नशीली शराब, पुस्तकालय इत्यादि।**

  (सी)– समवर्ती सूची– **इसमें 52 विषय है जिन पर केन्द्र और राज्य दोनों सरकारों को कानून बनाने के लिए समान शक्तियां प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए, आपराधिक कानून, वन, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि। समवर्ती सूची के किसी विषय पर केन्द्रीय कानून और राज्य के कानून के बीच किसी तरह के संघर्ष की दशा में केन्द्रीय कानून प्रभावी होता है।**

  यदि कोई विषय इन तीन सूचियों के तहत नहीं आता है तो यह 'अवशिष्ट विषय (Residuary subject) के रूप में माना जाता है और भारतीय संविधान में अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र सरकार में निहित है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

- ➢ संविधान की सर्वोच्चता– भारत में संविधान सर्वोच्च है कोई भी संविधान से ऊपर नहीं है। शासन–प्रणालियों, कानूनों, अधिशासी कार्यवाहियों, न्यायिक कार्यो इत्यादि का प्रत्येक पहलू संविधान के अनुसार होना चाहिए। इसके विपरीत, ब्रिटेन में, संसद सर्वोच्च है न कि संविधान।
- ➢ स्वतंत्र न्यायपालिका– हमारी न्यायपालिका, सरकार के कार्यकारी अंगों और विधान से इसकी स्वतंत्रता द्वारा और संविधान से प्रत्यक्षतः अपनी शक्तियाँ प्राप्त करती है।
- ➢ कठोर संविधान– संविधान के कुछ प्रावधानों में संशोधन करना बहुत मुश्किल है।
- ➢ दोहरी राजनीति (द्वैध भाासन)– इसका अर्थ है दो सरकारों का होना– पहला राष्ट्रीय स्तर (केन्द्र सरकार) पर और दूसरा क्षेत्रीय स्तर (राज्य सरकारों) लेकिन अब, भारतीय संविधान, तीसरे स्तर की सरकारों के लिए भी उपलब्ध है जो कि स्थानीय सरकारें हैं।

भारतीय संविधान में एकात्मक शासन के भी कुछ लक्षण है जो इस प्रकार हैं–

- एक संविधान : एक संघीय देश के विपरीत जहाँ केन्द्र और राज्यों के अपने स्वयं के संविधान होते हैं, भारत में केवल एक संविधान है जो कि आमतौर पर केन्द्र और राज्यों दोनों पर समान रूप से लागू होता है।
- एकल नागरिकता– नागरिक उसे कहा जाता है जो किसी देश के "नागरिक और राजनैतिक अधिकारों, का आनन्द लेता है। भारत में लोगों को केवल एकल नागरिकता प्राप्त है, और वह है भारतीय नागरिकता तथा सभी भारतीय नागरिक पूरे देश में एक समान नागरिक और राजनैतिक अधिकारों का आनन्द लेते हे लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका में, दोहरी नागरिकता है पहली अमेरिकी नागरिता और दूसरी राज्य की नागरिकता है।
- मजबूत केन्द्रीय सरकार– हालांकि भारतीय संविधान केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों को बांटता है किन्तु केन्द्र, राज्यों की तुलना में अधिक शक्तिशाली है। उदाहरण के लिए, केन्द्रीय सूची में ज्यादा और अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है, केन्द्र सरकार का कानून, राज्यों के कानूनों की अस्वीकार कर सकता है इत्यादि।
- विनाशी राज्य– केन्द्र सरकार, किसी भी मौजूदा राज्य को विभाजित कर सकती है, दो या अधिक राज्यों के फिर से जोड़ सकती है, किसी भी राज्य का पुनः नामकरण कर सकती है, किसी भी राज्य को खत्म कर सकती है और किसी भी राज्य को बना सकती है साथ ही किसी भी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है। इसलिये भारत में राज्य सरकारें भूभागीय सुरक्षा का आनंद नहीं ले पाती है क्योंकि वे केन्द्र सरकार द्वारा विनाशी है लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्य अविनाशी हैं।
- लचीला संविधान– भारतीय संविधान के कुछ प्रावधान संशोधन में सरल हैं।
- अखिल भारतीय सेवाएं– भारत में तीन प्रकार की सेवाएं है। सबसे पहली राज्य सेवा जहां एक व्यक्ति अपने पूरी जीविका के दौरान राज्य सरकार के लिए काम करता है, उदाहरण के लिए तहसीलदार, पटवारी, राज्य सडक परिवहन निगम के बस चालक इत्यादि। दूसरी केन्द्रीय सेवा है जहां एक व्यक्ति अपने पूरी जीविका के दौरान केन्द्र सरकार के लिए काम करता है, उदाहरण के लिए भारतीय रेलवे के कर्मचारी, भारतीय डाक, सेना के जवान इत्यादि। तीसरी, अखिल भारतीय सेवा है जहां एक व्यक्ति अपने पूरी जीविका के दौरान केन्द्र और राज्य दोनों सरकारों के लिए काम कर सकता है, उदाहरण के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा और भारतीय वन सेवा ये लोग प्रशासन में शीर्ष स्तर के पदों को ग्रहण करते है, उदाहरण के लिए सचिव, पुलिस आयुक्त इत्यादि वे केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त होते है, जिसका उन पर अंतिम नियंत्रण होता है लेकिन उन पर राज्य सरकारों का तत्काल नियंत्रण ही होता है।
- राज्यपाल की नियुक्ति– राज्यपाल राज्य का प्रमुख होता है और वह राज्य में केन्द्र सरकार के एक एजेन्ट के रूप में भी कार्य करता है। राष्ट्रपति के पास राज्यपाल को नियुक्त करने और हटाने की शक्ति

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

होती है। राज्यपाल के पास राज्य विधायिका विधेयक पर वीटो का अधिकार होता है लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्यपाल लोगों द्वारा चुना जाता है।

- आपातकालीन प्रावधान– किसी राष्ट्रीय 'आपातकालीन' के दौरान, भारत सरकार स्वयं को एकात्मक रूप की सरकार में रूपांतरित कर सकती है क्योंकि केन्द्र सरकार अधिक शक्तिशाली हो जाती है।
- एकीकृत न्यायिक प्रणाली– भारत में अदालतों का प्रत्येक स्तर, अर्थात सुप्रीम कोर्ट, उच्च न्यायालय और निचली अदालतें पदानुक्रम के सिद्धान्त पर आयोजित है और वे सभी केन्द्र और राज्य दोनों कानूनों की व्याख्या करती हैं। इसे अदालतों की एकल प्रणाली भी कहा जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में अदालतों की दोहरी प्रणाली है जहां, राज्य स्तरीय अदालते केवल राज्य के कानूनों और संघीय न्यायालय केवल केन्द्रीय कानूनों की व्याख्या करती है।
- एकीकृत लेखापरीक्षण प्रणाली– लेखा परीक्षण का अर्थ है निरीक्षण या वित्तीय खातों का सत्यापन। भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (सीएजी) जो राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त किया जाता है, केन्द्र और राज्य दोनों खातों का लेखा परीक्षण करता है। वह संसद के एक एजेन्ट के रूप में भी कार्य करता है।
- एकीकृत चुनाव प्रणाली– भारतीय निर्वाचन आयोग संसद और साथ ही राज्य विधायिकाओं के चुनाव भी आयोजित करता है केन्द्रीय सरकार इस आयोग के ऊपर शक्ति रखती है लेकिन राज्य सरकार नहीं।

इस प्रकार जैसा कि भारतीय संविधान में संघीय और एकात्मक शासन दोनों ही विशेषताएं हैं यह इनको ऐसे वर्णित करता है– अर्ध संघीय (quasi-federal), सहकारी संघवाद (cooperative federalism) सौदेबाजी वाला संघवाद, मजबूत केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के साथ संघ और रूप से संघीय, लेकिन आत्मा से एकात्मक। दिलचस्प बात यह है संघ के लिए अंग्रेजी शब्द frderation का भारतीय संविधान में कहीं भी इस्तेमाल नहीं किया गया है।

2.5 भारतीय संविधान

किसी देश के संविधान और राजनीतिक व्यवस्था के पीछे उस देश की आस्थाओं, आधारभूत शाश्वत मूल्यों और सिद्धान्तों का समेकित दर्शन होता हैं। भारतीय संविधान की दार्शनिक मान्यताएँ या मूल्य संकल्पनायें संविधान की प्रस्तावना में, मूल अधिकारों में और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में विशेष रूप से साकार हुई है।

संविधान सभा ने संविधान के निर्माण में भारत के उदारवादी दार्शनिक दृष्टिकोण और मान्यताओं को स्थान दिया है। संविधान में समाहित मुख्य दार्शनिक मान्यताएँ निम्नलिखित है–

(1) धर्म निरपेक्षता, (2) समता, (3) संसदीय लोकतंत्र (4) बंधुता और राष्ट्रीय एकता, (5) आर्थिक न्याय, (6) गांधीवादी दर्शन (7) लोक कल्याणकारी राज्य ।

इस परिप्रेक्ष्य में ही संविधान के दार्शनिक पहलू के साथ ही संविधान की प्रस्तावना को भी ठीक से समझा जा सकता है।

2.6 भारतीय संविधान की प्रस्तावना–

भारतीय संविधान में एक प्रस्तावना है जो संविधान निर्माताओं के विचारों की कुंजी है। प्रस्तावना में संविधान का सार है, दर्शन हैं प्रस्तावना में निरूपित तथ्यों, सिद्धांतों और आदर्शो की छाप समूचे संविधान पर है और प्रस्तावना के आधार पर समूचे संविधान का पुनर्निर्माण किया जा सकता है।

प्रस्तावना में उन उददेश्यों का उल्लेख किया जाता है जिसकी प्राप्ति के लिए कोई अधिनियम पारित किया जाता है। उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश श्री सुब्बाराव के शब्दों में "प्रस्तावना किसी अधिनियम के मुख्य आदर्शों एवं आकांक्षाओं का उल्लेख करती है। " हमारे संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है–

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति,

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज 26 नवम्बर, 1949 को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मर्पित करते हैं।"

प्रस्तावना में 'समाजवादी', पंथ निरपेक्ष' और 'अखण्डता' शब्द सन 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया। प्रस्तावना तीन महत्वपूर्ण उददेश्यों की पूर्ति करती है– 1–संविधान का स्रोत क्या है अर्थात 'भारत के लोग'। 2–संविधान का उददेश्य क्या है अर्थात इसमें उन महान अधिकारों और स्वतंत्रताओं की घोषणा की गई है जिन्हें भारत के लोगों ने सभी नागरिकों को सुनिश्चित बनाने की इच्छा की थी। मानवाधिकार भी इसमें समाहित है। 3–इसमें संविधान के प्रवर्तन की तिथि है।

2.7 प्रस्तावना की व्याख्या–

प्रस्तावना के वास्तविक महत्व को हम तभी समझ सकते है जब इसकी मुख्य पदावली की व्याख्या को ठीक प्रकार से समझ लिया जाये–

'हम भारत के लोग'– प्रस्तावना में प्रयुक्त 'हम भारत के लोग' इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं। पदावली से यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान का स्रोत भारत की जनता है, अर्थात् जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की सभा द्वारा संविधान का निर्माण किया गया है।

सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न'– प्रस्तावना के 'सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न' पद से यह व्यक्त होता है कि भारत पूर्ण रूप से प्रभुता–सम्पन्न राज्य है और कानूनी दृष्टि से न तो इसके ऊपर किसी आन्तरिक शक्ति का प्रतिबन्ध है और न ही किसी बाहरी शक्ति का। प्रस्तावना के अनुसार संप्रभुता समूची भारतीय जनता में अथवा भारतीय गणराज्य में निहित है।

'लोकतंत्रात्मक'– भारतीय संविधान में दर्शन में लोकतंत्र को जीवनयापन की एक पूरी व्यवस्था के रूप में तथा जीवन के समग्र दर्शन के रूप में स्वीकार किया गया है। लोकतंत्र के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पहलू हैं। राजनीतिक पहलू में राजनीतिक समानता के आदर्श को माना गया है और राजनीतिक शक्ति पर किसी वर्ग–विशेष का एकाधिकार नहीं स्वीकारा गया है।

पंथ–निरपेक्ष'– यह शब्द संविधान की मूल प्रस्तावना में नहीं था, वरन बाद में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया है। पंथ–निरपेक्षता की अवधारणा संविधान में प्रयुक्त 'विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता' की पदावली में पहले से ही अन्तर्निहित है। प्रस्तुत संशोधन द्वारा उसे स्पष्ट कर दिया गया है। 'पंथ–निरपेक्ष' राज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से है जो सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करता है तथा उन्हें समान संरक्षण प्रदान करता हैं धर्म मानने, आचरण करने तथा प्रचार करने में प्रयुक्त व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्रत है।

समाजवादी – यह शब्द भी मूल प्रस्तावना में नहीं था, वरन बाद में 42वें संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा जोड़ा गया है। प्रस्तावना में प्रयुक्त 'आर्थिक न्याय' पदावली में समाजवाद की अवधारणा अंतर्निहित है। संविधान–निर्माताओं से इस 'आर्थिक न्याय' पदावली की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी है। प्रस्तुत संशोधन इस 'आर्थिक न्याय' को एक निश्चित दिशा देता है। भारतीय संविधान ने एक मध्यम मार्ग अपनाकर मिश्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांत को स्वीकार किया है। प्रस्तावना में 'समाजवाद' शब्द के साथ 'लोकतांत्रिक' शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट है। लोकतंत्र और समाजवाद के इस अनोखे सामंजस्य के प्रयास की परिकल्पना इस दिशा में एक नवीन कदम है।

गणराज्य'– प्रस्तावना ने देश को 'गणराज्य' की संज्ञा दी है जिससे स्पष्ट है भारत में राज्य का प्रधान कोई वंशानुगत नरेश नहीं अपितु निर्वाचित राष्ट्रपति है। देश में कोई विशेषाधिकार–संपन्न वर्ग नहीं है। राज्य के छोटे से छोटे पद से लेकर राष्ट्रपति पद तक जाति, धर्म, प्रदेश या लिंग के भेदभाव के भेदभाव के बिना सभी नागरिकों के लिए उन्मुक्त व्यवस्था है। हमारे गणराज्य में उच्चतम शक्ति सार्वभौम वयस्क मताधिकार से संपन्न भारतीय जन–समुदाय में निहित है।

'न्याय'– हमारे संविधान में सबसे अधिक बुनियादी और मौलिक धारणा 'न्याय' की है। इसलिए प्रस्तावना में 'न्याय' को स्वतंत्रता और 'समता' से ऊपर रखा गया है। भारतीय संविधान में न्याय का आदर्श है– 'सर्वे भवंतु

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

सुखिनः सर्वे संतु निरामया।

'सामाजिक न्याय'— सामाजिक न्याय का अभिप्राय है कि मनुष्य मनुष्य के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेद ना माना जाए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्तियों के समुचित विकास के समान अवसर उपलब्ध हों, किसी व्यक्ति का किसी भी रूप में शोषण न हो और उसके व्यक्तित्व को एक पवित्र सामाजिक विभूति माना जाए।

'आर्थिक न्याय'— अनुच्छेद 39 में आर्थिक न्याय के आदर्श को स्वीकार किया गया है। इसमें राज्यों से कहा गया है कि वह अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करें कि जिससे समान रूप से सभी नर—नारियों को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो, समुदाय की भौतिक संपत्ति का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बँटा हो जिससे अधिकाधिक सामूहिक हित संभव हो सके।

'राजनीतिक न्याय'— भारतीय संविधान सार्वभौम वयस्क मताधिकार की स्थापना साम्प्रदायिक निर्वाचनों के अन्त और अनुच्छेद 19 से 22 तक के अंतर्गत स्वातंत्र्य अधिकारों तथा अनुच्छेद 32 के सांविधानिक उपचारों द्वारा राजनीतिक न्याय के आदर्श को मूर्त रूप प्रदान करता है।

'स्वतंत्रता'— न्याय के बाद संविधान में सबसे अधिक महत्व स्वतंत्रता के सिद्धांत को प्रदान किया है तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता को व्यक्तियों तथा राष्ट्र के आत्मिक उत्कर्ष के लिए आवश्यक माना है। संविधान के भाग 3 में मूल अधिकारों के अंतर्गत स्वातंत्र अधिकारों का विस्तार से प्रतिवादन किया गया है।

'समता'— न्याय और स्वतंत्रता के सिद्धान्त के साथ—साथ प्रस्तावना में 'प्रतिष्ठा और अवसर की की समता की बात कही गई है। समानता के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए संविधान—निर्माताओं ने प्रस्तावना में केवल मात्र 'समता' शब्द नहीं कहा और ना ही 'समता—सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक' ही कहा है, उन्होंने स्पष्टतः 'प्रतिष्ठा और अवसर की समता' पर बल दिया है।

'व्यक्ति की गरिमा बंधुता' — प्रस्तावना में अन्य दो आधारभूत सिद्धांतों पर बल दिया गया है— आदर्श—व्यक्ति की गरिमा तथा बन्धुता। संविधान में समानता और समता के आदर्श ने व्यक्ति की गरिमा को प्रतिष्ठित किया है।

राष्ट्र की एकता और अखंडता'— प्रस्तावना में इनका मंतव्य गया है कि विभिन्नताओं के बावजूद देश में एक बुनियादी एकता है जिसे दृढ़ता प्रदान करना राष्ट्र सर्वसम्मत लक्ष्य है। अखंडता शब्द मूल प्रस्तावना में नहीं था, वरन बाद में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा इसे प्रस्तावना में समाविष्ट किया गया है।

2.8 'संविधान में प्रस्तावना का महत्व'—

प्रस्तावना को संविधान में कोई विधिक महत्व नहीं दिया गया है। बेरूबारी के मामले में उच्चतम न्यायालय ने एक मत व्यक्त किया था कि प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है। इन—री—इण्डो—पाकिस्तान एग्रीमेंट के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्रस्तावना को संविधान का प्रेरणा तत्व भले ही कहा जाए किंतु इसे संविधान का आवश्यक अंग नहीं कहा जा सकता है। इसके न रहने से संविधान के मूल उद्देश्य में कोई अंतर नहीं पड़ता है। यह न तो सरकार को शक्ति प्रदान करने का स्रोत है और न ही उस शक्ति को किसी भी भाँति निबंधित या संकुचित करता है, किंतु केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य के वाद में उच्चतम न्यायालय ने बेरूबारी के मामले में दिए गए निर्णय को बदल दिया और यह निर्धारित किया है कि प्रस्तावना संविधान का एक भाग है। संविधान की भाषा अस्पष्ट और संदिग्ध हो ऐसी अवस्था में संविधान के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तावना का सहारा लिया जा सकता है। इस प्रकार प्रस्तावना को भारतीय संविधान की आत्मा कहा जा सकता है। गोकुलनाथ बनाम पंजाब राज्य संबंधी वाद में न्यायाधीश सी0जे0 सुब्बाराव ने कहा है कि, "प्रस्तावना संविधान के आदर्शों एवं आकांक्षाओं को बताती है।

2.9 नीति निर्देशक सिद्धान्त—

लोक कल्याणकारी राज्य का आदर्श राज्य नीति निर्देशक सिद्धान्तों में समाहित होता है। राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त लोक—कल्याण से प्रत्यक्ष रूप से जुडे हुये हैं। ये सिद्धान्त सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को प्रोत्साहित करते हुए लोक कल्याण को सुनिश्चित करते है राज्य का

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

यह दायित्व है कि वह ऐसी नीतियां निर्धारित करें जिसमें सभी की आजीविका सुरक्षित रह सके। उसे हर पुरूष व महिला को समान कार्य के लिए समान वेतन उपलब्ध कराना चाहिए राज्य को चाहिए कि वह सभी कर्मियों, सभी स्त्री–पुरूष के स्वास्थ्य एवं शक्ति का दुरूपयोग न होने दे। राज्य के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बँटा हो जिससे सामूहिक हित की सर्वोत्तम रूप से प्राप्ति हो सके।

संविधान निर्माताओं ने संविधान के भाग IV के अनुच्छेद–36 से 51 तक में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत निर्धारित किए हैं तथा राज्य से यह अपेक्षा की है कि वह अपनी नीतियां निर्धारित करते समय उन सिद्धांतों का ध्यान रखें। नीति निदेशक तत्वों में वे उद्देश्य एवं लक्ष्य निहित हैं जिनकी पालन कराना राज्य का कर्तव्य है साथ ही राज्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह कानून बनाने में इन सिद्धांतों को लागू करेगा। इस सम्बन्ध में डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर ने कहा था कि "एक सरकार जो लोकप्रिय मतों पर निर्भर है, वह अपनी नीति को आकार देते समय नीति–निर्देशक तत्वों को शायद ही अनदेखा कर सकती है यदि कोई भी सरकार उन्हें नजरअन्दाज करती है तो निश्चित रूप से चुनाव के समय मतदाताओं के सामने इसका जबाब देना होगा।

भारतीय संविधान में उल्लेखित नीति निदेशक तत्व निम्नलिखित है–

1. सामाजिक और आर्थिक न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था
2. आर्थिक न्याय के तत्व
   (क) पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो।
   (ख) समुदाय में भौतिक सम्पदा का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बँटा हो जिससे वे सामूहिक हितों का सर्वोत्तम साधन बन सकें।
   (ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन के साधन का सर्वसाधारण के अहित के लिए केन्द्रण न हो।
   (घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन हो।
   (ड.) कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग ना हो और आर्थिक अवस्था से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगार में ना जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो।
   (च) बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएँ दी जाए।
3. समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता
4. राज्य देश भर में ग्राम पंचायतों का निर्माण करें और उन पंचायतों को ऐसी शक्ति प्रदान करें कि वे स्वराज्य की इकाइयों के रूप में काम कर सकें।
5. बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा अंग हानि और अनर्हता के अभाव की दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार।
6. काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता का उपबंध करने के लिए निर्देश।
7. कर्मकारों के लिये उचित वेतन, शिष्ट जीवन स्तर, अवकाश तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त करने का प्रयास करना और विशेष रूप से ग्रामों में कुटीर उद्योग को बढ़ाने का प्रयास करना।
8. नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता।
9. बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबन्ध।
10. समाज के दुर्बल वर्गों के लिए शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की उन्नति।
11. लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य में सुधार करने का प्रयास करना।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

12. कृषि और पशुपालन का संगठन।

13. राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण।

14. कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण।

15. अंतरार्ष्ट्रीय शांति और सुरक्षा में अभिवृद्धि।

2.10 मूल अधिकार एवं नीति–निर्देशक तत्वों में अन्तर

नीति निर्देशक तत्वों और मूल अधिकारों में मूल अंतर यह है कि जहाँ मूल अधिकार वाद योग्य है वहीं नीति निर्देशक तत्व वाद योग नहीं है। इसे न्यायालय द्वारा कानूनन लागू नहीं करवाया जा सकता। फिर भी नीति निर्देशक तत्व किसी भी प्रकार से मूल अधिकारों से कम महत्वपूर्ण नहीं है। यद्यपि नीति निर्देशक तत्व न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है फिर भी उनकी संवैधानिक महत्ता एवं पवित्रता के बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता। यह देश के प्रशासन के संबंध में महत्वपूर्ण एवं मौलिक है। साथ ही ये देश के समग्र हित के लिए अत्यधिक प्रसांगिक है जैसा कि डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर ने ठीक ही कहा था कि नीति निदेशक तत्व अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि वे निर्धारित करते है कि भारतीय राजनीति का लक्ष्य आर्थिक लोकतंत्र है जिसे राजनीतिक लोकतंत्र से अलग माना जाता है। भारत के पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति एम0सी0 चगला ने कहा था कि 'यदि ये सभी सिद्धान्त पूरी तरह से कार्यान्वित किये जाते हैं, तो हमारा देश वास्तव में धरती पर स्वर्ग के समान होगा।

2.11 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत संविधान की प्रस्तावना में निहित पवित्र उद्देश्यों, आदर्शो एवं संकल्पों का उल्लेख किया गया है जिसकी प्राप्ति के लिए कोई अधिनियम पारित किया जाता है। नीति निदेशक सिद्धान्तों वाले अंश में संविधान प्रदत्त अधिकारों को ठोस रूप देने के लिए निर्वाचित सरकारों को यह निर्देश दिया गया है कि वे सामाजिक तथा आर्थिक न्याय की परिस्थितियां पैदा करें। सामाजिक विकास विविधतापूर्ण नीति की मांग करता है। इसके लिए सामाजिक विकास के विभिन्न घटकों का उन्नयन आवश्यक है। जो बहुआयामी प्रयास की मांग करता है। इन उददेश्यों की पूर्ति के लिए नीति निदेशक सिद्धान्तों के द्वारा भारतीय संविधान अधिमान्य नीतियों को अपनाने की अनुमति प्रदान करता है।

2.12 बोध प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न–

- भारतीय संविधान की प्रस्तावना बताइए।
- राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।
- भारतीय संविधान की प्रस्तावना मुख्य रूप से किन उद्‌देश्यों की पूर्ति करती है?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न–

- नीति निदेशक सिद्धान्त किस प्रकार मौलिक अधिकारों में सुनिश्चित अधिकारों की पुष्टि करता है?
- भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत की उदारवादी दृष्टिकोण और मान्यताओं को स्थान दिया गया है, स्पष्ट कीजिए।
- भारतीय संविधान भारत की सम्प्रभुता एवं अखण्डता को सुनिश्चित करता है। मौलिक कर्तव्य इसमें किस प्रकार सहायक है?

वस्तुनिश्ठ प्रश्न

1. निम्न में से कौन एक भारत में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को प्रतिबिम्बित करता है।

   (a) मूल कर्तव्य (b) मूल अधिकार

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

(c) नीति निर्देशक तत्व　　　　(d) प्रस्तावना

उत्तर– c

2. भारतीय संविधान की कौन सी विशेषता नहीं है–

(a) लिखित संविधान　　　　(b) एकल संविधान

(c) शक्तियों का विभाजन　　　　(d) एक सदनीय प्रणाली

उत्तर–d

3. संविधान की प्रस्तावना में 'समाजवादी' 'पंथनिरपेक्ष' और 'अखण्डता' शब्द किस संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया–

(a) 46 वें　　　　(b) 45 वें

(c) 42 वें　　　　(d) 47 वें

उत्तर–c

4. किसे भारतीय संविधान की 'आत्मा' कहा जा सकता है–

(a) मूल अधिकार　　　　(b) मूल कर्तव्य

(c) संविधान की प्रस्तावना　　　　(d) नीति निदेशक सिद्धान्त

उत्तर–c

2.13 संदर्भ ग्रन्थ/कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पाण्डे, जयनारायण (1988), भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, प्रयागराज।
- बसु, डी.डी. (1989) इन्ट्रोडक्शन ऑफ द कान्स्टीच्यूशन ऑफ इण्डिया, प्रा0 प्रेन्टिंग हाल, नई दिल्ली।
- शुक्ल, वी0एन0 (2004) कान्स्टीच्यूशन ऑफ इण्डिया, ईस्टर्न लॉ बुक कम्पनी, लखनऊ।
- मल, पूरण (2007) भारत का संविधान, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर।
- एस0एल0एम0– उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- शर्मा, जी0एल0 (2015) सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- जैन, पुखराज, फाडिया बी0एल0 (1998), भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
- मेल्लल्ली प्रवीन कुमार, 'भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार', सेज पब्लिकेशन इण्डिया प्रा0लि0, नई दिल्ली।
- झा किरण, झा अवधेश, 'भारतीय राजनीतिक व्यवस्था', स्पेक्ट्रम इण्डिया, नई दिल्ली।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई–3 मौलिक कर्तव्य व अधिकार

रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 मौलिक कर्तव्य

3.4 मौलिक अधिकार

3.5 आरक्षण संबंधी प्रावधान

3.6 आरक्षण, सामाजिक विकास एवं न्याय

3.7 सारांश

3.8 बोध प्रश्न

3.9 संदर्भ ग्रन्थ/कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 उद्देश्य–

इस अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी समझ सकेंगें–

- भारतीय संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार
- भारतीय संविधान प्रदत्त मौलिक कर्तव्य
- आरक्षण संबंधी प्रावधान (सुधारक उपाय)
- आरक्षण सामाजिक विकास एवं न्याय

3.2 प्रस्तावना–

संविधान में मूल कर्तव्यों का समावेश मुख्यतः इस उद्देश्य किया गया है कि नागरिकों में देशभक्ति की भावना सुदृढ़ हो, एक ऐसी आचरण संहिता का पालन करने में उनकी सहायता हो जो राष्ट्र को मजबूत बनाये, उसकी संप्रभुता और अखण्डता की रक्षा करें। मूल कर्तव्यों का यही उद्देश्य है कि राज्य को विविध कार्यों के सम्पादन और सामंजस्य, एकता, भाईचारा और धार्मिक सहिष्णुता के आदर्शों को बढ़ावा देने में सहायता मिले। ये आदर्श भारतीय संविधान का आधार है। इन मूल कर्तव्यों ने राज्य की कार्यप्रणाली में नागरिकों के महत्व को दर्शाया है और उससे अपेक्षा की है कि वे अपने कर्तव्यों का पूरी सामर्थ्य से पालन करें।

3.3 मौलिक कर्तव्य :–

संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान के भाग 4 के पश्चात एक नया भाग

4–क जोड़ा गया किसके द्वारा पहली बार संविधान में नागरिकों के मूल कर्तव्य को शामिल किया गया। नये अनुच्छेद 51(क) के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह–

1. संविधान के प्रति निष्ठा और इसके आदर्श, संस्थान, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगीत के प्रति सम्मान की भावना रखना।
2. उत्कृष्ट विचार, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरणा दी, का पालन और पोषण करना।
3. भारत की संप्रभुता एकता और अखंडता को बनाए रखना।
4. आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्र सेवा के लिए तैयार रहना।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

5. समस्त भारतीयों में भाईचारा एवं स्नेह को बढ़ावा देना और महिलाओं की गरिमा को बनाए रखना।

6. अनेकता में एकता की समृद्धि संस्कृति को संरक्षण देना।

7. प्राकृतिक पर्यावरण, जिससे वन, झीलें और बन जीवन शामिल है, को संरक्षण एवं बढ़ावा देना।

8. वैज्ञानिक सोच, मानवता और जानने एवं सुधार की चेतना को बढ़ावा देना।

9. सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करना और हिंसा का त्याग करना।

10. व्यक्ति विशेष या समूह कार्यों में उत्कृष्टता लाने का प्रयास करना, जिससे राष्ट्र निरंतर उन्नति एवं सफलता की ओर बढ़ता रहे।

11. 6 से 14 वर्ष की उम्र वाले अपने बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा का अवसर प्रदान करना।

सभी 11 मूल कर्तव्य गैर–न्यायसंगत है, इसलिए सरकार किसी के खिलाफ कानूनी कार्यवाही नहीं कर सकती है, यदि कोई नागरिक इन कर्तव्यों में से किसी एक को करने में विफल रहता है क्योंकि ये किसी भी कानूनी अदालत में लागू नहीं होते है हालांकि संसद द्वारा इसके लिए प्रावधान किए जाने पर मूल कर्तव्यों को कानून द्वारा लागू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 के अनुसार, संविधान राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान का अनादर करना एक दंडनीय अपराध है।

ये मूल कर्तव्य नागरिकों पर नैतिक और नागरिक कर्तव्यों को लागू करते है इसलिए इन कर्तव्यों का पालन करना नागरिकों का नैतिक (कानूनी नहीं) दायित्व है। इसके अलावा, ये कर्तव्य भारतीय समाज के लिए नये नहीं है क्योंकि ये मूल्य भारतीय परंपरा, धर्म और पौराणिक कथाओं में पहले से ही मौजूद हैं। मूल अधिकारों के विपरीत, मूल कर्तव्य केवल भारतीय नागरिकों पर ही लागू होते है गैर–नागरिक या विदेशियों पर नहीं। इस प्रकार, भारतीय नागरिक होने के नाते, देश के समग्र विकास को सुगम बनाने के लिए हमें अपने मूल अधिकारों का लाभ उठाते समय, अपने मूल कर्तव्यों के बारे में भी जागरूक रहना चाहिए।

3.4 मौलिक अधिकार :–

मौलिक अधिकार, राज्य और लोगों के बीच के मुद्दे हैं। अर्थात लोगों को कुछ बुनियादी अधिकार प्रदान करने में राज्य की शक्तियों की कुछ सीमाएं हैं। मूल अधिकार देश में समाजवादी तानाशाही या निरंकुश शासन को रोकने हेतु और राज्य की दखलअंदाजी के प्रतिकूल लोगों की स्वतंत्रता औरी स्वधीनता की रक्षा हेतु प्रतिबद्ध है। वे राजनैतिक लोकतंत्र को बढ़ावा देते हैं और "विधानों वाली सरकार न कि व्यक्तियों की" को स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए मूल अधिकार साधारण कानूनों से बेहतर हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 12 से 35 तक मूल अधिकारों का प्रावधान है। राज्य के विरुद्ध संविधान में मूल अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 12 में राज्य की परिभाषा दी गई है। राज्य शब्द के अंतर्गत निम्नलिखित आते हैं–

1. भारत सरकार और संसद
2. राज्य सरकार और विधानमंडल
3. स्थानीय प्राधिकारी
4. अन्य प्राधिकारी

अनुच्छेद 13 के अंतर्गत मूल अधिकारों से असंगत था उनका अल्पीकरण करने वाली विधियाँ उल्लंघन की पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करता है। भारतीय संविधान में निम्नलिखित मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है।

1. समता का अधिकार (अनुच्छेद 14 – 18)
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 –22)
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23–24)
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28)

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

5. संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29–30)

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद–32)

7. शिक्षा (प्रारम्भिक शिक्षा) का मूल अधिकार (अनुच्छेद 21–ए)

(1) समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14–18)

समानता किसी भी समाजवादी गणतंत्र की आधारशिला है। इसकी हमारे संविधान की प्रस्तावना में ही स्पष्ट की गई है। हमारे संविधान में उल्लिखित समानता का अधिकार कानून कानून के सम्मुख समानता और कानून का एक समान संरक्षण प्रदान करता है। यह धर्म, नस्ल, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर किए जाने वाले किसी भी भेदभाव का निषेध करता है। यह अवसरों की समानता की गारंटी भी प्रदान करता है साथ ही, समानता के अधिकार द्वारा छुआछूत को समाप्त कर दिया गया है। यह प्रावधान भी किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को राज्य द्वारा शैक्षणिक तथा सैनिक उपाधियों के अतिरिक्त, कोई अन्य उपाधि या अलंकरण प्रदान नहीं किया जाएगा।

(2) स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19–22)

संविधान निर्माताओं द्वारा संविधान में मूल अधिकारों के समावेश का एक प्रमुख कारण यह था कि वे नागरिकों को निरंकुशता से पूरी तरह बचाना चाहते थे। स्वतंत्रता के अधिकार में निम्नलिखित छः स्वतंत्रताएँ समाहित हैं– (1) भाषण व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19 (1)(क), (2) शांतिपूर्वक बिना हथियारों के इकट्ठा होने और सभा करने की स्वतंत्रता, (अनुच्छेद 19 (1) (ख), (3) समुदाय और संघ बनाने की स्वतंत्रता, (अनुच्छेद 19 (1)(ग), (4) देश में कहीं भी आवागमन की स्वतंत्रता, (अनुच्छेद 19 (1)(घ), (5) देश में किसी भी क्षेत्र में निवास करने तथा बस जाने की स्वतंत्रता, (अनुच्छेद 19 (1)(ड.) तथा व्यवसाय व व्यापार आदि की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 10 (1)(च)। इन स्वतंत्रताओं पर समाज के व्यापक हितों की दृष्टि से राज्य समुचित प्रतिबंध लगा सकता है। इस प्रकार इन प्रावधानों द्वारा वैयक्तिक स्वतंत्रता व सामाजिक नियंत्रण की स्थितियों में सद्भाव स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

(3) शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23–24)

व्यक्ति की गरिमा किसी भी सभ्य समाज का मूल आधार होती है। शोषण के विरुद्ध अधिकार द्वारा इसको सुरक्षित किया जाता है। इस अधिकार के द्वारा मनुष्यों के श्रम विभाग, बेगार तथा इसी प्रकार के अन्य जबरन कराए जाने वाले कार्यो का निषेध किया गया है। आजादी के पहले देश के कुछ भागों में जमींदार मजदूरों तथा किसानों से जबरन काम करवाते थे। देवदास प्रथा एक अन्य प्रकार की शोषण व्यवस्था थी। सिद्धांत रूप में देवदासियाँ ईश्वर को मानी जाती थीं। उनसे यह अपेक्षा की जाती थी कि वे पवित्र तथा संन्यासी जीवन व्यतीत करेंगी, परन्तु व्यवहार में वे वासना व अनैतिकता का शिकार होती रही हैं।

(4) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28)

भारतीय संविधान सभी व्यक्तियों को स्वतंत्र रूप से अपने धर्म के पालन, प्रचार व विश्वास का समान अधिकार देता है। वह अंतरात्मा की स्वतंत्रता प्रदान करता है। धर्मनिरपेक्षता के दो पक्ष उल्लेखनीय हैं। नकारात्मक रूप से किसी भी विशिष्ट मत अथवा पंथ को मानने की किसी भी बाध्यता का कानून निषेध करता है। सकारात्मक रूप से वह प्रत्येक व्यक्ति के धार्मिक विश्वास व व्यवहार को सुरक्षा प्रदान करता है। यद्यपि सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता व स्वास्थ्य की दृष्टि से इस अधिकार के प्रयोग को मर्यादित किया जा सकता है। राज्य को यह अधिकार है कि वह धार्मिक आचरण से संबंधित आर्थिक, वित्तीय व राजनीतिक गतिविधियों का उचित नियमन करें।

(5) संस्कृति तथा शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29–30)

भारतीय संविधान कुछ संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों की भी गारंटी देता है। देश के सभी भागों में बसे नागरिकों को अपनी भाषा, लिपि अथवा संस्कृति के अनुरक्षण का अधिकार प्राप्त है। हमारा संविधान धर्म, जाति, वर्ण, लिंग अथवा भाषा के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का निषेध करता है। विशेषकर राज सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के संबंध में मूलवंश, जाति, धर्म, भाषा या इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाना सम्मिलित है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

(6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

यह अधिकार संविधान द्वारा प्राप्त मूल अधिकारों के लिए प्रभावी कार्यविधियां प्रतिपादित करता है। इनके अभाव में मूल अधिकार निरर्थक सिद्ध हो जाएंगे। इस अनुच्छेद के महत्व के संबंध में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने कहा था, "यदि कोई मुझसे पूंछे कि संविधान का वह कौन सा अनुच्छेद है इसके बिना संविधान शून्य प्राय हो जाएगा तो इस अनुच्छेद (32) को छोड़कर मैं अन्य किसी अनुच्छेद की ओर संकेत नहीं कर सकता।" इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए सर्वोच्च न्यायालय बंदी–प्रत्यक्षीकरण परमादेश, निषेधाज्ञा, अधिकार–पृच्छा तथा उत्प्रेषण अभिलेख जारी कर सकता है।

(7) शिक्षा (प्रारम्भिक शिक्षा का मूल अधिकार (अनुच्छेद 21ए)

दीर्घकाल के प्रयासों के बाद दिसंबर 2002 में किए गए 86वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा प्रारंभिक शिक्षा को मूल अधिकार के रूप में संविधान में शामिल कर लिया गया है इस हेतु अनुच्छेद 21 के बाद एक नया अनुच्छेद 21'ए' के रूप में जोड़ा गया है, जिसके अनुसार 'राज्य 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा देने को बाध्य होगा।'

44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा अनुच्छेद 31, सम्पत्ति का मूल अधिकार प्रदान करता था, को संविधान से निरस्त कर दिया गया। इसी संशोधन द्वारा अनुच्छेद 19(1)द(च), जो संपत्ति की स्वतंत्रता का अधिकार था, को भी निरस्त कर दिया गया। फलतः संपत्ति का अधिकार अब मूल अधिकार नहीं रह गया वरन् वह संविधान में एक विधिक अधिकार के रूप में रखा गया है।

मूल अधिकार आत्यन्तिक अधिकार नहीं है। इन अधिकारों के प्रयोग पर युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाये जा सकते है। संविधान में उन परिस्थितियों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है जबकि राज्य को यह अधिकार होगा कि वह जनसाधारण के हित में नागरिकों के मूल अधिकारों को निलंबित कर सके या उनके प्रयोग पर निर्बन्धन लगा सके। निम्नलिखित दशाओं में नागरिकों के मूल अधिकारों को निर्बन्धित या निलम्बित किया जा सकता है–

1. प्रतिरक्षा सेना के सदस्यों के संबंध में (अनु0–33)
2. जब सैन्य विधि लागू हो (अनु0–34)
3. संविधान में संशोधन द्वारा (अनु0–368)
4. आपात उद्घोषणा के अधीन (अनु0–352)

3.5 आरक्षण सम्बन्धी प्रावधान

सुधारक उपाय

भारतीय संविधान में सभी वर्गो के हितों को ध्यान में रखा गया है, विशेष रूप से जो समाज में उपेक्षित, अल्पसंख्यक और शोषित है, उनके लिए विशेष प्रावधान किया गया है हमारे संविधान में। संविधान के भाग–16 में अनुच्छेद–330 से लेकर अनुच्छेद–342 तक कुछ वर्गो के संबंध में विशेष उपबंध किए गए हैं। इन अनुच्छेदों के अन्तर्गत जिन लोगों के लिए विशेष उपबंध की व्यवस्था की गयी है हमारे संविधान में वे है अनुसूचित जाति, अनूसूचित जनजाति, आंग्ल–भारतीय समुदाय, अल्पसंख्यक और पिछड़ा वर्ग।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। संविधान में समाज के कमजोर वर्गों के कल्याण हेतु नीति तैयार करने के लिए राज्यों को निर्देश दिए गए हैं। इन नीतियों से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लोग लाभान्वित होते हैं। इन समुदायों की अभ्युन्नति के लिए संविधान में अधिमान्य नीतियों को अपनाने की अनुमति दी गई है।

लोक सेवा में आरक्षण के अतिरिक्त इन उपायों के अंतर्गत विधानसभाओं एवं अन्य निर्वाचित संस्थाओं में आरक्षण के साथ–साथ शैक्षणिक संस्थाओं में इन समुदायों के लोगों को प्रवेश में प्राथमिकता दी जाती है। इसके साथ–साथ इनको आर्थिक उन्नति के लिए सहायता दी जाती है। इस प्रकार आरक्षण नीति के अंतर्गत निम्नलिखित विषय समाहित हैं :

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1. राजनीतिक प्रतिनिधित्व
2. सरकारी नौकरी
3. शैक्षणिक अभ्युत्थान एवं
4. आर्थिक उन्नति

इस प्रकार तीन क्षेत्र में मुख्य रूप से आरक्षण हैं— निर्वाचित निकाय, शैक्षणिक संस्थान तथा सरकारी सेवा। निर्वाचित निकाय में आरक्षण का प्रावधान संविधान में समाहित है। शैक्षपणिक संस्थानों में आरक्षण संसद द्वारा निर्धारित प्रावधानों के अनुरूप है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के सरकारी सेवा में भर्ती को ध्यान में रखकर नौकरी में आरक्षण कार्यपालिका के प्रयास के परिणाम है।

भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं अल्पसंख्यकों के हितों को सुरक्षित रखने वाले अनेक प्रावधान हैं। संविधान के अनुच्छेद 14, 1 के अनुच्छेद 14, 15 तथा 16 में कानून के समक्ष समानता और विधि के समान संरक्षण का आश्वासन दिया गया है। और किसी व्यक्ति के धर्म जाति, मूलवंश, आदि के आधार पर भेदभाव करना वर्जित ठहराया गया है। अनुच्छेद 16 में सार्वजनिक सेवाओं में समान अवसर दिए जाने का प्रावधान है। अनुच्छेद 25 में धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इसके अधीन अंतःकरण की स्वतंत्रता तथा किसी भी धर्म को मानने उस पर आचरण करने और धार्मिक प्रचार की गारंटी दी गयी है अनुच्छेद 26 में धार्मिक मामलों का प्रबंध किया बिना किसी प्रकार के हस्तक्षेप करने की गारंटी दी गई है। अनुच्छेद 27 में किसी विशेष धर्म की उन्नति और प्रचार–प्रसार के लिए करों की वसूली पर छूट दी गई है। अनुच्छेद 28 में सरकारी पैसे से चलने वाली शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक उपासना में उपस्थित होने की छूट दी गई है।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकारों के अंतर्गत अनुच्छेद 29 में अल्पसंख्यकों के हितों को संरक्षण दिया गया है और अनुच्छेद 30 में अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार दिया गया है।

3.6 आरक्षण, सामाजिक विकास एवं न्याय :–

सामाजिक विकास विविधतापूर्ण रणनीति की मांग करता है। इसके लिए सामाजिक विकास के विभिन्न घटकों का उन्नयन आवश्यक है। वस्तुतः यह एक बहुआयामी प्रयास है इसका उददेश्य साक्षरता शिक्षा तथा स्वास्थ्य संवर्द्धन है। इसके तहत खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, पेयजल की उपलब्धता, निवारक एवं उपचारक दोनों प्रकार की चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की सहज उपलब्धता तथा सृजनात्मक रोजगार समाहित है। इसका तात्पर्य लिंग, नस्ल, रंग, धर्म एवं जाति के आधार पर भेदभाव से मुक्त व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं सम्मान है। इसका अर्थ यह है कि जिस समाज में व्यक्ति जीवन यापन कर रहा है, वह उसके लिए उपयुक्त है तथा उसकी गतिविधियों से अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं होता है। सामाजिक विकास का तात्पर्य समतामूलक न्याय के साथ–साथ तीव्र राष्ट्रीय आर्थिक प्रगति तथा आर्थिक रूप से सुरक्षित जीवन यापन करना है। सामाजिक विकास में समाज एवं व्यक्ति दोनों की खुशहाली अंतर्निहित है, जहां समाज व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक जीने का अधिकार प्रदान करता है। यह बात जहां देश के अंदर व्यक्ति के लिए लागू होती है, वहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्र के लिए भी लागू होती है।

सदियों से उपेक्षित उपेक्षित समुदाय के कल्याणार्थ सकारात्मक उपाय होना ही चाहिए जिससे इन्हें सत्ता में भागीदारी मिले। प्रजातंत्र की जड़ समाज के बीच होती है। उपेक्षित वर्ग को प्रतियोगिता के वांछित स्तर तक लाने के लिए सहायता प्रदान करना होगा। इन नीतियों को लागू करने के लिए व्यवस्था का निर्माण किया जाना चाहिए, अन्यथा अधूरा रह जाएगा।

स्वतंत्र भारत में सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए भारत के संविधान में कुछ विशेष संरक्षणमूलक प्रावधान किए गए हैं, यथा–

- लोक सेवाओं में नियोजन के मामलों में पिछड़े वर्गों को संरक्षण एवं वरीयता (अनुच्छेद 16)
- अस्पृश्यता का उन्मूलन (अनुच्छेद 17)

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

- जहां वर्गों के पिछड़ेपन के कारण लोक सेवाओं में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व हो, वहां राज्य ऐसे वंचित वर्गों के लिए सेवाओं में आरक्षण का विशेष प्रावधान कर सकेगा। (अनुच्छेद 16(4))
- लोकसेवाओं में अपर्याय प्रतिनिधित्व होने पर राज्य अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए पदोन्नति में भी आरक्षण का प्रावधान कर सकेगा। (अनुच्छेद 16 (4–1), 77वां संविधान संशोधन 1995)
- पिछड़े वर्गों (अनुसूचित जाति एवं जनजाति) के लिए लोकसेवाओं में भर्तियों के संदर्भ में बैकलॉग का प्रावधान जो आरक्षण की 50 प्रतिशत सीमा के दायरे से बाहर होगा।(अनुच्छेद 16 (4–B), 81वां संविधान संशोधन 2000)
- केंद्र एवं राज्य सरकार के अंतर्गत सेवाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों का आरक्षण, लेकिन प्रशासनिक दक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पढ़ना चाहिए। (अनुच्छेद 335)
- अन्य पिछड़े वर्गों की दशाओं के अन्वेषण हेतु आयोग का प्रावधान (अनुच्छेद 340)

इन प्रावधानों के फलस्वरूप समाज के कमजोर वर्गों की सुरक्षा के लिए संस्थाओं का निर्माण हो सकेगा। इस दिशा में गठित राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग एक महत्वपूर्ण संगठन है। जहां राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग सांविधिक संस्था है, वहीं इस तरह की अन्य संस्थाएं विधिक है। यह संस्थाएं संसद द्वारा पारित अधिनियम के आधार पर स्थापित की गई है। इन आयोगों का कार्य समाज के इन वर्गों के अधिकारों के हनन करने वाले मामलों की जांच करना है। ये अभियोगो को सत्यापित करने के लिए गवाहों तथा साक्ष्यों की तहकीकात करते हैं। इन आयोगों की रिपोर्टों को संसद के समक्ष चर्चा के लिए रखा जाता है। इस प्रकार गठित संस्थाओं सें महिला सहित कमजोर वर्गों के अधिकारों की सुरक्षा संभव हो सकी है। इन संस्थाओं की प्रक्रियाएं खुली हुई हैं और प्रभावित वर्ग यहां से सूचनाएं सेवाएं आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।

3.7 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत संविधान में उपबंधित मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्तव्यों एवं सुधारात्मक उपायों के रूप में आरक्षण प्रावधानों का उल्लेख किया गया है। भारतीय संविधान में भारत की जनता को व्यापक अधिकार दिए गए हैं। इस विचार को मौलिक अधिकार संबंधी (संविधान के) भाग III में मूर्त रूप मिला है कि व्यक्ति में निहित कुछ ऐसे बुनियादी अधिकार होते हैं जो मानव जीवन के लिए अनिवार्य होते हैं। इस भाग में लोगों को समानता और स्वतंत्रता की सुनिश्चितता दी गई है। साथ ही मौलिक कर्तव्यों वाले अंश में व्यक्तियों में समुदाय के अन्य सदस्यों के प्रति जिम्मेदारी की भावना भरने की कोशिश की गई लेकिन, यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि अधिकार केवल इस बात पर निर्भर नहीं करते कि व्यक्ति उनका संवेदनशील ढंग से पालन करें, बल्कि इस बात पर भी सरकार में उनका पालन करवाने की इच्छा हो। भारतीय समाज में कुछ लोगों को उनके जन्म की परिस्थितियों वर्ग, लिंग आदि के आधार पर इन अधिकारों से वंचित रखा जाता है। इन अधिकारों को संरक्षित करने संबंधित प्रावधान की व्यवस्था संविधान में संरक्षणमूलक प्रावधान (आरक्षण) के रूप में की गई है।

3.8 बोध प्रश्न :

लघु उत्तरीय प्रश्न–

- संविधान में उपबन्धित मूल कर्तव्यों का उल्लेख कीजिए।
- संविधान में उपबंधित मूल अधिकारों को बताइये।
- सांविधानिक उपचारों के अधिकार को स्पष्ट कीजिए।
- सुधारात्मक उपाय के रूप में आरक्षण को स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

- संविधान में उल्लिखित मूल अधिकारों की समीक्षा कीजिए।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

- मूल कर्तव्य किस प्रकार नागरिकों में देश भक्ति की भावना को सुदृढ़ करता है? समझाइए।
- संरक्षणमूलक प्रावधान के रूप में संविधान में प्रदत्त आरक्षण व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिश्ठ प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन सा मूल अधिकार विदेशी नागरिकों को प्राप्त नहीं है।

   (a) विधि के समक्ष समानता

   (b) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार

   (c) प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार

   (d) शोषण के विरूद्ध अधिकार उत्तर– b

(b) भारतीय संविधान का कौन सा भाग संविधान की आत्मा कहलाता है।

   (a) मूल अधिकार

   (b) राज्य की नीति के निदेशक तत्व

   (c) उद्देशिका

   (d) सांविधानिक उपचारों का अधिकार उत्तर– d

(c) मूल अधिकारों से सम्बन्धित किस अनुच्छेद पर संविधान ने नियंत्रण नहीं लगाया है।

   (a) अनुच्छेद–19 (b) अनुच्छेद–25

   (c) अनुच्छेद–30 (d) अनुच्छेद–14

   उत्तर– d

(d) अस्पृश्यता का उन्मूलन प्रावधान सम्बन्धित है?

   (a) अनुच्छेद–16 (b) अनुच्छेद–17

   (c) अनुच्छेद–18 (d) अनुच्छेद–19

   उत्तर– b

3.9 संदर्भ ग्रन्थ/कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पाण्डे, जयनारायण (1988), भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, प्रयागराज।
- बसु, डी.डी. (1989) इन्ट्रोडक्शन ऑफ द कान्स्टीच्यूशन ऑफ इण्डिया, प्रा0 प्रेन्टिंग हाल, नई दिल्ली।
- शुक्ल, वी0एन0 (2004) कान्स्टीच्यूशन ऑफ इण्डिया, ईस्टर्न लॉ बुक कम्पनी, लखनऊ।
- मल, पूरण (2007) भारत का संविधान, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर।
- एस0एल0एम0– उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- शर्मा, जी0एल0 (2015) सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- जैन, पुखराज, फाडिया बी0एल0 (1998), भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
- मेल्लल्ली प्रवीन कुमार, 'भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार', सेज पब्लिकेशन इण्डिया प्रा0लि0, नई दिल्ली।
- झा किरण, झा अवधेश, 'भारतीय राजनीतिक व्यवस्था', स्पेक्ट्रम इण्डिया, नई दिल्ली।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-117
मानवाधिकार

खण्ड—5
मानवाधिकारों का संरक्षण

इकाई 1

राष्ट्रीय स्तर पर (सर्वोच्च न्यायालय, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग)

इकाई 2

अंतराष्ट्रीय स्तर पर (संयुक्त राज्य एवं एन.जी.ओ.)

इकाई—3

प्रान्तीय स्तर पर (राज्य महिला आयोग एवं लोकायुक्त की भूमिका)

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

ईकाई–1 राष्ट्रीय स्तर पर (क) सर्वोच्च न्यायालय, (ख) राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, (ग) राष्ट्रीय महिला आयोग)

(क) सर्वोच्च न्यायालय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सर्वोच्च न्यायालय परिसर

1.3 सर्वोच्च न्यायालय की संरचना

1.1 अदालत का आकार

1.4 सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति

1.5 न्यायाधीशों की योग्यताएँ

1.6 कार्यकाल

1.7 पदच्युति

1.8 न्यायालय की जनसांख्यिकी

1.9 सर्वोच्च न्यायालय की खंडपीठ

1.10 सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि

1.11 क्षेत्राधिकार

1.12 न्यायिक पुनर्विलोकन

1.13 सर्वोच्च न्यायालय : संविधान का संरक्षक

1.14 न्यायिक पुनर्विलोकन की आलोचना

1.15 न्यायिक पुनर्विलोकन का महत्व

1.16 सर्वोच्च न्यायालय के महत्वपूर्ण निर्णय

1.17 सारांश

1.18 बोध प्रश्न

1.19 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.20 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी समझ सकेंगे कि–

- सर्वोच्च न्यायालय कि किसी भी देश में आवश्यकता को जान सकेंगे।
- भारत में सर्वोच्च न्यायालय की संरचना को जान सकेंगे।
- सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि के साथ–साथ न्यायिक पुनर्विलोकन क्या होता है व इसके महत्व को समझ सकेंगे।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

* साथ ही कुछ महत्वपूर्ण सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर दृष्टि डालेंगे जिन्होंने भारत के संविधान में संशोधन को न्यायोचित ठहराया।

1.1 प्रस्तावना

किसी देश का संविधान चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, जब तक उसका पालन उचित रीति से नहीं होता, उसके कानून के अनुसार समुचित न्याय–व्यवस्था का प्रबंध नहीं होता, तब तक उस संविधान का कोई मूल्य नहीं रह जाता। न्याय करना राज्य का एक अनिवार्य कार्य होता है। न्याय व्यवस्था के अभाव में केवल अराजकता ही संभव है। प्रो0 गार्नर का मत है– "न्याय विभाग के अभाव में एक सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। कोई भी समाज बिना विधानमंडल के रहता है, यह बात समझ में आ सकती है लेकिन, ऐसे किसी सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती, जिसमें न्यायपालिका या न्यायाधिकरण की कोई व्यवस्था नहीं हो।" ब्राइस का कहना ठीक है कि, "किसी शासन की श्रेष्ठता जांचने के लिए उसकी न्याय व्यवस्था की निपुणता से बढ़कर और कोई अच्छी कसौटी नहीं है, क्योंकि किसी और चीज से नागरिक की सुरक्षा और हितों पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना उसके इस ज्ञान से कि वह एक निश्चित, शीघ्र तथा पक्षपात–रहित न्याय शासन पर निर्भर रह सकता है।" इस प्रकार प्रजातांत्रिक शासन को सफल बनाने के लिए, नागरिकों के अधिकारों की उचित रक्षा के लिए, संविधान को सजीव रखने के लिए स्वतंत्रता और निष्पक्ष न्यायपालिका का होना आवश्यक होता है। न्यायपालिका की इस महत्ता को ध्यान में रखकर ही अमेरिका में भी स्वतंत्रता और निष्पक्ष न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। संघीय न्यायपालिका संयुक्त राज्य की शासन प्रणाली का तीसरा अंग है। इसके संबंध में विल्सन ने लिखा है, "यह सम्पूर्ण व्यवस्था का एक मात्र प्रभाव संतुलन चक्र है।" चार्ल्स बीयर्ड के शब्दों में, "न्यायपालिका कई प्रकार से सत्ताओं के संतुलन तथा वैयक्तिक अधिकारों की संरक्षिका है।"

मैकहेनरी ने लिखा है कि "सभी संगठित समाजों के लिए न्यायालयों का होना आवश्यक है किंतु उनका संगठन व उनके कार्य सरकार का रूप, राजनीतिक सिद्धांतों, सामाजिक तथा आर्थिक संबंधों, परंपराओं तथा रीति–रिवाजों की भिन्नता के कारण अलग–अलग होते हैं। अतः ब्रिटिश तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यायालयों के संगठन तथा कार्यों में काफी अंतर है हालांकि उनका जन्म सामान्य रूप से हुआ है। फ्रांस, स्विट्जरलैंड तथा सोवियत संघ के न्यायालयों में यह अंतर और भी अधिक है। अमेरिकन न्यायालयों में वर्षों के बीतने के साथ बहुत कम अंतर आया है किंतु जो कार्य कर रहे हैं उन्हें इससे नहीं कहा जा सकता है। उनमें आधुनिकता तथा समाज में परिवर्तन के अनुसार परिवर्तन का आना एक महान राजनीतिज्ञता का प्रदर्शन है।"

1.2 सर्वोच्च न्यायालय परिसर

उच्चतम न्यायालय भवन के मुख्य ब्लॉक को भारत की राजधानी नई दिल्ली में तिलक रोड स्थित 22 एकड़ जमीन के एक वर्गाकार भूखंड पर बनाया गया है। निर्माण का डिजाइन केंद्रीय लोक निर्माण विभाग के प्रथम भारतीय अध्यक्ष मुख्य वास्तुकार गणेश भीकाजी देवलालीकर द्वारा इंडो–ब्रिटिश स्थापत्य शैली में बनाया गया था। न्यायालय 1958 में वर्तमान इमारत में स्थानांतरित किया गया। भवन को न्याय के तराजू की छवि देने की वास्तुकारों की कोशिश के अंतर्गत भवन के केंद्रीय ब्लॉक को इस तरह बनाया गया है कि वह तराजू के केंद्रीय बीम की तरह लगे। 1979 में दो नए हिस्से पूर्व विंग और पश्चिम विंग को 1958 में बने परिसर में जोड़ा गया। कुल मिलाकर इस परिसर में 15 अदालती कमरे हैं। मुख्य न्यायाधीश की अदालत, जो कि केंद्रीय विंग के केंद्र में स्थित है सबसे बड़ा अदालती कार्यवाही का कमरा है। इसमें एक ऊंची छत के साथ एक बड़ा गुंबद भी है।

1.3 सर्वोच्च न्यायालय की संरचना

1.1 अदालत का आकार

भारत के संविधान द्वारा उच्चतम न्यायालय के लिए मूल रूप से दी गई व्यवस्था में एक मुख्य न्यायाधीश तथा सात अन्य न्यायाधीशों को अधिनियमित किया गया था और इस संख्या को बढ़ाने का जिम्मा संसद पर छोड़ा गया था। प्रारंभिक वर्षों में, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मामलों को सुनने के लिए उच्चतम न्यायालय की पूरी पीठ

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

एक साथ बैठा करती थी। जैसे–जैसे न्यायालय के कार्य में वृद्धि हुई और लंबित मामले बढ़ने लगे, भारतीय संसद द्वारा न्यायाधीशों की मूल संख्या को आठ से बढ़ाकर 1956 में ग्यारह, 1960 में चौदह, 1978 में अठारह, 1986 में छब्बीस और 2008 में इकत्तीस तथा 2018 में 27 तक कर दिया गया। न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि हुई है, वर्तमान में वे दो या तीन न्यायपीठों (जिन्हें –'खण्डपीठ' कहा जाता है) के रूप में सुनवाई करते हैं। संवैधानिक मामलों और ऐसे मामले जिनमें विधि के मौलिक प्रश्नों की व्याख्या देनी हो, की सुनवाई पांच या इससे अधिक न्यायाधीशों की पीठ (जिसे 'संवैधानिक पीठ' कहा जाता है) द्वारा की जाती है। कोई भी किसी भी विचाराधीन मामले को आवश्यकता पड़ने पर संख्या में बड़ी पीठ के पास सुनवाई के लिए भेज सकती है।

1.4 सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति

संविधान में 30 न्यायाधीश तथा 1 मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति का प्रावधान है। उच्चतम न्यायालय के सभी न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय के परामर्शानुसार की जाती है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश इस प्रसंग में राष्ट्रपति को परामर्श देने से पूर्व अनिवार्य रूप से चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह से परामर्श प्राप्त करते हैं तथा इस समूह से प्राप्त परामर्श के आधार पर राष्ट्रपति को परामर्श देते हैं।

अनुच्छेद 124 (2), के अनुसार मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सलाह लेगा। वहीं अन्य जजों की नियुक्ति के समय उसे अनिवार्य रूप से मुख्य न्यायाधीश की सलाह माननी पड़ेगी।

सर्वोच्च न्यायालय एडवोकेट्स ऑन रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ 1993 में दिए गए निर्णय के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय के जजों की नियुक्ति तथा उच्च न्यायालय के जजों तबादले इस प्रकार की प्रक्रिया है जिसके लिए सर्वाधिक योग्य उपलब्ध व्यक्तियों की नियुक्ति आवश्यक है। भारत के मुख्य न्यायाधीश का मत प्राथमिकता पायेगा। उच्च न्यायपालिका में कोई नियुक्ति बिना उसकी सहमति के नहीं होती है। संवैधानिक सत्ताओं के संघर्ष के समय भारत के मुख्य न्यायाधीश न्यायपालिका का प्रतिनिधित्व करेगा। राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश को अपने मत पर फिर से विचार करने को तभी कहेगा जब इस हेतु कोई तार्किक कारण मौजूद होगा पुनः विचार के बाद उसका मत राष्ट्रपति पर बाध्यकारी होगा यद्यपि अपना मत प्रकट करते समय वह सुप्रीम कोर्ट के दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों का मत जरूर लेगा। पुनः विचार की दशा में फिर से उसे दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों की राय लेनी होगी वह चाहे तो उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के अन्य जजों की राय भी ले सकता है लेकिन सभी राय सदैव लिखित में होगी।

बाद में अपना मत बदलते हुए न्यायालय ने कम से कम 4 जजों के साथ सलाह करना अनिवार्य कर दिया था। वह कोई भी सलाह राष्ट्रपति को अग्रेषित नहीं करेगा यदि दो या दो से ज्यादा जजों की सलाह इसके विरुद्ध हो, किन्तु 4 जजों की सलाह उसे अन्य जजों जिनसे वो चाहे, सलाह लेने से नहीं रोकेगी।

1.5 न्यायाधीशों की योग्यताएं

- व्यक्ति भारत का नागरिक हो।
- कम से कम पांच साल के लिए उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या दो या दो से अधिक न्यायालयों में लगातार कम से कम पांच वर्षों तक न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुका हो। अथवा
- किसी उच्च न्यायालय या न्यायालयों में लगातार दस वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो। अथवा
- वह व्यक्ति राष्ट्रपति की राय में एक प्रतिष्ठित विधिवेक्ता होना चाहिए।
- किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या फिर उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को उच्वतम न्यायालय के एक तदर्थ न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।
- यहां पर ये जानना आवश्यक है कि उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश बनने हेतु किसी भी प्रदेश के उच्च न्यायालय में न्यायाधीश का पांच वर्ष का अनुभव होना अनिवार्य है, और वह 62 वर्ष की आयु पूरी न किया

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

हो, वर्तमान समय में CJAC निर्णय लेगी।

1.6 कार्यकाल

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष होती है। न्यायाधीशों को केवल (महाभियोग) दुर्व्यवहार या असमर्थता के सिद्ध होने पर संसद के दोनों सदनों द्वारा दो–तिहाई बहुमत से पारित प्रस्ताव के आधार पर ही राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है।

1.7 पदच्युति

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की राष्ट्रपति तब पदत्युत करेगा जब संसद के दोनों सदनों के कम से कम 2/3 उपस्थित तथा मत देने वाले तथा सदन के कुल बहुमत द्वारा पारित प्रस्ताव जोकि सिद्ध कदाचार या अक्षमता के आधार पर लाया गया हो के द्वारा उसे अधिकार दिया गया हो। ये आदेश उसी संसद सत्र में लाया जाएगा जिस सत्र में ये प्रस्ताव संसद ने पारित किया हो। अनुच्छेद 124(5) में वह प्रक्रिया वर्णित है जिससे जज पदच्युत होते हैं। इस प्रक्रिया के आधार पर संसद ने न्यायाधीश अक्षमता अधिनियम 1968 पारित किया था। इसके अन्तर्गत –

1. संसद के किसी भी सदन में प्रस्ताव लाया जा सकता है। लोकसभा में 100 तथा राज्यसभा में 50 सदस्यों का समर्थन अनिवार्य है।
2. प्रस्ताव मिलने पर सभापति एक 3 सदस्यों की समिति बनाएगा जो आरोपों की जांच करेगी समिति का अध्यक्ष सुप्रीम कोर्ट का कार्यकारी जज होगा दूसरा सदस्य किसी हाई कोर्ट का मुख्य कार्यकारी जज होगा। तीसरा सदस्य माना हुआ विधिवेक्ता होगा। इसकी जांच–रिपोर्ट सदन के सामने आएगी। यदि इसमें जज को दोषी बताया हो तब भी सदन प्रस्ताव पारित करने को बाध्य नहीं होता किन्तु यदि समिति आरोपों को खारिज कर दे तो सदन प्रस्ताव पारित नहीं कर सकता है।

अभी तक सिर्फ एक बार किसी जज के विरुद्ध जांच की गई है। जज रामास्वामी दोषी सिद्ध हो गए थे किन्तु संसद में आवश्यक बहुमत के अभाव के चलते प्रस्ताव पारित नहीं किया जा सका था।

1.8 सर्वोच्च न्यायालय की जनसांख्यिकी

उच्चतम न्यायालय ने हमेशा एक विस्तृत क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व को बनाए रखा है। इसमें धार्मिक और जातीय अल्पसंख्यक वर्गों से संबंधित न्यायाधीशों का एक अच्छा हिस्सा है।उच्चतम न्यायालय में नियुक्त होने वाले प्रथम महिला न्यायाधीश 1987 में नियुक्त हुए न्यायमूर्ति फातिमा बीबी थीं। उनके बाद इसी क्रम में न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर, न्यायमूर्ति रूमा पाल, न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा और न्यायमूर्ति रंजना देसाई का नामा आता है। उच्चतम न्यायालय में वर्तमान में केवल महिला न्यायाधीश हैं, जस्टिस कोहली (सितम्बर 2024), जस्टिस बी0बी0 नागरत्ना और जस्टिस वेला एम0 त्रिवेदी (जून 2025), जस्टिस नागरत्ना 2027 में देश की पहली महिला चीफ जस्टिस बनने वाली हैं।

2000 में न्यायमूर्ति के.जी. बालाकृष्णन दलित समुदाय से पहले न्यायाधीश बने। बाद में, सन 2007 में ही उच्चतम न्यायालय के पहले दलित मुख्य न्यायाधीश भी बने। 2010 में, भारत के मुख्य न्यायाधीश का पद संभालने वाले न्यायमूर्ति एस एच कपाड़िया पारसी अल्पसंख्यक समुदाय से संबंध रखते थे।

1.8 सर्वोच्च न्यायालय की खंडपीठ

अनुच्छेद 130 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय दिल्ली में होगा। परन्तु यह भारत में और कहीं भी मुख्य न्यायाधीश के निर्णय के अनुसार राष्ट्रपति की स्वीकृति से सुनवाई कर सकेगा।

क्षेत्रीय खंडपीठों का प्रश्न–विधि आयोग अपनी रिपोर्ट के माध्यम से क्षेत्रीय खंडपीठों के गठन की अनुशंसा कर चुका है तथा न्यायालय के वकीलों ने भी प्रार्थना की है कि वह अपनी क्षेत्रीय खंडपीठों का गठन करे ताकि देश के विभिन्न भागों में निवास करने वाले वादियों के धन तथा समय दोनों की बचत हो सके, किन्तु न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार करने के बाद निर्णय दिया है कि पीठों के गठन से

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1. ये पीठें क्षेत्र के राजनैतिक दबाव में आ जाएगी

2. इनके द्वारा सुप्रीम कोर्ट के एकात्मक चरित्र तथा संगठन को हानि पहुंच सकती है किंतु इसके विरोध में भी तर्क दिए गए हैं।

1.9 सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि

सर्वोच्च न्यायालय का अधिवेशन प्रतिवर्ष अक्टूबर के प्रथम सोमवार को प्रारंभ होता है और प्रायः अगले वर्ष के जून माह तक चलता है। विशेष आवश्यकता पड़ने पर सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश विशेष अधिवेशन भी बुला सकता है। मुख्य न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय का कार्यपालिका अधिकारी है। यह अधिवेशन की अध्यक्षता करता है और निर्णय की घोषणा करता है। लेकिन उसे अन्य न्यायाधीशों की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त नहीं है। मामलों की सुनवाई मंगल, बुध, गुरु, व शुक्रवार को होती है। शनिवार को न्यायाधीश आपसी विचार विमर्श करते है। इसकी गणपूर्ति के लिए 6 न्यायाधीशों का होना आवश्यक होता है।

1.10 क्षेत्राधिकार

सर्वोच्च न्यायालय को संविधान से ही शक्तियाँ प्राप्त है। इस रूप में यह अमेरिकी संघ की कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका दोनों से ही स्वतंत्र है। सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

I. प्रारंभिक क्षेत्राधिकार

II. अपीलीय क्षेत्राधिकार

III. न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार

1. प्रारंभिक क्षेत्राधिकार : सर्वोच्च न्यायालय को दो प्रकार के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है :

i. ऐसे मामले जिनका संबंध राजदूतों, वाणिज्य दूतों, अथवा अन्य प्रकार के विदेशी राज्यों के प्रतिनिधियों से हो। आधुनिक युग में ऐसे झगड़े राष्ट्रीय न्यायालय में कम उठाए जाते हैं क्योंकि यह अंतरराष्ट्रीय विधि तथा प्रथाओं के अंतर्गत आते हैं।

ii. ऐसे मामले में एक पक्ष संयुक्त राज्य संघ में सम्मिलित कोई राज्य हो अथवा ऐसे झगड़े जिसमें दो या दो से अधिक राज्य सम्मिलित हों, संयुक्त राज्य ने किसी राज्य पर मुकदमा किया हो या एक से अधिक राज्यों ने संयुक्त राज्य पर मुकदमा किया हो।

2. अपीलीय क्षेत्राधिकार : अमेरिकी संविधान के अनुसार प्रारंभिक क्षेत्राधिकार के विषयों को छोड़कर अन्य सभी विषयों पर सर्वोच्च न्यायालय को अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। राज्यों के न्यायालयों की अपील संघ के सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है। अन्य किसी भी संघीय न्यायालय में नहीं। 1925 के कांग्रेस के अधिवेशन द्वारा अपील का अधिकार केवल निम्नांकित विषयों पर सीमित कर दिया गया है–

i. जिनमें संघीय कानून या संधियों को राज्य के न्यायालय में संविधान के विरुद्ध घोषित कर दिया गया हो।

ii. जिनमें राज्य के किसी कानून को जो किसी संघीय न्यायालय के संघ के संविधान किसी कानून अथवा संधि के विरुद्ध घोषित कर दिया गया हो जबकि राज्यों के न्यायालय राज्यों में उस कानून को वैध ठहराये।

दोनों प्रकार के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय को अपील सुननी होती है। अन्य मामलों में सर्वोच्च न्यायालय को अपील का अधिकार है परंतु सर्वोच्च न्यायालय की इच्छा पर निर्भर है कि वह इसका प्रयोग करे या न करें। इस श्रेणी में संघीय अपील न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध अपील शामिल है जिनमें किसी संघीय कानून अथवा सन्धि को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया हो या जिनमें राज्य के किसी कानून या संवैधानिक उपबन्ध को इस आधार पर अवैध घोषित कर दिया गया हो कि वह संघीय संविधान कानून या संधि के विरूद्ध है। जिला न्यायालय के भी कुछ निर्णयों की अपील सीधे सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1.11 न्यायिक पुनर्विलोकन

अर्थ एवं परिभाषा : न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायालय की वह शक्ति है, जिसके द्वारा न्यायालय कानूनों की संवैधानिकता की जांच कर सकता है। कॉरबिन ने न्यायिक पुनर्विलोकन की परिभाषा देते हुए कहा है, "न्यायिक पुनर्विलोकन का अभिप्राय न्यायालयों की उस शक्ति से है, जो उन्हें अपने न्याय क्षेत्र के अंतर्गत लागू होने वाले व्यवस्थापिका के कनूनों की वैधानिकता का निर्णय देने के संबंध में प्राप्त है, जिन्हें वे अवैध और व्यर्थ समझें।" एच.जे. अब्राहम के कथनानुसार न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायालय की वह शक्ति है : जो किसी भी कानून या सरकारी कार्य को असांविधानिक घोषित कर सकती है और उसके प्रयोग को रोक सकती है।" मैक्रीडिस तथा ब्राउन के अनुसार, "न्यायिक पुनर्विलोकन का आशय न्यायाधीशों की उस शक्ति से है, जिसके अधीन वे उच्चतर कानून के नाम पर संविधियों तथा आदेशों की व्याख्या कर सकें और संविधान के विरुद्ध पाने पर उन्हें अमान्य ठहरा सकें।" इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में भी न्यायिक पुनर्विलोकन की स्पष्ट परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार, "न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायालयों की वह शक्ति है, जिसके द्वारा न्यायालय किसी देश की सरकार के विधायिनी, कार्यकारिणी और प्रशासकीय अंगों के कार्यों का परीक्षण करता है तथा यह देखता है कि वे संविधान के प्रावधानों के अनुकूल हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि न्यायालय को विधायिका और कार्यपालिका के कार्यों की जांच करने की शक्ति है। वह संविधान का संरक्षक है। इस हैसियत से यह देखना उसका पुनीत कर्तव्य है कि विधायिका का कोई कानून देश के मौलिक कानून—संविधान के किसी प्रावधान के प्रतिकूल नहीं हैं। अमेरिका में सर्वप्रथम 1803 मारबरी बनाम मेडिसन के मुकदमे में मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था। न्यायाधीश मार्शल ने स्पष्ट रूप से घोषणा की थी कि न्यायालय कानून की वैधानिकता की जांच कर सकता है। संविधान के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करने पर उसे अवैध घोषित कर सकता है तथा उसे लागू करने से अस्वीकार कर सकता है।

न्यायिक पुनर्विलोकन के संबंध में दी गई व्याख्याओं के आधार पर निम्नलिखित तथ्य उजागर होते हैं—

i. संविधान देश का सर्वोच्च कानून है।
ii. विधान मंडल द्वारा पारित विधेयक या कार्यपालिका के आदेश संविधान का विरोध करने पर अवैध करा दिए जा सकते है।
iii. न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार है।
iv. न्यायालय किसी भी विधेयक या कार्यपालिका के आदेश को सांविधानिकता की जाँच कर सकता है।
v. संविधान के प्रतिकूल जाने वाले विधेयक एवं कार्यपालिका—आदेश को न्यायालय अवैध घोषित कर उसे लागू करने से इंकार कर सकता है।

पूर्व शर्ते :— न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए कुछ पूर्व शर्ते आवश्यक हैं—

i. लिखित और दुष्परिवर्तनशील संविधान।
ii. स्वतंत्रत एवं सर्वोच्च न्यायपालिका।
iii. पृथक निकाय के रूप में न्यायपालिका की स्थापना।
iv. न्याय—योग्य मौलिक अधिकारों की व्यवस्था तथा सरकार के सत्ता पर युक्तिमूलक सीमाएं लगाने का प्रावधान।

यह अनिवार्य नहीं है कि उपर्युक्त शर्ते पूर्णरूपेण उपस्थित हों, किन्तु कम या अधिक मात्रा में इनकी व्यवस्था आवश्यक है। अन्यथा न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था केवल सैद्धान्तिक बनकर ही रह जायेगी।

1.13 सर्वोच्च न्यायालय : संविधान का संरक्षक

सर्वोच्च न्यायालय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति न्यायिक पुनविर्वलोकन का अधिकार है जिसके आधार पर सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का रक्षक भी कहा जाता है। ब्राइस ने सर्वोच्च न्यायालय कि इस शक्ति के बारे में लिखा है— "संयुक्त राज्य अमेरिका सरकार की किसी और विशेषता ने यूरोपीय जगत में इतनी अधिक जिज्ञासा जागृत नहीं की, इतनी अधिक चर्चा पैदा नहीं की, जितनी कि सर्वोच्च न्यायालय के उन कर्तव्यों कार्यो ने की है जो वह

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

संविधान की रक्षा करते हुए करता है।"

अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या का एकमात्र अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार के अंतर्गत उसके द्वारा उन सभी कानूनों की संवैधानिकता तक की परीक्षा की जाती है जिन्हें संघीय कांग्रेस तथा राज्य सरकारों द्वारा पारित किया गया है। इनमें किसी कानून को जब सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जाती है तो सर्वोच्च न्यायालय यदि यह समझे कि यह कानून संविधान के प्रतिकूल है तो उसके द्वारा इन्हें अवैध घोषित किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय की इसी शक्ति को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति कहते हैं। कोर्बिन ने न्यायिक पुनर्विलोकन को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, "न्यायिक पुनर्विलोकन का तात्पर्य न्यायालयों की उस शक्ति से है जो उन्हें अपने न्याय क्षेत्र के अंतर्गत लागू होने वाले व्यवस्थापिका के कानूनों की वैधानिकता का निर्णय देने के संबंध में तथा उन कानूनों को लागू करने के संबंध में प्राप्त है, जिन्हें वह अवैध और इसलिए व्यर्थ समझे।" सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का संरक्षक कहने के सम्बन्ध में जस्टिस ह्यूज ने कहा था– कि "अमेरिकन जनता संविधान के अधीन अवश्य रहती है परंतु संविधान वही है जो न्यायाधीश कहते हैं।" सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक पुनर्विलोकन के कुछ मुख्य बातें हैं :–

1.) सर्वोच्च न्यायालय अपनी ही पहल पर किसी कानून की वैधानिकता और अवैधानिक का विचार नहीं कर सकता। इसके द्वारा यह कार्य भी किया जा सकता है जब कोई व्यक्ति या समुदाय किसी विवाद या अपील के अंतर्गत किसी कानून की संवैधानिकता को चुनौती दें।

2.) न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार का प्रयोग केवल सर्वोच्च न्यायालय ही नहीं करता वरन् संघीय न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालय भी अधिकार का प्रयोग करते हैं। इतना अवश्य है कि उनके निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है और इस संबंध में अंतिम निर्णायक सर्वोच्च न्यायालय ही है।

1.14 न्यायिक पुनर्विलोकन की आलोचना

न्यायिक पुनर्विलोकन की आलोचना में अनेक तर्क दिए जाते हैं :–

1.) उचित कार्यों से दुराव :– आलोचकों का कहना है कि न्यायिक पुनर्विलोकन अधिकार के चलते सर्वोच्च न्यायालय अपने मौलिक कार्यों को करना भूल गया। वह विवादों का निपटारा नहीं करता बल्कि उसका मुख्य काम सामाजिक तथा राजनीतिक नीतियों के निर्धारण में हाथ बँटाना हो गया है। उसने विधान पालिका के कार्यों को अपना लिया है जिसके चलते जनता की प्रतिनिधि सभा जनता की इच्छा को स्वतंत्र रूप से व्यक्त नहीं कर सकती है। ब्रोगन ने ठीक ही कहा है कि– "सर्वोच्च न्यायालय कार्यपालिका तथा विधानपालिका के कार्यों को एक तृतीय सदन के रूप में नियंत्रित करने लगा।"

2.) संकीर्ण न्यायाधीश :– अमेरिका के न्यायाधीशों के विरुद्ध आलोचकों का कहना है कि उनकी नियुक्ति दल विशेष के आधार पर होती है तथा उनके निर्णय विशेष राजनीतिक तथा सामाजिक विचारधाराओं से प्रभावित होते हैं। अतः सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय कभी उदार होता है तो कभी संकीर्ण, कभी संघ के पक्ष में तो कभी राज्य के पक्ष में। वी0 गेट्स का कहना है कि, "न्यायाधीशों के विचार उसी प्रकार परिवर्तनशील है जिस प्रकार नकली सिल्क के रंग परिवर्तनशील है। वे राजनीतिक धूप के कारण शीघ्र बदल जाते हैं।" किसी समीक्षक ने ठीक ही कहा है कि केवल काला चोगा लगा लेने से न्यायाधीश बिल्कुल वस्तुपरक तथा राजनीति से मुक्त नहीं हो जाते।

3.) सकारात्मक राज्य के विरुद्ध :– बहुत से आलोचकों का मत है कि न्यायिक पुनर्विलोकन की प्रणाली आधुनिक सामाजिक तथा आर्थिक दशाओं के लिए अनुपयुक्त है। न्यायाधीश प्रायः सर्व संपन्न वर्ग के होते हैं। वे निहित स्वार्थों का संरक्षण करते हैं। फलतः प्रगतिशील तथा लोकतांत्रिक विरोधियों का विरोध करते हैं।

4.) असावधान तथा अन उत्तरदाई कांग्रेस :– सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन के आधार पर कांग्रेस सदस्यों द्वारा कड़े परिश्रम के बाद पारित विधि को नष्ट कर देता है। अतः जनता के प्रतिनिधियों के प्रयास का कोई साकार फल नहीं निकल पाता।

5.) कृत्रिम व शिथिल कांग्रेस :– न्यायिक पुनर्विलोकन के कारण देश का योजनाबद्ध विकास नहीं हो पाता तथा राजनीतिक अपने लक्ष्य को निश्चित नहीं कर पाते हैं। फलतः उनके कार्य में एक प्रकार की कृत्रिमता एवं शिथिलता आ जाती है। व्यापक सुधार योजना लागू नहीं कर पाते हैं। केवल साधारण परिवर्तनों से ही

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

संतोष करना पड़ता है।

6.) प्रगतिशील विधाओं में अवरोधक :– न्यायिक पुनर्विलोकन के क्रम में कई बार सर्वोच्च न्यायालय ने प्रगतिशील विधाओं को भी अवैध घोषित कर दिया है, जिसके कारण अनेक सामाजिक आर्थिक विकास से संबद्ध कार्यक्रम ठप्प पड़ गए हैं। "राष्ट्रीय पुनरुद्धार अधिनियम' तथा 'कृषि आयोजन अधिनियम इसी प्रकार के उदाहरण है। लास्की के अनुसार "सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने सदा ही संपत्तिशाली वर्ग के हितों की रक्षा की है।

7.) सांविधानिक आधार नहीं :– कई समीक्षकों का मत है कि न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को न्यायालय ने हड़प लिया है। संविधान में इसका कोई प्रावधान नहीं है।

8.) निर्णय की पूर्ण प्रक्रिया :– न्यायिक पुनर्विलोकन के आलोचकों का यह मत है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया पूर्ण हैं। यहां साधारण बहुमत के आधार पर निर्णय लिया जाता है। परिणाम स्वरूप मात्र पाँच न्यायाधीश मिलकर महत्वपूर्ण विषयों में भी निर्णय ले लेते हैं। इसके कारण अनेक प्रकार की असुविधाएं उत्पन्न होती हैं ।

अनेक दोषों और कमियों के बावजूद न्यायिक पुनर्विलोकन ने अमेरिका की सांविधानिक संरचना के अंतर्गत अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। न्यायिक पुनर्विलोकन की इसा शक्ति के कारण अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली न्यायालय बन गया है। न्यायिक पुनर्विलोकन का इतना व्यापक क्षेत्र विश्व के किसी अन्य देश में नहीं है।

1.15 न्यायिक पुनर्विलोकन का महत्व

जहां न्यायिक पुनर्विलोकन की आलोचना की गई है तो वहीं दूसरी ओर इसके महत्व का समर्थन भी किया गया है–

1.) संविधान का संरक्षक :– प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली में स्वतंत्र व निष्पक्ष न्यायपालिका का होना आवश्यक है जो संविधान का संरक्षण कर सके। अधिकार पृथक्करण, संघ तथा राज्यों के बीच अधिकार विभाजन, नागरिक स्वतंत्रता से संबंधित उपबंधों को लागू करने के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन के साधन को सुसज्जित करने के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका अमेरिका के राजनीतिक जीवन के लिए आवश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का अभिभावक तथा संरक्षक कहना अनुचित नहीं होगा।

2.) संविधान का विकास :– न्यायिक पुनर्विलोकन के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के विकास में सहयोग किया है। संशोधन प्रक्रिया इतनी कठिन है कि साधारणतः उसके द्वारा संविधान में परिवर्तन करना अत्यंत कठिन है। अतः इस कार्य के लिए अन्य साधनों को अपनाया गया है। जैसा कि डूरवी ने कहा– "सामान्यतः सर्वोच्च न्यायालय निर्वाचन के निर्णय का ही अनुसरण करता है।" अतः कहना गलत है कि न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था प्रतिक्रियावादी है।

3.) संघ व राज्यों पर नियंत्रण :– न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था आवश्यक हो गई है क्योंकि संघ तथा राज्यों की एक दूसरे से रक्षा आवश्यक है। यदि संघ तथा राज्यों को नियंत्रित न किया जाय तो संघीय व्यवस्था को खतरा पहुंचने का भय है।

वस्तुतः न्यायिक पुनर्विलोकन द्वारा न्यायपालिका एक अपरिवर्तनशील संविधान में जीवन जीवन का संचार करती है। संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान अपरिवर्तनशील है। उसे आसानी से बदला नहीं जा सकता। परन्तु किसी संविधान का समय के मुताबिक बदला जाना जरूरी है। अमेरिका के संविधान की इस कमी को वहां का सर्वोच्च न्यायालय ही पूरा करता है। संविधान की विभिन्न धाराओं को आधुनिक विचारों के अनुकूल व्याख्या का सर्वोच्च न्यायालय संविधान को आधुनिक रूप प्रदान करता है। अतः कभी–कभी कहा जाता है कि अमेरिका का संविधान न्यायिक श्वासों के द्वारा जीवित रहता है। अतः अमेरिका सर्वोच्च न्यायालय एक न्यायालय ही नहीं है, प्रत्युत एक अविरल गति से चलने वाली सांविधानिक परिषद भी है। इसने सांविधानिक मामलों के निर्णय में पर्याप्त तत्परता दिखाई है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

1.16 सर्वोच्च न्यायालय के महत्वपूर्ण निर्णय

क्र सं.	मामला	उच्चतम न्यायालय का निर्णय
1.	**शंकरी प्रसाद बनाम भारत सरकार, 1951**	**संसद को अनुच्छेद 368 के तहत संविधान के किसी भी हिस्से में संशोधन करने की शक्ति है।**
2	**सज्जन सिंह बनाम राजस्थान सरकार, 1965**	**संसद को अनुच्छेद 368 के तहत संविधान के किसी भी हिस्से में संशोधन करने की शक्ति है।**
3	गोलक नाथ बनाम पंजाब सरकार, 1967	संसद को संविधान के भाग–3 (मौलिक अधिकारों) में संशोधन करने का अधिकार नहीं है।
4	केशवानन्द भारती बनाम केरल सरकार, 19771	संसद किसी भी प्रावधान में संशोधन कर सकती है, लेकिन बुनियादी संरचना को कमजोर नहीं कर सकती है।
5	इंदिरा गांधी बनाम राम नारायण, 1975	सर्वोच्च न्यायालय ने बुनियादी संरचना की अपनी अवधारणा की भी पुष्टि की।
6	मिनर्वा मिल्स बनाम भारत सरकार, 1980	बुनियादी विशेषताओं में न्यायिक समीक्षा और मौलिक अधिकारों तथा निर्देशक सिद्धान्तों के बीच संतुलन को जोड़कर बुनियादी ढांचे की अवधारणा को आगे विकसित किया गया।
7	मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम, 1985	भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अन्तर्गत स्त्री को भरण–पोषण पाने का अधिकार है क्योंकि यह एक अपराधिक मामला है न कि दीवानी (सिविल)
8	कीहोतो होल्लोहन बनाम जाचील्लहु, 1992	"स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव' को बुनियादी विशेषताओं में जोड़ा गया।
9	इंदिरा साहनी बनाम भारत सरकार, 1992	'कानून का शासन, बुनियादी विशेषताओं में जोड़ा गया।
10	एस0आर0 बोम्मई बनाम भारत सरकार, 1994	संघीय ढांचे, भारत की एकता और अखण्डता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक न्याय और न्यायिक समीक्षा को बुनियादी विशेषताओं के रूप में दोहराया गया।

1.17 सारांश

वर्ष 2008 में सर्वोच्च न्यायालय विभिन्न विवादों में उलझा जिसमें न्याय प्रणाली के उच्चतम स्तर पर भ्रष्टाचार का मामला, करदाताओं के पैसे से महंगी निजी छुट्टियां, न्यायाधीशों की परिसंपत्तियों को सार्वजनिक करने से मना करने का मामला, न्यायाधीशों की नियुक्ति में गोपनीयता, सूचना के अधिकार के तहत सूचना को सार्वजनिक करने से मना करना, जैसे सभी मामले शामिल रहे। मुख्य न्यायाधीश के0जी0 बालकृष्णन ने अपने पद को जनसेवक का न होकर एक संवैधानिक प्राधिकारी का होने को लेकर काफी आलोचनाओं का सामना किया। बाद में उन्होंने अपना बयान वापस ले लिया। न्याय व्यवस्था को अपनी धीमी प्रक्रिया के लिए पूर्व राष्ट्रपतियों प्रतिभा पाटिल और एपीजे अब्दुल कलाम से भी कठिन आलोचना झेलनी पड़ी। राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने न्याय व्यवस्था की धीमी प्रक्रिया पर भावनात्मक अंदाज में बोलते हुए कहा था कि "जेल में बंद उन

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

लोगों के बारे में सोंचे जो थप्पड़ मारने के जुर्म में जेलों में कई सालों से बंद हैं। पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा था कि व्यवस्था का भ्रष्टाचार के दौर से गुजरना बहुत बड़ी समस्या है और सुझाव दिया कि इसको बहुत शीघ्र इससे उबारने की आवश्यकता है।

भारत के कैबिनेट सचिव ने भारत के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में राष्ट्रीय न्याय परिषद का पैनल गठित करने के लिए संसद में न्यायााधीश जांच (संशोधन) बिल 2008 प्रस्तुत किया।यह परिषद उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर लगे भ्रष्टाचार और दुराचार के आरोपों की जांच करेगी।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 145 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को अपने क्रियाकलापों प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए स्वयं के नियमों को लागू करने का अधिकार देता है। (राष्ट्रपति के अनुमोदन के साथ)। तदनुसार, "सर्वोच्च न्यायालय की नियमावली (रूल्स), 1950" तैयार किए गए थे। इसके बाद 1966 में संशोधन करके नियमावली बनाई गई। 2014 में, सर्वोच्च न्यायालय ने 1966 के नियमों को बदलकर सर्वोच्च न्यायालय नियमावली 2013 अधिसूचित किया जो 19 अगस्त 2015 से प्रभावी हुई।

1.18 बोध प्रश्न

1. सर्वोच्च न्यायालय की संरचना को बताएं।
2. सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को समझाएं।
3. सर्वोच्च न्यायालय कैसे संविधान का संरक्षक है? समझाइए।

1.19 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. देखें भाग 1.3
2. देखें भाग 1.11
3. देखें भाग 1.13

1.20 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. दत्ता गुप्ता, एस0, 1979 : जस्टिस एण्ड पॉलीटिकल ऑर्डर इन इण्डिया : कलकत्ता।
2. पायली, एम.वी. 1984 : कॉन्स्टीटयूशनल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, एस. चाँद, नई दिल्ली।
3. जार्ज, एच. व गेडबॉइस जू. 2017 : सुप्रीम कोर्ट आफ इण्डिया : द बिनिंग्स, ओयूपी इण्डिया।
4. मलिक, सुरेन्द्र व सुदीप मलिक, 2015 : सुप्रीम कोर्ट ऑन इन्वायरन्मेन्ट लॉ, ईस्टर्न बुक को नई दिल्ली।
5. दत्ता गुप्ता, सोभनलाल, 1977 : जस्टिस एण्ड द पॉलिटिकल ऑर्डर इन इण्डिया, के.पी. बागची एण्ड कं. कलकत्ता।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई–1 (ख) राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (National 1uman Rights Commission)

इकाइ की रूपरेखा

2.0 उददेश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 आयोग की शक्तियां एवं कार्य

2.3 आयोग की समीक्षा

2.4 सारांश

2.5 बोध प्रश्न

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी समझ सकेंगें कि–

- मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के गठन का प्रावधान किस प्रकार किया गया है।
- आयोग की शक्तियों व कार्य से परिचित होंगे।
- आयोग से शिकायत किस प्रकार दर्ज की जा सकती है।
- साथ ही आयोग की सीमाओं से परिचित हो पायेंगे।

2.1 प्रस्तावना

1993 के मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम का अध्याय–2 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के गठन से संबंधित है। इसमें उल्लिखित है कि आयोग में एक अध्यक्ष 8 सदस्य होंगे। अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश होंगे जबकि सदस्यों में सर्वोच्च या उच्च न्यायालय के सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश होंगे। 2 सदस्य उन व्यक्तियों से लिए जायेंगे जो प्रख्यात मानवाधिकार कार्यकर्ता हैं। इसके अलावा राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनूसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग एवं राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष भी इसके सदस्य होते हैं। इस प्रकार अधिनियम का सेक्शन–तीन के अनुसार आयोग में समाज के विभिन्न वर्गों एवं समूहों का प्रतिनिधित्व करने में सहायता हेतु एक महासचिव भी होता है जो आयोग द्वारा उसे समय–समय पर सौपे गए दायित्वों के अतिरिक्त दैनिक औपचारिक कृत्यों का निर्वहन भी करता है।

सदस्यों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित छः सदस्यीय समिति की अनुशंसा पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष रखा गया है यद्यपि उनकी पुनर्नियुक्ति की जा सकती है। अध्यक्ष सहित किसी भी सदस्य को राष्ट्रपति कदाचार एवं अक्षमता के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गयी जांच रिपोर्ट का संज्ञान लेते हुये 5 वर्ष से पूर्व भी पदच्युत कर सकता है। इसके अलावा पद खोने के अन्य कारण– सार्वजनिक पद धारण करना, शारीरिक या मानसिक हीनता के कारण पद के लिये अयोग्य हो जाए या न्यायालय द्वारा पागल या विक्षिप्त घोषित किया जाना अथवा नैतिक अधःपतन के अपराध में संलिप्तता आदि हो सकते हैं।

केन्द्र सरकार यथावश्यक जब–जब जरूरत पड़े आयोग को सम्पूर्ण अवसंरचना जैसे कार्यालय कर्मी, पुलिस एवं अन्वेषण अभिकरण उपलब्ध करती है। इसका मुख्यालय दिल्ली में है तथा केन्द्र सरकार की अनुमति से इसके कई अन्य कार्यालय सम्पूर्ण देश में खोले गए है या खोले जा रहे हैं।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

2.2 आयोग की भाक्तियां एवं कार्य

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम का सैक्शन 12 एवं 13 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के कृत्यों एवं शक्तियों के बारे में उपबंध करता है। आयोग शिकायत पर या स्वयं संज्ञान लेकर मानवाधिकार से संबंधित किसी प्रकरण की जांच कर सकता हैं इसके मुख्य दो कृत्य हैं–

(1) मानवाधिकारों का हनन या उल्लंघन एवं

(2) इस तरह के मानवाधिकारों के उल्लंघन को रोकने हेतु पुलिस अधिकारी की स्वाभाविक अनिच्छा।

यह कहा गया है कि मानवाधिकार आयोग मानवाधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय उपकरणों के अध्ययन हेतु सुझाव प्रस्तुत करेगा तथा मानवाधिकारों के प्रोन्नयन तथा शोध के लिए कार्य करेगा। यही नहीं, आयोग को ऐसे अनेक कार्य सौंपे गए हैं। न्यायालय की पूर्वानुमति से जहां मानवाधिकार उल्लघन का मामला लम्बित हो यह अपने पास मंगा सकता है तथा उसकी सुनवाई कर सकता है।

सम्बन्धित राज्य सरकार को पूर्व सूचना देकर जेलों या ऐसे संस्थाओं का मुआयना कर सकता है जो पुनर्वास एवं सुधार के लिए गठित की गई हो जैसे बाल सुधार गृह, नारी–निकेतन आदि। यह इनमें जीवन स्तर सुधार हेतु आवश्यक सुझाव भी दे सकता है।

मानवाधिकारों की सुरक्षा से संबंधित विधायन पर पुनर्विचार कर आवश्यक परिवर्तनों को भी सुझा सकता है।

लोक संहिता प्रक्रिया, 1908 (Code of Civil Procedure 1908) के अधीन आयोग को सिविल न्यायालय की समस्त शक्तियां प्राप्त है। आयोग अपने समक्ष प्रस्तुत किसी पीड़ित अथवा उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दायर किसी याचिका पर स्वयं सुनवाई एवं कार्यवाही कर सकता है। इसके अतिरिक्त आयोग न्यायालय की स्वीकृति से न्यायालय के समक्ष लम्बित मानवाधिकारों के प्रति हिंसा सम्बन्धी किसी मामले में हस्तक्षेप कर सकता है। आयोग को यह शक्ति प्राप्त है कि वह सम्बन्धित अधिकारियों को पूर्व सूचित करके किसी भी कारागार का निरीक्षण कर सके अथवा परिस्थितियों के अनुसार अन्य नौकरशाहों को कारागारों के निरीक्षण सम्बन्धी अपनी शक्ति का प्रत्यायोजन कर दे। आयोग द्वारा मानवाधिकारों से सम्बन्धित संधियों इत्यादि का अध्ययन किया जाता है तथा उन्हें और अधिक प्रभावी बनाने सम्बन्धी आवश्यक संस्तुतियां भी की जाती है। साधारणतः आयोग द्वारा स्वीकृत की जाने वाली मानवाधिकारों के उल्लंघन सम्बन्धी याचिकाओं की प्रकृति इस प्रकार की होनी चाहिए।

1. घटना शिकायत करने से एक वर्ष से अधिक समय पूर्व घटित होनी चाहिए।
2. शिकायत अर्द्ध–न्यायिक प्रकार की होनी चाहिए।
3. शिकायत अनिश्चित अज्ञात अथवा छंदम नाम से होनी चाहिए।
4. शिकायत तुच्छ प्रकृति की नहीं होनी चाहिए।
5. आयोग के विस्तार से बाहर की शिकायतें नहीं होनी चाहिए, तथा
6. उपभोक्ता सेवाओं एवं प्रशासनिक नियुक्तियों से सम्बन्धित मामले।

आयोग में शिकायत दर्ज कराना अत्यन्त सरल कार्य है। शिकायत निःशुल्क दर्ज की जाती है। आयोग द्वारा फैक्स और तार द्वारा प्राप्त शिकायतें भी स्वीकार की जाती है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा प्रतिवर्ष देश में मानवाधिकारों की स्थिति से सम्बन्धित एक रिपोर्ट का प्रकाशन किया जाता है। इसके द्वारा इस रिपोर्ट को विधानसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। जबकि राज्य मानवाधिकार आयोग द्वारा ऐसा प्रतिवेदन सम्बद्ध राज्य की विधान सभा के सम्मुख रखा जाता है।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की धारा 30 के अन्तर्गत मानव अधिकारों के उल्लंघन अपराध सम्बन्धी विबादों के त्वरित निपटान हेतु मानव अधिकार न्यायालय का गठन किया जा सकता है। न्यायालय में विबादों को सुलझाने हेतु सरकार अधिसूचना के माध्यम से एक पब्लिक प्रोसिक्यूटर की नियुक्ति करेगी जिसने 7 वर्षो तक अधिवक्ता के रूप में वकालत की हो।

सशस्त्र बलों द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन सम्बन्धी शिकायतों के मामलों में आयोग स्वयं अपने संज्ञान पर

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

अथवा किसी प्राप्त याचिका के आधार पर सरकार से मामले के सम्बन्ध में रिपोर्ट मांग सकता है। रिपोर्ट की प्राप्ति के पश्चात सरकार की सिफारिशों के अनुरूप आयोग शिकायत पर कार्यवाही को रोक सकता है तथा संघीय सरकार द्वारा उक्त मामले के संदर्भ में की गई कार्यवाही से आयोग को तीन माह अथवा आयोग द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर अवगत कराना अनिवार्य है।

2.3 आयोग की समीक्षा

आयोग ने निःसंदेह अपने खाते में कुछ उपलब्धियां दर्ज की है। यह केन्द्र सरकार को यातना एवं क्रूर, अमानवीय एवं निम्न दण्ड या व्यवहार के अन्य स्वरूपों के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र अभिसमय पर हस्ताक्षर कराने हेतु मनाने में सफल हुआ। यह संरक्षा मृत्यु की समस्या को बेहतरीन तरीके से सामने ला सका है। इसने शैक्षिक एववं प्रशिक्षण संस्थानों में मानवाधिकारों पर विशिष्टकृत प्रशिक्षण मॉडयूल तैयार करने में भी मदद की है।

यह हालांकि, महसूस किया जाता रहा है कि आयोग अपनी पूर्ण शक्ति हासिल करने में सक्षम नहीं रहा है। वर्ष 1991 में संयुक्त राष्ट्र अधिकार संस्थान को व्यापक जनादेश बहुलता रखनी चाहिए जिसमें प्रतिनिध्यात्मक संगठन, व्यापक पहुंच, प्रभाविकता, स्वतंत्रता, पर्याप्त संसाधन, और जांच की पर्याप्त शक्ति शामिल है।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा 2(क) मानव अधिकारों को संविधान द्वारा प्रत्याभूत, जीवन समानता एवं वैयक्तिक गरिमा से सम्बद्ध अधिकार के तौर पर परिभाषित करता है या वे अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय या संविदा में उल्लिखित होते हैं तथा भारत में न्यायालय द्वारा लागू कराए जाते हैं। इस प्रकार, कानून एनएचआरसी से सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों पर ध्यान लगाने की बजाय नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर फोकस करने की अपेक्षा करता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण रहा है की अपेक्षानुसार मानव अधिकार आयोग सरकार पर नागरिकों को सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्रदान कराने के लिये दबाव डालने की प्रभावी भूमिका निभा पाता।

आयोग की संरचना के संबंध में तीन आपत्तियां है। पहली कानून ने चयन को संकीर्ण कर दिया है कि व्यक्ति को केवल न्यायपालिका से सम्बद्ध होना चाहिए, मानवाधिकारों में किसी प्रकार की विशेषज्ञता की आवश्यकता नहीं है। यह आयोग की परिप्रेक्ष्यों की बहुलता, विशेष रूझान एवं सभ्य समाज से विभिन्न अनुभवों को प्राप्त करने से रोकता है। दूसरे, अनुशंसा देने वाली समिति में राजनेता होते हैं। तीसरे, चयन की प्रक्रिया पारदर्शी नहीं है। आयोग की संरचना आमतौर पर गोपनीय फाइलों में टिप्पणी करने या राजनेताओं और उनके पसंदीदा नौकरशाहों के बीच बंद दरवाजों के पीछे चल रही बैठकों के दौरान निर्णित होती है।

अधिनियम की धारा–11 के अनुसार, केन्द्र सरकार आयोग को अनुसंधान, जांच, तकनीकी एवं प्रशासनिक कार्य के लिए अधिकारी एवं अन्य स्टाफ मुहैया कराएगी। कानून के इस प्रावधान से आयोग अपने कार्य की जरूरत के लिए केन्द्र सरकार पर निर्भर है।

आयोग में कार्य करने वाले अधिकतर अधिकारी एवं स्टाफ भारत सरकार के विभिन्न कार्यालयों से आते हैं। सरकारी कार्यालयों में काफी समय तक कार्य करने के बाद वे आयोग में आते है, जिससे उनकी एक निश्चित सोच, बदलावों के प्रति बेहद प्रतिरोध, कार्य की नौकरशाही पद्धति और बुरी आदतों का एक भारी भरकम बैकलॉग होता है। उन्हें मानव अधिकार दर्शन के बारे में कोई जानकारी नहीं होती है और न ही वे इसके लिए प्रतिबद्ध होते है।

आयोग को एक निश्चित मात्रा में शिकायतें प्राप्त होती रहती हैं। हालांकि अध्ययन प्रकट करता है कि अधिकतर शिकायतें तीन या चार राज्यों से ही प्राप्त होती है। अधिकारों के प्रति जागरूकता, मात्र कुछ राज्यों तक सीमित होने से, सूचित नहीं होती। लगभग आधे माामलों को प्रथम दृष्टया खारिज कर दिया जाता है। ये मामले वे होते है जो आयोग के चार्टर में नहीं आते या समयबद्ध होते हैं या अर्द्ध–न्यायिक प्रकृति के होते है। इस तरह लोगों में आयोग के चार्टर के बारे में बेहद अज्ञानता होती है।

सशस्त्र बलों के कर्मियों द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामलों की शिकायत की जांच करने का अधिकार अधिनियम द्वारा आयोग को नहीं दिया गया है। हालांकि मानव अधिकार उल्लंघन की शिकायतों की बड़ी तादाद सशस्त्र बलों के कर्मियों के खिलाफ होती है, स्वाभाविक रूप से इन मामलों में लोगों की शिकायतों के एनएचआरसी द्वारा निपटान में अधिनियम इसे कमजोर बना देता है।

आयोग को अपने निर्णयों को लागू करने की शक्ति नहीं है। अधिनियम की धारा–18 के अनुसार आयोग

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

द्वारा हुई जांच में मानव अधिकारों के उल्लंघन के मामले स्पष्ट होने पर, आयोग केवल दोषी व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही करने और पीड़ित को राहते देने की सरकार को सलाह दे सकता है। यदि कोई सरकार सलााह मानने से इंकार कर देती है तो कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो आयोग को इसकी सलाह को लागू करने के लिए सरकार को बाध्य करने हेतु सशक्त करता हो।

2.4 सारांश

आयोग में प्रत्येक वर्ष लंबित मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है। आयोग को इसके कार्यो में पूरी तरह स्वतंत्र समझा जाता है, यद्यपि अधिनियम ऐसा उल्लेख नहीं करता। वास्तव में, अधिनियम में ऐसे प्रावधान है जो आयोग की सरकार पर निर्भरता को कम करते हैं। लेकिन आयोग अपने मानव संसाधन सम्बन्धी जरूरतों के लिए सरकार पर निर्भर है तब बेहद महत्वपूर्ण बात वित्त की है। अधिनियम की धारा–32 के तहत केन्द्र सरकार, आयोग की अनुदान के तौर पर इतना पैसा देगी, जितना वह उपयुक्त समझे। इस प्रकार, मानव शक्ति एवं धन संबंधी जरूरतों, जो अत्यधिक महत्व के है, के परिप्रेक्ष्य में आयोग स्वतंत्र नहीं है।

2.5 बोध प्रश्न

1. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की शक्तियां एवं कार्य बतायें।
2. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की समीक्षा करें।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. देखें भाग 2.2
2. देखें भाग 2.3

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. रे, अरूण, 2004 : नेशनलल हयूमन राईटस कमीशन ऑफ इण्डिया : फॉर्मेशन फंक्शनिंग एण्ड फ्यूचर प्रॉस्पैक्ट्स, अटलांटिक, नई दिल्ली।
2. पाधी, एन.के. 2007 : प्रोटैक्शन ऑफ ह्यूमन राईटस एण्ड नेशनल ह्यूमन राईटस कमीशन रिफलेक्शन ज्ञान पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
3. साह, बी0एल0 2017 : मानवाधिकार, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी।
4. मेल्लल्ली, प्रवीन कुमार, 2017 : 'भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार', सेज पब्लिकेशन इण्डिया प्रा0 लिमि0, नई दिल्ली।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई–1 (ग) राष्ट्रीय महिला आयोग (National Commission for Women)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उददेश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना

3.3 संक्षिप्त इतिहास

3.4 अध्यक्ष

3.5 संविधान

आयोग का संविधान (राष्ट्रीय महिला आयोग, अधिनियम 1990)

3.6 आयोग का आदेशपत्र (राष्ट्रीय महिला आयोग, अधिनियम 1990)

3.7 कार्य एवं अधिकार

3.8 सारांश

3.9 बोध प्रश्न

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी–

- राष्ट्रीय महिला आयोग के उद्देश्यों से परिचित हो सकेंगे।
- राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना का संक्षिप्त इतिहास जान सकेंगे।
- आयोग के आरम्भ से लेकर 2018 तक के अध्यक्षों के नाम से परिचित हो सकेगे।
- साथ ही राष्ट्रीय महिला आयोग के कार्य व अधिकारों को जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय महिला आयोग भारतीय संसद द्वारा 1990 में पारित अधिनियम के तहत जनवरी 1992 में गठित एक सांविधिक निकाय है। यह एक ऐसी इकाई है जो शिकायत या स्वतः संज्ञान के आधार पर महिलाओं के संवैधानिक हितों और उनके लिए कानूनी सुरक्षा उपायों को लागू कराती है। आयोग की पहली प्रमुख सुश्री जयंती पटनायक थी। 17 सितम्बर 2014 को ममता शर्मा का कार्यकाल पूरा होने के पश्चात ललिता कुमारमंगलम को आयोग का प्रमुख बनाया गया था, मगर पिछले साल सितम्बर में पद छोड़ने के बाद रेखा शर्मा कार्यकारी अध्यक्ष के तौर पर यह दायित्व संभाल रही थी, और अब रेखा शर्मा को राष्ट्रीय महिला आयोग का अध्यक्ष बनाया गया है।

3.2 राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना

महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 (भारत सरकार की 1990 की अधिनियम सं0 20) के अन्तर्गत जनवरी 1992 में संवैधानिक निकाय के रूप में निम्नलिखित उददेश्यों के लिए की गयी थी–

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

- महिलाओं के लिए संवैधानिक और कानूनी संरक्षण की समीक्षा करना।
- सुधारात्मक वैधानिक उपायों की अनुशंसा
- शिकायतों के सुधार की सुविधा प्रदान करना और
- महिलाओं को प्रभावित करने वाले सभी नीतिगत तथ्यों पर सरकार को सलाह देना।

कार्यो का लेखा–जोखा

अपने जनादेश के मुताबिक आयोग ने महिलाओं की स्थिति के उत्थान के लिए अनेक कदम उठाए हैं और रिपोर्ट के अन्दर वर्ष भर उनके आर्थिक सशक्तिकरण के लिए काम किए हैं। आयोग ने लक्षद्वीप को छोडकर सभी राज्यों UTs का दौरा किया और महिलाओं और उनके सशक्तिकरण के मूल्यांकन के लिए जेंडर प्रोफाइल तैयार किया। इन्होंने बड़ी संख्या में शिकायतें प्राप्त की और अपनी ओर से अनेक मामलों में शीघ्रता से न्याय के काम किए। इसने बाल विवाह का मुददा उठाया वैधानिक जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन किया पारिवारिक महिला लोक अदालतों की स्थापना और कानूनों जैसे दहेज निषेध अधिनियम 1990 PNDT अधिनियम 1994, इंडियन पैनल कोड 1860 और राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 की समीक्षा की ताकि उन्हें अधिक कठोर और प्रभावी बनाया जा सके। आयोग ने वर्कशॉप/कंसल्टेशन, महिलाओं की आर्थिक सशक्तिगरण पर विशेषज्ञ कमेटी का गठन किया, लैंगिक जागरूकता के लिए वर्कशॉप/सेमिनार का आयोजन और मादा भ्रूण हत्या, महिलाओं के प्रति हिंसा, इत्यादि के खिलाफ जन अभियान चलाए ताकि इन सामाजिक बुराईयों के विरूद्ध समाज में जागरूकता बन सके।

3.3 संक्षिप्त इतिहास

महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 (भारत सरकार की 1990 की धारा सं० 20) के अंतर्गत जनवरी 1992 में संवैधानिक निकाय के रूप में महिलाओं के लिए संवैधानिक और कानूनी संरक्षण की समीक्षा सुधारात्मक वैधानिक उपायों की अनुशंसा, शिकायतों के सुधार की सुविधा प्रदान करना तथा महिलाओं को प्रभावित करने वाले सभी नीतिगत तथ्यों पर सरकार को सलाह देने के उददेश्य से स्थापना की गई थी।

भारत में महिलाओं की स्थिति पर गठित समिति (स्टेटस ऑफ वुमेन इन इन्डिया–CSWI) ने लगभग दो दशक पहले, शिकायतों के निपटान के लिए निगरानी कार्यो की पूर्ति तथा महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक विकास को त्वरित करने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग की अनुशंसा की।

महिलाओं की राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना (1988 व 2000) के साथ–साथ अनुक्रमिक समिति/आयोग/नीति ने महिलाओं के लिए शीर्ष निकाय के विधान की अनुशंसा की।

वर्ष 1990 के दौरान, केन्द्र सरकार ने एनजीओ, सामाजिक कार्यकर्ताओं और विशेषज्ञों के साथ मिलकर आयोग प्रस्तावित संरचना, कार्यो, शक्तियों की स्थापना की। मई 1990 में, बिल को लोकसभा में लाया गया।

जुलाई 1990 में बिल के संदर्भ में HRD मंत्रालय ने सुझाव प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय स्तर के कॉन्फ्रेन्स का आयोजन किया। अगस्त 1990 में सरकार ने अनेक संशोधन किए और नागकिरक अदालत के साथ आयोग को अधिकृत करने के लिए नए प्रावधान निर्मित किये।

पहले आयोग का गठन 31 जनवरी 1992 को अध्यक्ष के रूप में श्रीमती जयंती पटनाइक के नेतृत्व में हुआ। दूसरे आयोग का गठन जुलाई 1992 को अध्यक्ष के रूप में डॉ० (श्रीमती) मोहिनी गिरी के नेतृत्व में हुआ। तीसरे आयोग का गठन जनवरी 1999 को अध्यक्ष के रूप में श्रीमती विभा पार्थसारथी के देखरेख में हुआ। चौथे आयोग को जनवरी 2002 में गठित किया गया और सरकार ने डॉ० पूर्णिमा आडवानी को अध्यक्ष के रूप में मनोनीत किया। पांचवे आयोग को फरवरी 2005 में गठित किया गया और सरकार ने डॉ० गिरिजा व्यास को 2005 से 2008 तक अध्यक्ष के रूप में मनोनीत कियां पुनः गिरिजा व्यास को 2008 से 2011 तक व ममता शर्मा को 2011 से 2014 तक, ललिता कुमारमंगलम 2014 से 2018 से वर्तमान तक अध्यक्षों की सूची निम्नवत है–

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

3.4 अध्यक्ष

आयोग के प्रारम्भ से अब तक के अध्यक्षों की सूची–

क.सं0	नाम	कार्यकाल प्रारम्भ	कार्यकाल समाप्त
1.	जयंती पटनायक	03.02.1992 से	30.01.1995 तक
2.	वी मोहिनी गिरि	27.07.1995	20.07.1998
3.	विभा पार्थसारथी	18.01.1999	17.01.2002
4.	पूर्णिमा आडवानी	25.01.2022	24.01.2005
5.	गिरिजा व्यास	16.02.2005	15.02.2008
6.	गिरिजा व्यास	09.04.2008	08.04.2011
7.	ममता शर्मा	02.08.2011	01.08.2014
8.	ललिता कुमारमंगलम	29.09.2014	29.09.2017
9.	रेखा शर्मा (कार्यवाहक)	29.09.2017	06.08.2018
10.	रेखा शर्मा	07.08.2018	–

3.5 आयोग का संविधान (राष्ट्रीय महिला आयोग, अधिनियम 1990)

केन्द्र सरकार शक्ति प्रदान करने और इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्दिष्ट कार्यों के संपादित करने के लिए राष्ट्रीय आयोग के रूप में एक निकाय का गठन करेगी।

आयोग में होंगे–

(ए) महिलाओं के हित के लिए समर्पित एक अध्यक्ष, जिसे केन्द्र सरकार द्वारा मनोनीत किया जायेगा।

(बी) पांच सदस्य, जिन्हें केन्द्र सरकार द्वारा मनोनीत किया जाना है, जो योग्य, एकीकृत और अस्थायी हों और कानून अथवा विधान, व्यापार संघ, महिलाओं की उद्यमिता प्रबन्धन, महिलाओं के स्वैच्छिक संस्थान(महिला कार्यकर्ताओं को शामिल करते हुए), प्रशासन, आर्थिक विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा और समाज कल्याण का अनुभव रहा हो।

बशर्ते कि कम से कम एक सदस्य अनूसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से होगे।

(सी) केन्द्र सरकार द्वारा मनोनीत एक मेम्बर–सेक्रेटरी, जो–

1. प्रबन्धन, संगठनात्मक संरचना अथवा समाजशास्त्रीय गतिविधियों के विशेषज्ञ होगे अथवा
2. एक अधिकारी जो यूनियन के सिविल सर्विस अथवा अखिल भारतीय सर्विस के सदस्य होंगे अथवा जो उपयुक्त अनुभव के साथ यूनियनन के अंतर्गत सिविल पोस्ट होल्ड करते हैं।

3.6 आयोग का आदेशपत्र (राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990)

- आयोग निम्नलिखित में से सभी अथवा कोई एक कार्य संपादित करेंगे, यथा–
- संविधान तथा अन्य कानूनों के अंतर्गत महिलाओं को प्रदान किए गए संरक्षण से संबंधित सभी मामलों की

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

जांच तथा पड़ताल।

- वार्षिक रूप से केन्द्र सरकार को प्रस्तुत करना तथा ऐसे ही अन्य मदों पर जिन्हें आयोग सही मानता है उन सुरक्षा की कार्यप्रणाली पर रिपोर्ट सौंपना।
- केन्द्र या किसी राज्य द्वारा महिलाओं की दशा को सुधारने के लिए तय प्रावधानों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए अनुशंसा रिपोर्ट सौंपना।
- महिलाओं के ऊपर संविधान तथा अन्य कानूनों के प्रावधानों की समय–समय पर समीक्षा तथा संशोधन का सुझाव, ताकि उन्हें और बेहतर बनाया जा सके।
- महिलाओं के ऊपर संविधान तथा अन्य कानूनों के प्रावधानों के उल्लंघन के मामले को उचित अधिकारियों द्वारा देखना।
- शिकायतों की जांचकर अपनी तरफ से निम्न मामलों से जुड़ा नोटिस भेजना–
    - ➢ महिला अधिकारों का वंचन।
    - ➢ महिला को सुरक्षा प्रदान करने वाले कानून का लागू न होना तथा समानता और विकास का उददेश्य हासिल करना।
    - ➢ महिलाओं की कठिनाईयों को कम कर राहत कल्याण करने वाले निर्देशों, नीति–निर्णयों के अनुपालन न होना और ऐसे मामलों से उपजे मुद्दे को उचित अधिकारियों के साथ उठाना।
    - ➢ महिलाओं के खिलाफ अत्याचार तथा भेदभाव से उपजी विशेष समस्याओं का विशेष अध्ययन या जांच करना और उनसे छुटकारा के लिए अनुशंसित रणनीतियों की सीमाओं की पहचान करना।
- बढ़ावा देने वाले तथा शिक्षित करने वाले अनुसंधान का संचालन करना ताकि हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जा सके और उनके विकास के अड़चनों की पहचान करना जैसे घर तथा बुनियादी सेवाओं की कमी, अरूचिकर कार्यो को कम करने तथा स्वास्थ्य खतरे को कम करने तथा उनकी उत्पादकता को बढ़ाने के लिए अपर्याप्त सहायक सेवाएं तथा तकनीकियां।
- महिलाओं के सामाजिक–आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना तथा अपनी सलाह देना।
- संघ तथा राज्य के तहत महिला विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना।
- जेल, सुधार गृह, महिला संस्थान या अन्य कैद स्थान जहां महिलाओं को कैदी के रूप में रखा जाता है कि जांच करना तथा आवश्यकता पड़ने पर संबंधित अधिकारी के समक्ष सुधार हेतु परामर्श करना।
- फंड मुकदमा जिसमें ऐसे मामले शामिल हों जो महिलाओं के बड़े निकाय को प्रभावित करते हों
- महिलाओं से जुडे किसी भी मामले पर सरकार को समय–समय पर रिपोर्ट सौपना।
- अन्य कोई मामला जिसे केन्द्र सरकार द्वारा इसे हस्तांतरित किया गया हो।
- केन्द्र सरकार उपधारा (1) के उपबंध (ड़) से संबंधित सभी रिपोर्ट को संघ द्वारा दी गयी अनुशंसाओं से संबंधित उठाए गए कदम या उठाए जाने वाले कदम के ज्ञापन के साथ संसद के दोनों सदन में रखेगी और यदि कोई अनुशंसा मान्य न हो तो उसके बारे में भी सूचित करेगी।
- जहां कोई ऐसी रिपोर्ट या उसका कोई हिस्सा राज्य सरकार से जुड़ा होता है, आयोग उस रिपोर्ट या हिस्से को उस राज्य सरकार को भेजेगी जो उसे राज्य विधान सभा में उठाए गए कदम या उठाए जाने वाले कदम के ज्ञापन के साथ संसद के दोनों सदन में रखेगी और यदि कोई अनुशंसा मान्य न हो तो उसके बारे में भी सूचित करेगी।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

- उपधारा (1) के उपबंध (f) के उप–उपबंध (प) या उपबंध (a) में किसी मामले की जांच करने के दौरान आयोग के पास विशेषकर निम्न के संदर्भ में एक दीवानी अदालत के सभी अधिकार होंगे–
- भारत के किसी भाग से किसी भी व्यक्ति को सम्मन भेजना तथा उपस्थित होने का आदेश देना और शपथ के दौरान उसकी जांच करना
- किसी दस्तावेज की खोज तथा प्रस्तुत की आवश्यकता जताना।
- शपथपत्रों पर साक्ष्यों को प्राप्त करना।
- किसी सार्वजनिक रिकार्ड या कॉपी को किसी अदालत या कार्यालय से प्राप्त करना
- गवाहों और दस्तावेजों की जांच के लिए आयोग का गठन करना तथा
- या कोई अन्य मामला जिसका सुझाव दिया गया हो।

3.7 कार्य एवं अधिकार

1. आयोग के कार्यो में संविधान तथा अन्य कानूनों के अंतर्गत महिलाओं के लिए उपबंधित सुरक्षा उपायों की जांच और परीक्षा करना है। साथ ही उनके प्रभावकारी कार्यान्वयन के उपायों पर सरकार को सिफारिश करना और संविधान तथा महिलाओं के प्रभावित करने वाले अन्य कानूनों के विद्यमान प्रावधानों की समीक्षा करना है।
2. इसके अलावा संशोधनों की सिफारिश करना तथा ऐसे कानूनों में किसी प्रकार की कमी, अपर्याप्तयता अथवा कमी को दूर करने के लिए उपचारात्मक उपाय करना है।
3. शिकायतों पर विचार करने के साथ–साथ महिलाओं के अधिकारों के वंचन से संबंधित मामलों में अपनी ओर से ध्यान देना तथा उचित प्राधिकारियों के साथ मुददे उठाना शामिल है।
4. भेदभाव और महिलाओं के प्रति अत्याचार के कारण उठने वाली विशिष्ट समस्याओं अथवा परिस्थितियों की सिफारिश करने के लिए अवरोधों की पहचान करना महिलाओं के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए योजना बनाने की प्रकिया में भागीदारी और सलाह देना तथा उसमें की गई प्रगति का मूल्यांकन करना इनके प्रमुख कार्य है।
5. साथ ही कारागार रिमांड गृहों जहां महिलाओं को अभिरक्षा में रखा जाता है, आदि का निरीक्षण करना और जहां कहीं आवश्यक हो उपचारात्मक कार्रवाई किये जाने की मांग करना इनके अधिकारों में शामिल है। आयोग को संविधान तथा अन्य कानूनों के तहत महिलाओं के रक्षा के उपायों से संबंधित मामलों की जांच करने के लिये सिविल न्यायालय की शक्तियां प्रदान की गई है।

3.8 सारांश

राष्ट्रीय महिला आयोग का उद्देश्य भारत में महिलाओं के अधिकारों का प्रतिनिधित्व करने के लिये और उनके मुददों और चिंताओं के लिए एक आवाज प्रदान करना है। आयोग ने अपने अभियान में प्रमुखता के साथ दहेज, राजनीति, धर्म और नौकरियों में महिलाओं के लिए प्रतिनिधित्व तथा श्रम के लिए महिलाओं के शोषणा को शामिल किया है, साथ ही महिलाओं के खिलाफ पुलिस दमन और गाली–गलौज को भी गंभीरता से लिया है।

बलात्कार पीड़ित महिलाओं के राहत और पुनर्वास के लिए बनने वाले कानून में राष्ट्रीय महिला आयोग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अप्रवासी भारतीय पतियों के जुल्मों और धोखे की शिकार या परित्यक्त महिलाओं को कानूनी सहारा देने के लिए आयोग की भूमिका भी अत्यंत सराहनीय रही है।

2.9 बोध प्रश्न

1. राष्ट्रीय महिला आयोग के इतिहास को बतायें।

2. संक्षिप्त में आयोग का संविधान बतायें।
3. आयोग के कार्य व अधिकारों का वर्णन करें।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. देखें भाग 3.2, 3.3
2. देखें भाग 3.5
3. देखें भाग 3.7

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. शर्मा, पवन, 2017 : जरनी ऑफ वूमेन लॉ रिफार्म एण्ड द लॉ कमीशन ऑफ इण्डिया : सम इनसाइट्स, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
2. भार्गव, एम.एल., 2017 : वूमेन एण्ड लॉस, कमल पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. साह, बी0एल0 2017 : मानवाधिकार, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी।
4. मेल्लल्ली, प्रवीन कुमार, 2017 : 'भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार', सेज पब्लिकेशन इण्डिया प्रा0 लिमि0, नई दिल्ली।

इकाई–2 (क) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर (संयुक्त राष्ट्र संघ एवं एनजीओ की भूमिका) United Nations and Role of NGOs

(क) संयुक्त राष्ट्र संघ

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ का इतिहास

4.3 वैधानिक योजना

4.4 संरचनात्मक स्वरूप

4.5 शक्तियों का विभाजन

4.6 सुरक्षा परिषद की शक्तियां

4.7 शीतयुद्ध और उसके प्रभाव

4.8 सुरक्षा परिषद का ह्रास/पतन

4.9 साधारण सभा एवं महासचिव पर प्रभाव

4.10 तनाव – शैथिल्य और नव शीतयुद्ध

4.11 अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए प्रयास

4.12 1956 एक ऐतिहासिक मील स्तंभ

4.13 अनिश्चिततापूर्ण दशक

4.14 ताजा उपलब्धियां/सफलताएं

4.15 सारांश

4.16 बोध प्रश्न

4.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी जान सकेंगे कि–

- संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पत्ति कैसे हुई।
- संयुक्त राष्ट्र संघ की संरचना व शक्तियां जान सकेंगे।
- सुरक्षा परिषद् को समझ सकेंगे।
- संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए क्या–क्या प्रयास हुए ?
- संयुक्त राष्ट्र संघ की उपलब्धियां या सफलताएं जान सकेंगे।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

4.1 प्रस्तावना

विश्व में राष्ट्रों के मध्य विवादों का हल करने तथा युद्ध रोकने के लिए एक विश्व संगठन–लीग ऑफ

नेशन्स की स्थापना हुई किन्तु लीग युद्धों के प्रकोप या एक राष्ट्र पर आक्रमण को नहीं रोक सकी। लीग की असफलता से अप्रभावित होते हुए एवं द्वितीय विश्वयुद्ध की भीषणता के जारी रहते हुए भी मित्र राष्ट्र आने वाली पीढ़ियों को युद्ध के अनिष्ट/उत्पीड़न से बचाने, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के प्रति सम्मान कायम करने और वृहत्तर स्वतंत्रता के साथ उच्चतर जीवन को प्रोत्साहित करने के लिए नये विश्व संगठन की स्थापना की प्रक्रिया की शुरूआत करते हेतु एकत्र हुए। मित्र राष्ट्र एक नये और श्रेष्ठ विश्व संगठन की स्थापना के प्रति दो कारणों से काफी विश्वस्त थे। प्रथम, संयुक्त राज्य अमेरिका जो लीग सदस्य नहीं था और सोवियत रूस, जिसने कुछ वर्षों के बाद लीग की सदस्यता छोड़ दी थी, नये विश्व संगठन की स्थापना में एक साथ थे। दूसरा, वे लीग की दुर्बलताओं से परिचित थे ।

इन प्रयासों के उपरान्त स्थापित हुए संयुक्त राष्ट्र संघ को अपने क्षेत्र एवं उद्देश्यों में अधिकतम व्यापक एवं विस्तृत आधारयुक्त बनाया गया। इस नये विश्व संगठन का कार्य उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करना भी था। इस अध्याय में संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंगों की भूमिका एवं विश्व शांति हेतु उनके प्रयासों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्य प्रणाली पर शीत युद्ध के प्रभाव की चर्चा होगी।

4.2 अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर (संयुक्त राष्ट्र संघ का इतिहास)

संयुक्त राष्ट्र संघ एक अंतर्राष्ट्रीय अंतर्सरकारी संगठन के रूप में निर्माण का विश्व का दूसरा प्रयास था। राष्ट्र संघ की असफलता ने एक ऐसे नये संगठन की स्थापना के विचार को जन्म दिया जो अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को अधिक समतापूर्ण व न्यायोचित बनाने में केन्द्रीय भूमिका अदा कर सके। यह विचार द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उभरा तथा 5 राष्ट्रमंडल सदस्यों तथा 8 यूरोपीय निर्वासित सरकारों द्वारा 12 जून, 1941 को लंदन में हस्ताक्षरित अंतर मैत्री उद्घोषणा में पहली बार सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त हुआ। इस उद्घोषणा के अंतर्गत एक स्वतंत्र विश्व के निर्माण हेतु कार्य करने का आह्वान किया गया, जिसमें लोग शांति व सुरक्षा के साथ रह सकें। इस घोषणा के उपरांत अटलांटिक चार्टर 14 अगस्त, 1941 पर हस्ताक्षर किये गये। इस चार्टर को संयुक्त राष्ट्र के जन्म का सूचक माना जाता है। इस चार्टर पर ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल तथा अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी0 रूजवेल्ट द्वारा अटलांटिक महासागर में मौजूद एक युद्धपोत पर हस्ताक्षर किये गये थे। अटलांटिक चार्टर ने एक ऐसे विश्व की आशा को अभिव्यक्त किया, जहां सभी लोग भयमुक्त वातावरण में रह सकें तथा निजीकरण एवं आर्थिक सहयोग के मार्ग की खोज कर सकें। 1 जनवरी 1942 को वाशिंगटन में अटलांटिक चार्टर का समर्थन करने वाले 26 देशों ने संयुक्त राष्ट्र की घोषणा पर हस्ताक्षर किये। यहां पहली बार राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा अभिकल्पित नाम संयुक्त राष्ट्र का प्रयोग किया गया। इंग्लैंड, चीन, सोवियत संघ तथा अमेरिका द्वारा 30 अक्टूबर, 1943 को सामान्य सुरक्षा से सम्बंधित मास्को घोषणा पर हस्ताक्षर किये गये। यह घोषणा भी शांति बनाये रखने के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन के विचार का अनुमोदन करती थी। नवंबर–दिसंबर 1943 में अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट, ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल तथा सोवियत संघ के प्रधान स्टालिन ने तेहरान में मुलाकात की तथा संयुक्त राष्ट्र संगठन की स्थापना हेतु विभिन्न योजनाओं पर विचार–विमर्श किया। यह द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मुख्य मित्र राष्ट्र नेताओं की प्रथम बैठक थी। 1944 में अगस्त से अक्टूबर तक सोवियत संघ, अमेरिका, चीन तथा ब्रिटेन के प्रतिनिधियों द्वारा वाशिंगटन के डम्बर्टन ओक्स एस्टेट में कई बैठके आयोजित की गयी। जिनका उद्देश्य एक शांतिरक्षक संगठन की योजना बनाना था वे एक प्राथमिक योजना का खाका खींचने में सफल हुए। 7 अक्टूबर, 1944 को संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्तावित ढांचे को प्रकाशित किया गया। इनमें प्रस्तावों पर आगे चलकर याल्टा सम्मेलन (फरवरी 1945) में विचार–विमर्श किया गया, जहां सोवियत संघ, अमेरिका एवं ब्रिटेन के राष्ट्राध्यक्षों की बैठक हुई थी। अंत में अंतर्राष्ट्रीय संगठन से संबंधित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में 50 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। 25 अप्रैल, 1945 को सेन फ्रांसिस्को में आयोजित इस सम्मेलन को सभी सम्मेलनों की समाप्ति करने वाला सम्मेलन माना जाता है। जहां नये संगठन का संविधान तैयार किया गया। 26 जून, 1945 की सभी 50 देशों ने चार्टर पर हस्ताक्षर किये। पोलैंड सम्मेलन में हिस्सा नहीं ले सका था किंतु थोड़े समय बाद चार्टर पर हस्ताक्षर करके वह भी संस्थापक सदस्यों की सूची में शामिल हो गया। लिखित अनुमोदनों की अपेक्षित संख्या अमेरिकी विदेश विभाग में जमा हो जाने के बाद 24 अक्टूबर, 1945 से चार्टर प्रभावी हो गया। 31 दिसंबर, 1945 तक सभी हस्ताक्षरकर्ता देश चार्टर का अनुमोदन कर चुके थे। 24 अक्टूबर को प्रतिवर्ष संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप में मनाया जाता है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

4.3 वैधानिक योजना

संयुक्त राष्ट्र संघ 159 राष्ट्रों का स्वैच्छिक संगठन है और यह विश्व शांति तथा सुरक्षा और मानवता की उन्नति के लिए काम करता है। विश्व के सभी भागों के राष्ट्र इसके सदस्य हैं। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में अपने प्रतिनिधि भेजता है, जो कि न्यूयार्क में है तथा जहां वार्ताएं होती हैं और समस्याओं के समाधान के लिए गंभीर प्रयास किये जाते हैं। यह युद्ध के कारणों का पता लगाता है तथा उन्हें समाप्त करने के तरीके खोजने के प्रयास करता है। संयुक्त राष्ट्र संघ को अपने प्रयासों में सफलता और असफलता मिली है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की योजना अमेरिका के गृह विभाग में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान बनाई गई। इसके साथ अमेरिकी सरकार भी नये विश्व संगठन के लिए राजनयिक क्षेत्र में काफी सक्रिय रही। 1943 के मास्को सम्मेलन में चारों बड़े राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के लिए सहमत हुए। अगले वर्ष वाशिंगटन में हुए डम्बरटन ओक्स सम्मेलन में इनके प्रतिनिधियों में प्रस्तावों के एक समूह पर समझौता हुआ, जिन्हें बाद में सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया। किन्तु प्रस्तावित सुरक्षा परिषद् में अपनाई जाने वाली मतदान प्रक्रिया पर सम्मेलन में मतैक्य नहीं हो सका। फरवरी, 1945 में याल्टा में सोवियत रूस, ब्रिटेन और अमेरिका सुरक्षा परिषद् की मतदान प्रक्रिया पर सहमत हो गये, जिसे बाद में सेन–फ्रांसिस्को में स्वीकार कर लिया गया। इस बात पर भी सहमति प्राप्त हुई कि नये संगठन के चार्टर को बनाने के लिए सेन–फ्रांसिस्को में एक सम्मेलन किया जायेगा। अंततः 25 अप्रैल से 25 जून 1945 तक सेन–फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन या अंतर्राष्ट्रीय संगठन सम्मेलन हुआ। अंत में 50 देशों ने जिन्होंने ध्रुव शक्तियों का विरोध किया था, संयुक्त राष्ट्र के चार्टर (संविधान) पर हस्ताक्षर कर दिये। 24 अक्टूबर, 1945 से चार्टर लागू हुआ। प्रत्येक वर्ष यह दिन संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप में मनाया जाता है ।

चार्टर में निम्न चार उद्देश्य वर्णित हैं–(1) अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाये रखना (2) राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को विकसित करना (3) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रकृति की समस्याओं के समाधान हेतु अंतर्राष्ट्रीय सहयोग संवर्द्धन, (4) इन सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदस्य राष्ट्रों के विवादास्पद हितों और कार्यों में समन्वय/सामंजस्य करना ।

4.4 संरचनात्मक स्वरूप

संयुक्त राष्ट्र संघ का कार्य छः प्रमुख अंगों द्वारा निष्पादित किया जाता है। ये हैं–साधारण सभा, सुरक्षा परिषद्, आर्थिक और सामाजिक परिषद, न्यासधारिता, सचिवालय और अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय।

साधारण सभा, जो कि पूरे संगठन का केन्द्र है, का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह सार्वभौमिकता और राष्ट्रों की समानता के सिद्धांतों पर आधारित है। सभी सदस्य राष्ट्रों का इसमें प्रतिनिधित्व होता है। प्रत्येक छोटे या बड़े राष्ट्र अथवा शक्तिशाली या दुर्बल राष्ट्र का एक मत होता है और प्रत्येक देश अपने प्रतिनिधि चुनने का निर्णय करता है। शांति और सुरक्षा सहित प्रमुख मुद्दों पर साधारण सभा के प्रस्ताव तभी परित माने जायेंगे, जबकि उपस्थित सदस्यों के दो–तिहाई इसके पक्ष में मतदान करें। साधारण सभा की नियमित सत्रों में बैठक होती है, जो प्रत्येक वर्ष सितम्बर में प्रारम्भ होती है तथा दिसम्बर के अंत तक चलती है ।

साधारण सभा के विपरीत सुरक्षा परिषद् की सदस्यता सीमित होती है। परिषद् में केवल पन्द्रह सदस्य होते हैं जिनमें से दस सदस्यों (अस्थाई सदस्य) का चुनाव साधारण सभा द्वारा दो वर्षों के लिए किया जाता है। शेष पांच सदस्य 'स्थाई सदस्य' कहलाते हैं। अस्थाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष बाद बदलते हैं। जबकि स्थाई सदस्य बिना विघ्न के सदस्य बने रहते हैं। पांच स्थाई सदस्यों–चीन, फ्रांस, सोवियत रूस ब्रिटेन और अमेरिका, का चुनाव नहीं होता, जबकि चार्टर में स्पष्ट रूप से उनके बारे में लिखा गया है। इन्हें विशेष दर्जा इसलिए प्रदान किया गया कि इन्हें बड़ी शक्तियां माना जाता था। निःसन्देह ही सभी पांच सदस्य समान रूप से बड़े या महान नहीं हैं। अमेरिका और रूस स्पष्टतः सर्वप्रथम शक्तियां हैं। ब्रिटेन और फ्रांस को बड़ी शक्तियों का दर्जा उनकी आर्थिक और सैनिक ताकत के कारण दिया गया और चीन को बाद में स्थाई सदस्य बनाया गया, क्योंकि इसने राष्ट्रों के समुदाय में एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था ।

चार्टर के अनुसार सामान्यतः परिषद् बहुमत के आधार पर निर्णय करती है। किन्तु प्रमुख मुद्दों पर सभी पांचों स्थाई सदस्यों में सहमति होनी चाहिए। इसका अर्थ है कि महत्वपूर्ण विचारणीय मुद्दों पर यदि स्थाई सदस्य

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

भी मत नहीं देता है, तो परिषद के प्रस्ताव पारित नहीं किये जा सकते। प्रक्रिया सम्बन्धी प्रस्तावों, जैसे–परिषद् की बैठकों की तिथि तय करना, बैठकों को स्थगित करना आदि के लिए सामान्य बहुमत की जरूरत होती है न कि स्थाई सदस्यों की पूर्ण सहमति की ।

इस प्रकार सुरक्षा परिषद् की लीग ऑफ नेशन्स की परिषद् से भिन्नता इस बात में है कि उनसें निषेधाधिकार शक्ति (नकारात्मक मतदान करने की शक्ति) सभी सदस्यों (स्थाई एवं गैर स्थाई) प्रदान की गई थी, जिसके कारण इसके द्वारा प्रस्तावों को पारित कराने के लिए आवश्यक पूर्ण सहमति (मतैक्य) प्राप्त करना मुश्किल हो गया था ।

स्थाई सदस्यों को निषेधाधिकार इसलिए प्रदान किया गया ताकि परिषद् के निर्णयों में बड़ी शक्तियों का समर्थन सुनिश्चित किया जा सके। इसके अलावा यह ध्यान रहना चाहिए कि सुरक्षा परिषद् को संयुक्त राष्ट्र के किसी आक्रमणकारी सदस्य राष्ट्र के विरूद्ध कठोर कदम उठाने की शक्ति प्राप्त है। अतः यह आवश्यक है कि परिषद् के नियमों और प्रक्रियाओं की रचना इस प्रकार की जाय कि आवश्यक होने पर तुरन्त इसकी बैठक हो सके एवं यह कार्यवाही कर सके ।

4.5 शक्तियों का विभाजन

साधारण सभा की खुली सदस्यता को ध्यान में रखते हुए चार्टर में साधारण सभा को चार्टर के क्षेत्र के अन्तर्गत राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मानवीय या किसी भी प्रकार के मामले पर वार्ता करने का अधिकार प्रदान किया गया है। इस शक्ति के अंतर्गत साधारण सभा उपयुक्त सलाह देने के लिए किसी भी शक्ति या सुरक्षा से सम्बन्धित प्रश्न पर विचार कर सकती है। किंतु सुरक्षा परिषद् की कार्यसूची में शामिल मामले इसको परामर्श देने की व्यापक शक्ति का एकमात्र अपवाद है। चार्टर का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर पता चलाता है कि साधारण सभा की परिकल्पना एक विचार विमर्श तथा परामर्श देने वाली संस्था के रूप में की गई है न कि शांति एवं सुरक्षा की समस्याओं पर निर्णय करने वाली संस्था के रूप में। यह शक्ति सुरक्षा परिषद् को प्रदान की गई है। सुरक्षा परिषद् द्वारा एक बार कोई निर्णय लेने पर सभी सदस्य उससे बाध्य हो जाते हैं। चार्टर द्वारा साधारण सभा तथा सुरक्षा परिषद् के शांति स्थापना सम्बन्धित क्षेत्राधिकार में इसी प्रकार शक्तियों का विभाजन किया गया है। संयोग से "परिषद्" शब्द से पूर्व लगे विशेषण "सुरक्षा" से ही शांति और सुरक्षा से सम्बन्धित मामलों में सुरक्षा परिषद् की "साधारण" सभा की अपेक्षा उच्च शक्तियों का पता चलता है

लीग के अभिसमय के विपरीत संयुक्त राष्ट्र के चार्टर ने महासचिव की विशेष भूमिका को रेखांकित कर दिया है। वह साधारण सभा, सुरक्षा परिषद या संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंगों की वार्ताओं (बहस) में हस्तक्षेप कर सकता है। वह इस विश्व संस्था के कार्यों की एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करता है और योजना में महासचिव के लिए नियत भूमिका अदा करता है। चार्टर ने अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए महासचिव की सार्थक भूमिका के लिए आधार प्रस्तुत किया है। महासचिव की कोई भी ऐसी समस्या जो उसके विचार से अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को संकट में डाल सकती है, को सुरक्षा परिषद् के सम्मुख लाने के लिए अधिकृत है। सार रूप में, संयुक्त राष्ट्र के संस्थापक शांतिपूर्ण विश्व के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यों के परिचालन हेतु सहायता, नेतृत्व और उपक्रम करने वाले एक प्रमुख स्रोत की स्थापना करना चाहते थे।

4.6 सुरक्षा परिषद की शक्तियां

चार्टर के द्वारा विश्व शांति और सुरक्षा का प्राथमिक उत्तरदायित्व सुरक्षा परिषद् को सौंपा गया है। चार्टर में विश्व शांति के दो अंतः सम्बन्धित क्षेत्रों में कार्य करने के लिए सुरक्षा परिषद् को अधिकृत किया गया है। ये हैं–(1) राष्ट्रों के मध्य विवादों का शांतिपूर्ण समाधान और (2) अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने या पुनः स्थापित करने के लिए दंडात्मक सामूहिक कार्यवाही ।

विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के क्षेत्र में सुरक्षा परिषद् (अ) सम्बन्धित पक्षों से विवादों को उसकी पसन्द के उपायों, वार्ता, पूछताछ, मध्यस्थता आदि के द्वारा हल करने की प्रार्थना कर सकती है। (ब) किसी विवाद या स्थिति, जिसके कारण सम्बन्धित पक्षों के मध्य तनाव हुआ है, की जांच पड़ताल कर सकती है (स) शांतिपूर्ण समाधान खोजने के लिए उपयुक्त तरीकों के बारे में सुझाव दे सकती है, जिनके द्वारा विवाद को हल किया जा सकता है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

विवादों के शांतिपूर्ण हल के सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद् की शक्तियों की एक प्रमुख विशेषता है, किसी भी विवाद के सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद् (जिसका साधारण सभा के साथ क्षेत्राधिकार होता है) केवल समाधान के सुझाव दे सकती है। किंतु कोई भी सुझाव सम्बन्धित पक्षों पर बाध्यकारी नहीं हो सकता। किन्तु किसी आक्रमणकारी अथवा शान्ति भंग होने आदि की स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की पुनर्स्थापना हेतु बाध्यकारी, दबावकारी कार्यवाही करने के लिए स्थिति बिल्कुल भिन्न होती है। दबावकारी कार्यवाही हेतु निर्णय लेना सुरक्षा परिषद का एकमात्र विशेषाधिकार है। इस प्रकार के निर्णय संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्यों के लिए बाध्यकारी है। यह चार्टर के द्वारा सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा को अधिक प्रभावशाली बनाने का एक अतुलनीय उदाहरण है।

दबावकारी कार्यवाही करने की अपनी शक्ति के रूप में सुरक्षा परिषद् यह निर्णय कर सकती है कि क्या किसी देश ने आक्रमण किया है या शान्ति को भंग किया है और उसके बाद अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की पुनः स्थापना के लिए यह कई विकल्पों का प्रयोग कर सकती है। परिषद् "आक्रमणकारी" राष्ट्र के विरूद्ध विभिन्न दंडात्मक साधनों के लिए निर्णय कर सकती है। इनमें असैनिक प्रतिबंध, जैसे–आर्थिक सम्बन्धों पर रोक, रेल, समुद्र, वायु डाक, तार, रेडियो और अन्य सम्पर्क साधनों का विच्छेद, राजनयिक सम्बन्ध तोड़ना या सैन्य प्रतिबंध, जिनमें आक्रमणकारी के विरूद्ध वायु, जल या थल शक्ति का प्रयोग भी शामिल हो सकते हैं। उदाहरण के लिए जब ईराक ने एक स्वतंत्र देश कुवैत को अपने में मिला लिया तो परिषद् ने ईराक के विरूद्ध सैन्य कार्यवाही की थी।

सुरक्षा परिषद के निर्णयों को स्वीकार करने तथा उसके आदेशों के अनुरूप कार्य करने की अग्रिम जिम्मेदारी लेने के अलावा विश्व–शांति की पुनर्स्थापना के लिए सदस्य राष्ट्र सुरक्षा परिषद् से पृथक–पृथक समझौते के तहत उसे सेनाएं उपलब्ध कराने के लिए सहमत हुए हैं। इस उद्देश्य के लिए चार्टर में मिलिटरी स्टाफ कमेटी की व्यवस्था की गयी है, जिसमें केवल पांचों स्थाई सदस्यों की सेनाओं के प्रमुख हैं। यह कमेटी संयुक्त राष्ट्र की इच्छानुसार सेनाओं को भेजने के लिए पूर्व योजना बनाने तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में अन्तर्राष्ट्रीय सेनाओं को निर्देश देने व उन पर नियंत्रण रखने के लिए सुरक्षा परिषद् को मदद और सलाह देती है ।

लीग के विपरीत संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में सामूहिक सुरक्षा की केन्द्रीकृत व्यवस्था को अपनाया गया है। इसमें संदेह नहीं है कि चार्टर ने विश्व–संस्था को काफी बड़ी जिम्मेदारी सौंपी है, किंतु ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस उत्तरदायित्व के साथ कारगर रूप से कार्य करने की शक्ति भी प्रदान की गई है। योजना बनाते समय संस्थापक सदस्य वास्तविकताओं से अच्छी तरह परिचित थे। अतः उन्होंने ऐसी योजना बनाई जो आशा के अनुरूप कार्य कर सके ।

4.7 शीतयुद्ध और उसके प्रभाव

द्वितीय विश्व युद्ध में जीतने वाली प्रमुख मित्र शक्तियों की एकता को विश्व–शांति के खतरे को रोकने के लिए एक कारगर संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख उद्देश्य माना गया था, किंतु युद्धोपरांत तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद यह पूर्व धारणा गलत साबित हुई। मित्र राष्ट्रों के मध्य विश्वास और एकता की जगह अविश्वास और प्रतिद्वंद्विता पैदा हो गई। इस अप्रत्याशित स्थिति के लिए उत्तरदायी कारणों को यहां जानना जरूरी है

संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ रूस द्वारा परमाणु हथियारों की खोज और उनके आधुनिकीकरण तथा प्रसार ने उन्हें "महाशक्ति" का नया दर्जा प्रदान किया। यह दर्जा उनकी परमाणु हथियारों के प्रयोग द्वारा विश्व को कई बार नष्ट कर सकने तथा विश्व के सभी भागों में घटनाओं को प्रभावित कर सकने की अद्वितीय क्षमता का प्रतीक था। दोनों के मध्य युद्धकाल की एकता युद्ध के बाद उनके द्वारा विकसित की जा रही पृथक सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाओं तथा भू–सामरिक हितों आदि के टकराव के कारण समाप्त हो गई। दोनों महाशक्तियों के मध्य यह प्रतिद्वन्दिता "शीतयुद्ध" के नाम से जानी जाती है। सर्वप्रथम शीतयुद्ध अपने उग्रतम रूप में यूरोप में शुरू हुआ। यूरोप का दो परस्पर विरोधी गुटों में विभाजन किया गया। प्रथम, एक पश्चिमी गुट था, जिसका नेतृत्व, "स्वतंत्रत विश्व" के रूप में अमेरिका कर रहा था व दूसरा पूर्वी गुट था, जिसका नेतृत्व "स्वतंत्र विश्व" की सुरक्षा के लिए 1949 में उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) तथा पूर्वी यूरोप के साम्यवादी देशों द्वारा "वारसा पेक्ट" जैसी सैन्य संधियों द्वारा संस्थागत रूप प्रदान कर दिया गया। प्रत्येक पक्ष दूसरे पक्ष के किसी भी संभावित आक्रमण का समूहिक रूप से प्रतिरोध करने के लिए वचनबद्ध था। यद्यपि शीतयुद्ध ने कभी भी गर्म युद्ध अर्थात दोनों गुटों के मध्य प्रत्यक्ष सैन्य मुठभेड़ का रूप नहीं लिया, किंतु इसने काफी समय तक अंतर्राज्यीय सम्बन्धों के सम्पूर्ण

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

वातावरण को दूषित रखा। निश्चित रूप से संयुक्त राष्ट्र का कोई भी अंग या कार्यवाही ऐसी नहीं थी, जो शीतयुद्ध अथवा पूर्व–पश्चिम की प्रतिद्वंदिता के प्रभाव से मुक्त हो। विशेष रूप से सुरक्षा परिषद् की भूमिका पर इसका काफी प्रभाव पड़ा ।

4.8 सुरक्षा परिषद का ह्रास/पतन

सुरक्षा परिषद् जिसका गठन शीघ्र एवं निर्णायक रूप से कार्य करने के लिए इस प्रकार किया गया था कि यह सशक्त और संगठित हो, व्यवहार में विश्व संस्था के अंदर शीतयुद्ध की राजनीति के कारण एक बिल्कुल भिन्न संस्था बन गई। सुरक्षा परिषद् के विचार के लिए आये हुए लगभग प्रत्येक प्रश्न का निर्णय उसके गुणों के कारण कम तथा तुलनात्मक रूप से लाभ या हानि के कारण अधिक होने लगा। स्थाई सदस्यों ने चार्टर द्वारा आरोपित दायित्वों को सोचे बिना त्याग दिया यदि इससे उनके निजी, अपने मित्रों या संभावित मित्रों के हितों की सुरक्षा हो रही हो। निषेधाधिकार शक्ति का प्रयोग मनमाने रूप से बिना सोचे–समझे किया गया। उदाहरण के लिए, 1945 से 1985 के बीच अमेरिका ने सुरक्षा परिषद् में 85 बार तथा रूस ने 117 बार वीटो का प्रयोग किया। बार–बार वीटो के प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद् के समक्ष लाई गई शांति व सुरक्षा सम्बन्धी कई समस्याओं पर कोई भी प्रस्ताव नहीं किया जा सका। दूसरे शब्दों में, सुरक्षा परिषद् में प्रायः गतिरोध बना रहा ।

संयुक्त राष्ट्र की प्रमुख संस्था का यह गतिरोध सामूहिक रूप से शांति बनाये रखने की संयुक्त राष्ट्र संघ की योजना अर्थात मिलिटरी स्टाफ कमेटी तक पहुंच गया। अन्तर्राष्ट्रीय सेना के आकार, इसके स्थान और अन्य प्रमुख मामलों पर कमेटी में अमेरिका और रूस के बीच मतभेद बने रहे। 1947 में कमेटी ने किसी प्रकार की प्रगति कर पाने में असफल रहने की सूचना सुरक्षा परिषद् को दी। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि संयुक्त राष्ट्र चार्टर में सोची गई सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था असफल हो गई है। परिणामस्वरूप प्रभाव क्षमता को अप्रत्यक्ष रूप से हानि पहुंची और अंतर्राष्ट्रीय शांति के साधन के रूप में इसका महत्व कम हो गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में सुरक्षा परिषद् की होने वाली बैठकों की संख्या निरंतर काफी कम हो गई, जो आक्रमण, हस्तक्षेप और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्य उल्लंघनों के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करने वाली संस्था के रूप में सुरक्षा परिषद् के प्रति सदस्य राष्ट्रों के विश्वास में हुई कमी का संकेतक रही।

4.9 साधारण सभा एवं महासचिव पर प्रभाव

सुरक्षा परिषद् के आशानुकूल कार्य करने में असफल रहने पर 1940 के अंतिम वर्षों में पश्चिम देशों ने संयुक्त राष्ट्र में ही अन्य उपयुक्त मंच की खोज शुरू कर दी जो सुरक्षा परिषद् के ह्रास की कमी की पूर्ति कर सके। इस दृष्टिकोण से साधारण सभा जो कि एक सदस्य एक मत के सिद्धांत के अनुसार कार्य कर रही थी, उपयुक्त मंच प्रतीत हुई। उस समय पश्चिमी देशों को साधारण सभा में दो–तिहाई सदस्यों का समर्थन मिलने का विश्वास था। अतः सुरक्षा परिषद् की अपेक्षा साधारण सभा को और अधिक सक्रिय बनाने का प्रयास किया गया। उदाहरण के लिए, 1947 में साधारण सभा में ब्रिटेन ने फिलीस्तीन के प्रबन्ध/ विभाजन का प्रश्न उठाया। इसी प्रकार अमेरिका ने 1947 में प्रथम बार सुरक्षा परिषद् के स्थान पर साधारण सभा में कोरिया की समस्या उठाई। 1947 में साधारण सभा में पश्चिमी देशों के दबाव की वजह से एक अंतरिम समिति गठित की। साधारण सभा के सत्रों के बीच के समय में आवश्यक परिस्थितियां होने पर "लघु परिषद्" नाम की एक नई संस्था की बैठक का होना तय किया गया था, किंतु लघु परिषद् ने कभी इस प्रकार काम नहीं किया और कुछ वर्षों के बाद यह निष्क्रिय हो गई ।

शांति और सुरक्षा की दिशा में साधारण सभा की भूमिका के विकास में इसके द्वारा नवम्बर, 1950 में पारित शांति के लिए एकता प्रस्ताव एक अन्य कदम था। प्रस्ताव के प्रावधानों के अनुसार किसी स्थाई सदस्य द्वारा वीटो के प्रयोग के कारण शान्ति व सुरक्षा से सम्बन्धित किसी मुद्दे पर निर्णय लेने में सुरक्षा परिषद् के असफल रहने पर साधारण सभा 24 घंटे की पूर्व सूचना पर विशेष आपातकालीन सत्र की बैठक बुला सकती है।

साधारण सभा ने विश्व के किसी भी भाग में जोखिमपूर्ण स्थति पर नजर रखने के लिए 14 राष्ट्रों के शान्ति निरीक्षण आयोग की स्थापना की तथा सभी राष्ट्रों से विशेष सशस्त्र सेना रखने के लिए कहा ताकि सुरक्षा परिषद् अथवा साधारण सभा द्वारा प्रार्थना करने पर वह सेवाओं के लिए उपलब्ध हो सके ।

इसके परिणामस्वरूप साधारण सभा सुरक्षा सम्बन्धी कई मामलों . कोरिया युद्ध (1950), स्वेज संकट (1956),

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

हंगरी में सोवियत हस्तक्षेप (1956), लेबनान संकट (1956) और कोंगो संकट (1956) से निपट सकी।

इन प्रयासों में प्राप्त सफलताओं से पश्चिमी गुट तथा विश्व सरकार के कुछ अति उत्साही समर्थकों के हितों की पूर्ति होती दिखाई देती है। किंतु इन प्रयासों के कारण ही साधारण सभा के प्रमुख लक्षणों को नहीं भूलना चाहिए कि यह ऐसा अंग है, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रत्येक सदस्य राष्ट्र की समानता के आधार पर प्रतिनिधित्व होता है। परन्तु सदस्य संख्या बढ़ने तथा कार्यसूची में विस्तार होने से साधारण सभा की कार्यवाहियों की प्रबंधनीयता में निरंतर कमी हुई है और उनके परिणामों के बारे में सुनिश्चित रूप से कह पाना मुश्किल हो गया। इसलिए कार्य सूची के महत्वपूर्ण मुद्दों के लिए प्रत्येक वर्ष साधारण सभा के पास काफी कम समय होता था। कार्यसूची के कई विषयों को गहराई से जानने के लिए पर्याप्त समय का अभाव होता था। परिणामस्वरूप साधारण सभा सलाह और आवश्यक अनुवर्ती कार्यों के लिए संयुक्त राष्ट्र महासचिव पर अधिक विश्वास करने लगी थी। समय की कमी की वजह से साधारण सभा ने कुछ अवसरों पर काफी अस्पष्ट प्रस्ताव किये। महासचिव को इस प्रकार के अस्पष्ट प्रस्तावों की व्याख्या करने और उन्हें लागू करने का महत्वूर्ण अधिकार है ।

4.10 तनाव–शैथिल्य और नव शीतयुद्ध

1960 से दोनों महाशक्तियों के सम्बन्धों में हुए कुछ परिवर्तनों के कारण सुरक्षा परिषद् सभा और महासचिव के सापेक्ष महत्व में भी परिवर्तन हुआ। 1960 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में तनाव में कुछ कमी हुई। 1963 में अमेरिका और रूस में क्रमशः तनाव में कमी करने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसके परिणामस्वरूप 1960 के दशक के अन्तिम वर्षों में सुरक्षा परिषद् का पुनः महत्व बढ़ गया। 1970 के दशक में शीतयुद्ध के संघर्ष की जगह तनाव शैथिल्य (पूर्व और पश्चिम के बीच तनाव में कमी) ने ले ली। बीच के इन वर्षों में तृतीय विश्व के देशों के बहुमत के बढ़ने तथा तृतीय विश्व और पश्चिम के बीच विशेष रूप से आर्थिक विकास के मुद्दों पर गहराते विवाद के कारण अमेरिका साधारण सभा के प्रति सचेत हो गया। महाशक्तियों में तनाव–शैथिल्य ने चार्टर में वर्णित संयुक्त राष्ट्र की शांति बनाये रखने की प्रमुख भूमिका निभाने में मदद करने की अपेक्षा अमेरिका और रूस द्वारा जहां तक संभव हो सका विशेष रूप से शांति, सुरक्षा और निरस्त्रीकरण के मामलों में संयुक्त राष्ट्र की उपेक्षा करने का प्रयास किया। अरब इजराइल युद्ध (1973) इसका उदाहरण है। यह युद्ध भीषण रूप से 3 सप्ताह तक चला तथा सुरक्षा परिषद् ने बिना किसी निर्देश/लक्ष्य के वार्तायें, आयोजित कीं। अमेरिका और रूस युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से स्वयं को शामिल करने की स्थिति से बचाने के तरीकों व उपायों को खोजने के लिए संयुक्त राष्ट्र से बाहर ही बातचीत करते रहे। किसी भी तरह सम्मान बनाये रखकर युद्ध समाप्त करने के उपायों पर सहमत होने तथा युद्धरत इजराइल, मिस्र और सीरिया को मना लेने के बाद महाशक्तियों ने तुरन्त युद्ध समाप्त करने के लिए संक्षिप्त और संयुक्त प्रस्ताव सुरक्षा परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किया। सुरक्षा परिषद के कुछ सदस्यों ने यद्यपि प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया, किंतु इस प्रकार सुरक्षा परिषद् के महत्व को कम करने का विरोध किया ।

यह स्थिति अधिक समय तक नहीं चल सका। 1970 के दशक के अंतिम वर्षों में अमेरिका और रूस के मध्य तनाव और संदेह चरम स्थिति पर पहुंच गये। 1979 में अफगानिस्तान में रूस के सैनिक हस्तक्षेप से तनाव–शैथिल्य समाप्त हो गया तथा शीत युद्ध के नये दौर का उद्घोष हो गया। नव शीतयुद्ध का प्रकट होना भी संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रभावशाली कार्य प्रणाली के लिए चुनौतीपूर्ण सिद्ध हुआ। महाशक्तियों अथवा उनके साथियों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सैन्य सहायता से बहुत से क्षेत्रीय युद्ध या संघर्ष उभरे। अफगानिस्तान, कम्पूचिया, अंगोला और निकारागुआ की घटनाएं इसके कुछ प्रमुख उदाहरण हैं ।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा इन समस्याओं के निदान हेतु मैत्रीपूर्ण बातचीत निरर्थक सिद्ध हुए, जबकि 1987 में रूस और अमेरिका के बीच (INF संधि) से लेकर यूरोप में हुए परिवर्तन की घटनाएं इतनी नाटकीय तथा अप्रत्याशित थीं कि सम्पूर्ण विश्व स्तब्ध रह गया। यद्यपि महाशक्तियों के मध्य तनाव–शैथिल्य का वर्तमान दौर संयुक्त राष्ट्र को प्रभावशाली एवं सुदृढ़ बनाने के लिए उपयुक्त है, किंतु विश्व में शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए वर्तमान वैश्विक चुनौतियों का आकलन संयुक्त राष्ट्रसंघ के लिए आवश्यक होगा।

4.11 अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए प्रयास

सुधार और गलती के प्रारम्भिक वर्ष

यह बात महत्वपूर्ण है कि अपने प्रारम्भिक वर्षों में राष्ट्र संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को भंग करने

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

वाली कई समस्याओं पर कार्यवाही करने में सिर्फ चार्टर के अनुरूप ही कार्य नहीं किया बल्कि वास्तव में इसने एक सक्रिय/जीवंत संस्था के लिए आवश्यक गतिशीलता को प्रदर्शित किया। गलती एवं सुधार की नीति अपनाते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने (सुरक्षा परिषद् हो या साधारण सभा) इन वर्षों में प्रत्येक घटना की विशेषताओं को दृष्टिगत रखते हुए प्रत्येक घटना के लिए भिन्न तकनीकों और प्रक्रियाओं का प्रयोग किया ।

शुरू के पांच वर्षों में संयुक्त राष्ट्र में उठाये गये मुद्दों में इंडोनेशिया समस्या (1947–1949), कश्मीर का मुद्दा (1948) आदि थे। इन समस्याओं से निपटने में संयुक्त राष्ट्र ने किसी भी पक्ष के प्रति पक्षपात से स्वयं को दूर रखा। साथ ही इसने विवादपूर्ण तथ्यों के निष्पक्ष जांच–पड़ताल और पूछताछ के द्वारा स्पष्ट करने को प्राथमिकता दी और बीच की अवधि में स्थिति के शांत होने की अपेक्षा रखी। इंडोनेशिया की समस्या के समय (1947–49) संयुक्त राष्ट्र ने एक ईमानदार मध्यस्थ की भूमिका निभाई। उसने एक आयोग की स्थापना की तथा समस्या का अंतिम राजनीतिक समाधान खोजने के लिए डच उपनिवेशियों और इंडोनेशिया के स्वतंत्रता सेनानियों दोनों को ही समझौता वार्ता के लिए बुलाया। मध्यस्थता के प्रयास में यह विराम कराने और किसी भी पक्ष द्वारा उल्लंघन न की जाने वाली विभाजन रेखा निर्धारित करने में सफल रही। इसी प्रकार 1948 में अरब देशों तथा इजरायल के मध्य विराम–संधि कराने में भी संयुक्त राष्ट्र की मध्यस्थता महत्वपूर्ण है। संयुक्त राष्ट्र ने 1947 में ग्रीस में विदेशी हस्तक्षेप की शिकायतों की छानबीन के लिए एक तथ्य –अन्वेषक दल भी भेजा ।

ये सभी संयुक्त राष्ट्र की भविष्य की भूमिका के महत्वपूर्ण होने के संकेत थे। किंतु गल्तियां भी हुईं। जैसे–1950–51 में कोरिया के संघर्ष में उत्तरी कोरिया द्वारा दक्षिणी कोरिया पर जून 1950 में आक्रमण करने के संदर्भ में कोरिया प्रायद्वीप में शांति बहाल करने के लिए सामूहिक दबाव के प्रयोग के लिए संयुक्त राष्ट्र अपने चार्टर को लगभग पूरी तरह क्रियान्वित करने की सीमा तक चला गया था। संयोग से सोवियत रूस ने उस समय सुरक्षा परिषद् की बैठकों का बहिष्कार किया था, क्योंकि परिषद् ने पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चीन को संयुक्त राष्ट्र में जियांग झीरी के शासन की जगह देने से इनकार कर दिया था। सोवियत रूस की अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए अमेरिका ने सुरक्षा परिषद् में इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पारित करा लिया कि उत्तरी कोरिया की सैनिक कार्यवाही चार्टर के आदर्शों एवं उद्देश्यों का गंभीर उल्लंघन है और उसमें दक्षिण कोरिया की रक्षा के लिए आवश्यक अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन का अनुमोदन किया गया। यह प्रस्ताव सम्बन्धित पक्षों के विचारों की सुनवाई के बिना तथा वास्तविक स्थिति की स्वतंत्र रूप से पुष्टि प्राप्त किये बिना ही स्वीकार कर लिया गया।

सुरक्षा परिषद् की अन्य सिफारिश के अनुसार नाटो सेनाओं (वास्तव में उस वक्त जापान में तैनात अमेरिकी फौज) को संयुक्त राष्ट्र के एकीकृत संगठित सैन्य कमान के अंतर्गत लाया गया। यदि सोवियत रूस जून, 1950 में सुरक्षा परिषद् में उपस्थित होता तो इन दोनों प्रस्तावों पर निश्चित रूप से निषेधाधिकार (वीटो) का प्रयोग किया जाता, क्योंकि उत्तरी कोरिया उसका मित्र देश था। जब रूस ने अपने हितों को और अधिक हानि पहुंचने से रोकने के उद्देश्य से परिषद की बैठकों में भाग लेना शुरू किया तो अमेरिका व उसके मित्र राष्ट्रों ने उत्तरी कोरिया के विरुद्ध अपने कार्यों के लिए आवश्यक राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने के लिए साधारण सभा ने उत्तरी कोरिया की सहायता करने के उद्देश्य से चीन की आलोचना की तथा 1951 में चीन के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध लगाने की सिफारिश की। ये कदम चार्टर की योजना के अनुसार संयुक्त राष्ट्र द्वारा सामूहिक दबाव द्वारा कार्यवाही करने के उदाहरण थे ।

परन्तु प्रकरण पर सूक्ष्म दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि यह सच नहीं है यद्यपि सुरक्षा परिषद् को ऐसा निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त थी जो सभी सदस्यों पर बाध्यकारी हो, किंतु परिषद् ने कोरिया के प्रश्न पर ऐसा निर्णय कभी नहीं लिया। केवल कुछ ऐसे तरीके सुझाए जो स्पष्टतः ऐच्छिक प्रकृति के थे इसका अर्थ है कि पश्चिमी देशों की इच्छानुसार परिषद् के प्रस्ताव लाये गये, जबकि अन्य देशों ने स्वयं को दूर रखा और उनका विरोध किया। इसके अतिरिक्त गंभीर मतभेदों और खतरों को ध्यान में रखते हुए परिषद् के प्रस्तावों में जानबूझकर चार्टर के सामूहिक दबाव सम्बन्धी प्रावधानों का उल्लेख स्पष्ट रूप से नहीं किया गया। संयुक्त राष्ट्र ने एक संगठित सदस्यता की बजाए पश्चिमी गुट के देशों के हित में पक्षपातपूर्ण तरीके से काम किया। परिणामस्वरूप, सोवियत रूस और उसके मित्र देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ में पूर्ण अविश्वास व्यक्त किया। जिसका परिणाम संयुक्त राष्ट्र संघ में पूर्ण मध्यस्थ की भूमिका निभाने का कोई भी संभावित अवसर प्रदान करने की अस्वीकृति के रूप में हुआ।

4.12 1956 एक ऐतिहासिक मील स्तंभ

कोरिया संकट के प्रति संयुक्त राष्ट्र की भूमिका ने यह सबक सिखा दिया कि अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए बड़ा

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

संकट होने पर क्या किया जाए और क्या नहीं किया जाए, अर्थात संकट में इसे किसी का पक्ष नहीं लेना चाहिए, बड़ी शक्तियों के झगड़ों में कठपुतली बनने से बचना चाहिए तथा लड़ाई की शीघ्र समाप्ति हेतु कार्य करना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इनसे सबक सीखा है। इसका स्पष्टीकरण तब हुआ जब 1956 में इसका मध्य–पूर्व में एक बड़ा सैनिक संघर्ष हुआ। मिश्र ने स्वेज नहर का स्पष्टीकरण कर इसे अंतर्राष्ट्रीय नौ–परिवहन के लिए बंद कर दिया। जब ब्रिटेन और फ्रांस ने इजरायल के साथ सेना भेजकर मिस्त्र नहर के आसपास के क्षेत्रों में 31 अक्टूबर को मिस्र पर आक्रमण कर दिया तो स्थिति काफी जटिल हो गई। यह कार्य साफ तौर पर चार्टर में निहित शक्ति के अप्रयोग व अंतर्राष्ट्रीय संहिता तथा संयुक्त राष्ट्र के दो स्थाई सदस्यों द्वारा सबसे पहले उसकी स्थापना के साथ की गई प्रतिबद्धता का खुला उल्लंघन था। जैसी कि आशा थी, ब्रिटेन और फ्रांस ने सुरक्षा परिषद् के उस प्रस्ताव को वीटो किया। जिसमें इजराइल को दोषी बताया गया था और 1949 के संधि–विराम को मानने के लिए कहा गया था। रोचक बात यह है कि दोनों महाशक्तियों ने आक्रमण की आलोचना की और युद्ध से उत्पन्न शत्रुता समाप्त करने की जोरदार मांग की। इस परिस्थिति में साधारण सभा ने "शांति के लिए एकता प्रस्ताव" के प्राधिकार से हस्तेक्षप किया व एक ऐतिहासिक भूमिका निभाई। यद्यपि फ्रांस और ब्रिटेन के आक्रमण का प्रमाण था, फिर भी साधारण सभा ने इस विषय पर अपने प्रस्तावों में संयमित नरम दृष्टिकोण अपनाया। इसने संयुक्त राष्ट्र के तीन सदस्यों द्वारा किये गये आचरण भंग के इस कार्य के लिए "अपराधी" शब्द का प्रयोग नहीं किया, बल्कि युद्ध से उत्पन्न शत्रुता को तुरंत रोकने और मित्र के क्षेत्र से विदेशी फौजों की वापसी की मांग की।

इसके लिए साधारण सभा ने सभी पक्षों द्वारा अनुपालन और तत्पश्चात् फौजों की वापसी के निरीक्षण हेतु 1956 में संयुक्त राष्ट्र आपातकालीन सेना (यू0एन0ई0एफ0) की स्थापना की। संयुक्त राष्ट्र की अन्तर्राष्ट्रीय शांति स्थापित करने की भूमिका के इतिहास में (यू0एन0ई0एफ0) की स्थापना एक नया अध्याय है। यू0एन0ई0एफ0 आक्रमण के विरूद्ध लड़ाई के लिए नहीं, बल्कि युद्धरत देशों के बीच स्वयं को खड़ा कर युद्ध की स्थिति समाप्त करने के उद्देश्य से गठित की गई है।

यू0एन0ई0एफ0 के सक्रिय होने के साथ अंतर्राष्ट्रीय मामलों की शब्दावली में एक नया शब्द – "शांति रक्षा" जुड़ गया। संयुक्त राष्ट्र के एक कार्य के रूप में "शांति रक्षा" का स्पष्ट रूप से विश्व संस्था के संस्थापकों द्वारा पूर्वानुमान भी नहीं किया गया था किंतु विश्व शांति के लिए यह संयुक्त राष्ट्र का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य बन गया। उदाहरण के लिए 1956 से मध्य–पूर्व में 1960 के प्रारम्भिक वर्षों में कॉंगो में और 1964 में साइप्रस में शांति रक्षा अभियान चलाये गये ।

संयुक्त राष्ट्र शांति रक्षा अभियानों की एक मुख्य बात यह है कि कुछ आवश्यक अपवादों को छोड़कर स्थाई सदस्यों को इनमें शामिल नहीं किया गया। केवल अफ्रीका, एशिया और लेटिन अमेरिका के कुछ छोटे गुट निरपेक्ष राष्ट्रों और यूरोप के कुछ तटस्थ राष्ट्रों (जैसे, स्वीडेन) को ही विभिन्न अभियानों में सैनिक टुकड़ियां भेजने के लिए आमंत्रित किया गया था। यद्यपि स्थाई सदस्यों की सद्भावना के बिना कोई भी शांति रक्षा अभियान सफल नहीं हो सकता, किंतु स्थानीय झगड़ों में बड़ी शक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से शामिल होने से रोकने के लिए यह व्यवस्था आवश्यक थी। कई शांति रक्षक अभियानों की सफलता का कारण महासचिवों, विशेष रूप से डेग हेमरस्जोल्ड का कुशल मार्ग–प्रदर्शन और नेतृत्व था। फिर शीत शांति का मूल्यांकन झूठी आशाओं के दृष्टिकोण से नहीं किया जाना चाहिए। यह विवाद के कारणों का अंतिम हल नहीं करती। इसका उद्देश्य समस्याओं के मूल कारणों का बातचीत द्वारा समाधान करने के लिए सम्बन्धित राष्ट्रों के बीच उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करना ही है ।

4.13 अनिश्चिततापूर्ण दशक

कुछ संयुक्त राष्ट्र शांति रक्षक अभियानों की सीमित प्रकृति तथा कुछ अन्य कारणों की वजह से संयुक्त राष्ट्र एवं सुरक्षा बनाये रखने की भूमिका में 1960 के दशक के मध्य उत्तरोत्तर कमी हुई है। वियतनाम युद्ध 1967 में संयुक्त राष्ट्र आपातकालीन सेना की वापसी, 1967 और 1973 के अरब–इजराइल युद्ध, भारत–पाकिस्तान के बीच 1965 का युद्ध इस अवधि के कुछ विशेष उदाहरण हैं ।

महाशक्तियों के संघर्ष में हुई कमी भी जो धीरे–धीरे 1970 के दशक में पूर्व–पश्चिम के तनाव– शैथिल्य में विकसित हुई, संयुक्त राष्ट्र की कारगर ढंग से शांति बनाये रखने की भूमिका को मजबूत नहीं कर पाई। सार्वजनिक रूप से एक दूसरे को परेशानी में न डालने की नीति के कारण, अमेरिका ने रूस द्वारा 1968 में चौकोस्लोवाकिया में सैन्य हस्तक्षेप करने पर तीव्र प्रतिक्रिया नहीं की। 1956 में रूस द्वारा हंगरी में हस्तक्षेप करने पर संयुक्त राष्ट्र के माध्यम

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

से जो कुछ अमेरिका करना चाहता था, उसका यह कार्य ठीक उसके विपरीत था ।

जब अमेरिका वियतनाम के साथ युद्ध में उलझा हुआ था तो परस्पर आदान–प्रदान के रूप में सोवियत रूस भी चुप एवं तटस्थ रहा। इसका उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र में एक दूसरे की उपेक्षा करना भी था। उदाहरण के लिए दोनों पक्षों ने संयुक्त राष्ट्र के बाहर शस्त्र नियंत्रण समझौतों, जैसे. परमाणु अस्त्र प्रसार संधि (NPT, 1968) और सामरिक शस्त्र परिसीमन संधियों (SALT, 1972, 1979) पर वार्ताएं कीं। जो भी हो, तनाव शैथिल्य का यह दौर विश्व राजनीति में स्थाई परिवर्तन लाने की दृष्टि से अधिक समय तक नहीं रहा। रूस द्वारा 1979 में अफगानिस्तान मे हस्तक्षेप करने के साथ ही तनाव–शैथिल्य की जगह शीतयुद्ध का नया दौर प्रारंभ हो गया। इस नव शीतयुद्ध ने विश्व के विभिन्न भागों में तनाव कम कर सकने की संयुक्त राष्ट्र की क्षमता को काफी अधिक प्रभावित किया है। उनमें से अधिकतर–कम्बोडिया, अफगानिस्तान, दक्षिण अफ्रीका, मध्य अमेरिका, ईरान–इराक युद्ध मध्य पूर्व आदि समस्याओं को संयुक्त राष्ट्र के लिए संभाल पाना अत्यधिक कठिन सिद्ध हो रहा है ।

4.14 नवीन उपलब्धियां / सफलताएं

संयुक्त राष्ट्र नव शीतयुद्ध के दौरान कई उलझी हुई समस्याओं के बारे में कार्यवाही करते हुए अपने प्रस्तावों में उत्तेजक भाषा के प्रयोग से बचने की नीति अपनाता रहा। संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने भी स्वयं अथवा अपने विशेष प्रतिनिधियों के माध्यम से उपरोक्त प्रत्येक समस्या के प्रति किये गये शिथिल प्रयासों को सुझाया और संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों को तीव्र करने के लिए उपयुक्त वातावरण होने तक प्रतीक्षा की। महासचिव को सुरक्षा परिषद् और साधारण सभा दोनों से ही अपेन प्रयास करने के लिए अधिकार प्राप्त थे। उदाहरण के लिएए महासचिव पेरेज दि क्वेलर और उनके विशेष प्रतिनिधियों ने 1982 से 1988 की अवधि में अफगानिस्तान और पाकिस्तान के मध्य "अप्रत्यक्ष वार्ताएं" कराई जिनका परिणाम अफगान समस्या पर अप्रैल, 1988 में 'जिनेवा–समझौते' के रूप में हुआ, जिसके फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र की देखरेख में अफगानिस्तान से सोवियत रूस की सेनाओं की वापसी हुई। इसी प्रकारए ईरान–ईराक, द्वारा युद्ध समाप्त करने की सहमति होने तक जारी रखा। इन सभी तथा अन्य मामलों में हुई उत्साहवर्धक प्रगति रूस–अमेरिका के सम्बन्धों में हुए सुधार के कारण संभव हो पाई है।

सोवियत रूस और पूर्वी यूरोपीय देशों में हो रहे परिवर्तनों तथा सोवियत राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाचोव की "नई–सोच" ने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में गुणात्मक सुधार लाने में काफी योगदान दिया। गोर्बाचोव ने अंतर्राष्ट्रीय शांति के साधन के रूप में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका को और अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कई प्रस्ताव किये। दोनों महाशक्तियों ने अफगानिस्तान, ईरान–ईराक, नामीबिया, निकारागुआ आदि में किये गये संयुक्त राष्ट्र शांति रक्षा अभियानों का समर्थन किया और संयुक्त राष्ट्र इसी प्रकार की भूमिका कम्बोडियाए मध्य अमेरिका और पश्चिमी सहारा में निभाने के लिए तैयार हुआ। इसीलिए संयुक्त राष्ट्र शांति रक्षा आयोजनों के उनके पिछले योगदान और भविष्य की संभावनाओं के महत्व को मानते 1988 का नोबल शांति पुरस्कार दिया जाना उचित प्रतीत होता है ।

ऐसा लगता है कि पिछले कुछ वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने कुछ हद तक संयुक्त राष्ट्र में पुनः विश्वास व्यक्त किया है। खाड़ी संकट मेंए जिसकी बाद में परिणति युद्ध के रूप में हुईए संयुक्त राष्ट्र द्वारा निभाई गई भूमिका ध्यान देने योग्य है ।

कुवैत पर ईराक के आक्रमण से उत्पन्न स्थिति से निपटने में सैनिक रूप से सक्षम होने के बावजूद विश्व के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र अमेरिका ने भी संयुक्त राष्ट्र की मदद के लिए स्वयं को समस्या में उलझाना उपयुक्त नहीं समझा। सुरक्षा परिषद के पिछले कुछ वर्षों के इतिहास में प्रथम बार खाड़ी मुद्दे पर वास्तव में मतैक्य जैसी स्थिति हुई और इसने संकट को हल करने और खाड़ी क्षेत्र में शांति स्थापना के लिए कुल बारह प्रस्ताव स्वीकृत किये।

वर्ष 2022 में यूक्रेन और रूस के बीच बने विवाद युद्ध में परिवर्तित हो गया युद्ध का लम्बा खिंच जाने की परिस्थितियों में एक बार फिर 'सुरक्षा परिषद' में सुधार किये जाने का स्वर विश्व समुदाय में उठने लगा है। इस सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंटोनियों गुटेरस ने भी हिरोशिमा में पत्रकारों से बातचीत में कहा कि संयुक्त राज्य सुरक्षा परषिद 1945 के शक्ति सम्बन्धों को प्रतिबंबित करती है और वर्तमान समय की वास्तविकताओं मुताबिक शक्ति के पुनः वितरण की जरूरत बढ़ती जा रही है। यह समय सुरक्षा परिषद में सुधार का है।

भारत के प्रधानमंत्री अपने एक बयान में संयुक्त राष्ट्र (यू.एन.) और संयुक्त 'राष्ट्र सुरक्षा परिषद' (यू.एन.एस. सी.) में सुधार की पुरजोर वकालत करते हुए कहा कि वे वर्तमान दुनिया की वास्तविकताओं को प्रतिबिम्बित नहीं करेंगे

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

तो "वार्ता की दुकान" बनकर रह जायेगें और यू.एन. अब दुनिया की वर्तमान वास्तविकताओं को प्रतिबिम्बित नहीं करता। साथ ही उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि 'ग्लोबल साउथ' की आवाज संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भी मजबूती से सुनी जानी चाहिए। इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में सुधार हमारी साझा प्राथमिकता होनी चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ में वर्तमान दुनिया की वास्तविकताओं को प्रतिबिम्बित किये जाने का प्रश्न महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि विचारणीय भी है।

4.15 सारांश

कम्प्यूटर के इस युग में हम समस्याओं के तुरन्त समाधान की अपेक्षा करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की यह आलोचना की जाती रही है कि ज्वलंत समस्याओं की ओर यह ध्यान नहीं देता। इस आलोचना का उत्तर यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ तत्काल परिणाम देने वाली जिरोक्स मशीन की तरह नहीं है। राष्ट्रों के मध्य शांति बनाये रखने के लिए व्यापक शक्तियां दिये जाने के तथ्य के बावजूद भी संयुक्त राष्ट्र की संरचना सदस्य राष्ट्रों की इच्छाओं के ऊपर कार्य करने वाली विश्व सरकार के रूप में नहीं की गई थी। इसके लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में यथोचित सुधार आवश्यक है जो वर्तमान दुनिया की वास्तविकताओं को प्रतिबिम्बित करने के साथ ही शक्ति के पुनः वितरण जी जरूरत को पूरा कर सके। संयुक्त राष्ट्र की सफलता राष्ट्रों के समुदाय द्वारा किये गये सहयोग पर निर्भर करेगी। इस सहयोग के मिलने पर संयुक्त राष्ट्र ने हमेशा शांति व सुरक्षा के लिए अपनी उपयोगिता सिद्ध की है और करता रहेगा।

4.16 बोध प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ का संरचनात्मक स्वरूप क्या है ?
2. सुरक्षा परिषद् की शक्तियां बताइये ।
3. सुरक्षा परिषद के पतन के कारण बतायें ।
4. तनाव–शैथिल्य नव शीतयुद्ध से क्या समझते है ?
5. संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए प्रयास को बतायें ।
6. संयुक्त राष्ट्र संघ की ताजा उपलब्धियां क्या हैं?

4.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. देखें भाग 1.4
2. देखें भाग 1.6
3. देखें भाग 1.8
4. देखें भाग 1.10
5. देखें भाग 1.11
6. देखें भाग 1.14

4.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. हनहीमकाई, जस्सी एम 2015 : द यूनाइटेड नेशन्स ए वेरी शार्ट इंट्रोडक्शन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ऑक्सफोर्ड।
2. बासु, रूमकी : द यूनाइटेड नेशन्स स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स ऑफ एन इंटरनेशनल आर्गेनाइजेशन, स्टरलिंग पब्लिशर्स, प्राइवेट लिमिटेड।
3. अग्रवाल, एच0ओ0 (2002) : मानव अधिकार, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन इलाहाबाद।
4. वाजपेयी, अरुणोदय (2012) : समकालीन विश्व एवं भारत, डार्लिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा0लि0 दिल्ली।
5. डॉ0 शुक्ला, शशि (2009) : अर्न्तराष्ट्रीय संगठन, भारत प्रकाशन लखनऊ।
6. डॉ0 वीर, गौतम (2009) : अर्न्तराष्ट्रीय संगठन, विश्व भारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाइ 2 (ख) गैर–सरकारी संगठन की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 गैर–सरकारी संगठन एवं संयुक्त राष्ट्र संघ

5.3 मानव अधिकार क्षेत्र में कार्यरत प्रमुख गैर–सरकारी संगठन

5.4 संस्था को अधिक प्रभावी बनाने वाले तत्त्व

5.5 एमनेस्टी इण्टरनेशनल का संगठन

5.6 सम्बद्ध समूह

5.7 व्यक्तिगत सदस्यता

5.8 अन्तर्राष्ट्रीय परिषद्

5.9 परिषद् के कार्य

5.10 अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी कमेटी

5.11 अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी कमेटी के कार्य

5.12 ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल का अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय

5.13 सचिवालय के कार्य

5.14 ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल की कार्यप्रणाली

5.15 पी0यू0सी0एल0

5.16 पी0यू0सी0एल0 के कार्य

5.17 पी0यू0डी0आर0

5.18 एशिया वॉच

5.19 मानव अधिकार संवर्धन में गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका

5.20 सुझाव

5.21 सारांश

5.22 बोध प्रश्न

5.23 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.24 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी जान सकेंगे–

- **गैर–सरकारी संगठनों की स्थापना के कारण क्या हैं ?**
- **विभिन्न क्षेत्रों में कौन से गैर–सरकारी संगठन कार्यरत हैं ?**
- **मानवाधिकार के संरक्षण में गैर–सरकारी संगठन किस प्रकार की भूमिका निभा रहे हैं ?**

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

5.1 प्रस्तावना

गैर–सरकारी संगठन का ऐसा शब्द है जिसके विभिन्न अर्थ लगाये जाते हैं। गैर–सरकारी संगठन निम्न स्तर पर कार्यकर्त्ताओं द्वारा एक साथ कार्य करने हेतु संगठित किया गया एक समूह होता है। जिसके अन्तर्गत जन समूहए स्वैच्छिक संगठन, स्वैच्छिक एजेन्सीए समाज कल्याण समूह आदि सभी आते हैं अर्थात् एक ऐसा संगठन जिसका संचालन एक स्वायत्त बोर्ड द्वारा किया जाता है। इस बोर्ड द्वारा ही बैठकों का आयोजन किया जाता है, संगठन द्वारा किये जाने वाले कार्यों हेतु कोष इकट्ठा किया जाता हैए यही विभिन्न प्रकार के खर्चों को सुनिश्चित करता है तथा जनता को निजी संगठनों की अपेक्षा कम कीमत पर सुविधाएं प्रदान कराता है। इस संगठन में वैतनिक व अवैतनिक दोनों प्रकार के सदस्य कार्य करते हैं। ये संगठन शहरी व ग्रामीण दोनों ही क्षेत्र में जनता के विकास हेतु कार्यरत रहते हैं। इन संगठनों द्वारा प्राथमिक रूप से जन स्वास्थ्य में सुधार हेतु प्रयास किया जाता है। गैर.सरकारी संगठनों की शुरूआत स्वैच्छिक संगठनों के रूप में हुई जिसके अन्तर्गत स्थानीय लोगों के समूहों द्वारा स्वयं की इच्छा से प्रोत्साहित होकर जनता की भलाई के लिए कार्य करना शुरू किया गया। बाद में धीर–धीरे इन समूहों को व अन्य ऐसे संगठनों को बाहरी रूप से प्रोत्साहन व वित्तीय सहायता प्राप्त होने लगी और इन स्वैच्छिक संगठनों का आकार एवं कार्य क्षेत्र बढ़ता गया। वर्तमान में ऐसे बड़े एवं छोटे संगठन जो कि देश की प्रशासनिक व्यवस्था के पदसोपानिक क्रम में नहीं आते हैं, परन्तु जनता के विकास हेतु कार्यरत हैं उन्हें गैर.सरकारी संगठन कहा जाता है। ये समूह ध् संगठन स्थानीय स्तर व राष्ट्रीय सभी स्तरों के होते हैं। इन संगठनों को निम्नलिखित चार विशेषताओं के आधार पर अन्य संगठनों से अलग किया जा सकता है–

(1) स्वैच्छिकता – इन संगठनों की स्थापना इनमें कार्य करने वाले लोगों की अपनी इच्छा के आधार पर जनता की भलाई हेतु की जाती है अर्थात् इनकी स्थापना में किसी कानून या विधि की कोई बाध्यता नहीं होती है ।

(2) स्वतंत्रता – ये संगठन पूर्णरूप से स्वतंत्र होते हैं अर्थात् इन संगठनों पर किसी सरकार का राजनीतिक व अन्य प्रकार का नियंत्रण नहीं होता है। यह संगठन देश की सरकार की पदसोपानिक व्यवस्था से अलग रहते हुए स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं ।

(3) अलाभ की प्रकृति के कार्य– ये संगठन निजी संगठनों के लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य के स्थान पर समाज कल्याण के उददेश्य के कार्य करते हैं। निजी संगठनों का कार्य ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त करना होता है जबकि इन संगठनों का उद्देश्य जनता के विकास हेतु कार्य करना होता है ।

(4) ये संगठन स्वपोषित नहीं होते– इन संगठनों को बाहरी वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है। इन संगठनों के पास अपने स्वयं के वित्तीय स्रोत बहुत ही कम होते हैं। वर्तमान में अपनी वित्तीय स्थिति को सुदृ ढ़ करने हेतु गैर–सरकारी संगठनों द्वारा प्रयास किए जा रहे हैं तथा ये संगठन धीरे.धीरे स्वावलम्बी होते जा रहे हैं।

गैर–सरकारी संगठनों का सैद्धान्तिक रूप से सरकार से कोई कार्यालयी सम्बन्ध नहीं होता है, परन्तु ये संगठन सरकार को गरीब लोगों तक पहुंचने एवं उनकी समस्याओं से परिचित कराने के लिए काम में आने वाले तरीकों एवं उपयोग में लिए जाने वाले साधनों के रूप में सहायता प्रदान करते हैं। साथ ही सरकार से गरीबों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समन्वय स्थापित करने में ये संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं

5.2 गैर–सरकारी संगठन एवं संयुक्त राष्ट्र संघ

मानव अधिकारों को प्रोत्साहन प्रदान करने के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र ने मानव कल्याण के क्षेत्र में विशेष उपलब्धि प्राप्त की है विशिष्ट अभिकरणों के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र ने खाद्य, स्वास्थ्य, शिक्षा, विज्ञान तकनीकी, परिवहन, संचार आदि क्षेत्रों में राज्यों के मध्य कार्यात्मक सहयोग का आधार तैयार किया है तथा विश्व जन कल्याण हेतु बहुमूल्य सेवायें प्रदान की हैं। जन कल्याण एवं मानवाधिकार के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों को पूरा करने की दिशा में गैर–सरकारी संगठनों ने महती भूमिका निभाया है। संयुक्त राष्ट्र संघ का इतिहास गैर–सरकारी संगठनों की क्रियाविधि से निकटतम रूप से जुड़ा हुआ है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा समय–समय पर गैर–सरकारी संगठनों के साथ सम्बन्धों को परिभाषित किया जाता रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की शुरूआत से ही गैर–सरकारी संगठन इसके सहयोगी के रूप में कार्य करते रहे हैं।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानव अधिकारों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बिल बनाये जाने में गैर.सरकारी संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका ही है। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद 71 में ही यह व्यवस्था की गई थी कि आर्थिक व सामाजिक परिषद् द्वारा इस प्रकार से प्रयास किए जायेंगे कि गैर–सरकारी संगठनों को परामर्शदात्री भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। इसी दिशा में आर्थिक व सामाजिक परिषद् द्वारा 21 जून 1946 को एक गैर–सरकारी संगठनों को परामर्शदात्री संस्था के रूप में भूमिका अदा करने के लिए एक कमेटी का गठन किया गया। इसके लिए रिजोल्यूशन 1296 (SLIV) जून, 1968 पास किया गया जिसके अन्तर्गत व्यवस्था की गई कि 11 सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए गैर–सरकारी संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ की भावनाओं को पूर्ण करने के लिए परामर्शदात्री संस्था के रूप में कार्य करेंगे।

गैर–सरकारी संगठनों को संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न एजेन्सियों जैसे–आर्थिक एवं सामाजिक परिषद्, मानव अधिकार आयोग, स्त्री प्रस्थिति आयोग आदि में यह अपनी सूचना, शिकायत एवं प्रपोजल आदि दे सकते हैं

गैर–सरकारी संगठनों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न अंगों द्वारा समय–समय पर बनाये गये मानव अधिकार से सम्बन्धित घोषणाएं एवं प्रसंविदाओं के निर्माण में सहायता प्रदान की गई। इसके अन्तर्गत बाल अधिकार, महिला अधिकार, शरणार्थियों के अधिकार आदि के लिए प्रसंविदाओं के निर्माण एवं स्तर निश्चित करने में इन संगठनों द्वारा सहायता प्रदान की गई। संयुक्त राष्ट्र संघ के लोक सूचना विभाग के अन्तर्गत लगभग 15000 गैर–सरकारी संगठन पंजीकृत हैं, जो कि समय–समय पर संयुक्त राष्ट्र संघ को मानव अधिकारों के हनन की सूचना और हनन के कारणों की जांच आदि में सहायता प्रदान करते रहते हैं। इस विभाग द्वारा 10 सितम्बर, 2003 को इस्लामाबाद, पाकिस्तान में सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसका शीर्षक "A Conference of NGOs in Islamabad Supports United Nations efforts to Promote Human Security and Dignity" था।

सम्पूर्ण विश्व में गैर–सरकारी संगठनों का बहुत पुराना अस्तित्व रहा है। परन्तु इन गैर–सरकारी संगठनों का प्रभाव विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न रहा है जो कि देश के इतिहास, विकास के लिए प्राप्त सहायता एवं सार्वजनिक सेवाओं में विकास के कार्यों के मध्य अन्तर पर निर्भर करता है। भारत में प्रारम्भिक काल में इन संगठनों द्वारा किये जाने वाले सामाजिक विकास के कार्य जातीय एवं धार्मिक आधारों पर किए जाते थे जो सामाजिक समूहों एवं समुदाय से सम्बन्धित होते थे। भारत के प्रारम्भिक एवं मध्यकालीन समय में इन संगठनों द्वारा असाध्यों की सहायता से सम्बन्धित कार्य किए जाते थे तथा वैदिक काल से विकास के कार्य इन संगठनों द्वारा अपने हाथ में ले लिये गये थे 1

5.3 मानव अधिकार क्षेत्र में कार्यरत प्रमुख गैर–सरकारी संगठनः

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत गैर–सरकारी संगठनों में 1843 में स्थापित रेडक्रास सबसे पुराना संगठन है जो कि युद्ध एवं अन्य आपदाओं के समय प्रभावित व्यक्तियों को चिकित्सकीय सुविधा उपलब्ध कराता है। 1961 में स्थापित ऐमनेस्टी इन्टरनेशनल का मुख्यालय लन्दन में है जो कि राजनीतिक रूप से बन्दी बनाये गये व्यक्तियों के मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए कार्य करता है। पब्लिक यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पी0यू0सी0एल0) की स्थापना 1976 में जनता के सामान्य अधिकारों के संरक्षण हेतु की गई। पब्लिक यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राईट (पी0यू0डी0आर0) की स्थापना जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए की गई। इसी प्रकार क्षेत्रीय आधार पर भी बहुत से गैर–सरकारी संगठनों की स्थापना की गई, जिससे एशिया वॅाच, अमेरिका वॅाच, यूरोपियन वाच, अफ्रीका वाच एवं हॉट लाईन आदि ऐसे संगठन हैं जो कि अपने क्षेत्र की जनता के मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए कार्य करते हैं

1. विश्व फ्रेंड्स ऑफ अर्थ – एम्सटर्डम (1871)
2. सेव द चिल्ड्रन कमीशन फॉर लन्दन– (1919)
3. इण्टरनेशल कमीशन फॉर ज्यूरिस्ट्स– (1952)
4. एमनेस्टी इण्टरनेशनल, लन्दन– (1961)

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

5. माइनारिटी राइट्स ग्रुप, लन्दन – (1965)

6. सरवाइबल इण्टरनेशल – (1969)

7. ह्यूमन राइटस वॉच, न्यूयार्क – (1978) (1) अफ्रीका वॉच, (2) एशिया वॉच (3) मिडल ईस्ट वॉचए (4) अमेरिका वॉच (5) हेलसिंकी वॉच ।

8. (अ) वर्किंग ग्रुप ऑफ द कमीशन ऑफ ह्यूमन राइट्स

9. (ब) द पॉलीटिकल कमीशन ऑफ जस्टिस एण्ड पीस

ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल की स्थापना 1961 में ब्रिटिश वकील श्री पीटर बैनेन्सन द्वारा की गई। इसके द्वारा मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए कार्यरत विशेषतः कैदियों के अधिकारों के संरक्षण के लिए कार्य किया जाता है। मानव अधिकार हनन के मामलों की जांच के लिए संस्था द्वारा व्यवहारिक तरीकों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। उदाहरणार्थ संस्था द्वारा व्यक्तिगत कैदियों के अधिकारों के हनन की जांच के लिए अलग से चार्ज शीट तैयार की जाती है। संस्था का अन्तर्राष्ट्रीय मुख्यालय लन्दन में स्थित है जिसके अन्तर्गत बड़ी संख्या में कर्मचारी कार्यरत हैं तथा लगभग 120 स्वैच्छिक कार्यकर्त्ता हैं जो कि विश्व के 50 देशों का प्रतिनिधित्व करते हैं। संस्था के वर्तमान में कुल सदस्यों की संख्या एक मिलियन को पार कर चुकी है जिसमें सभी प्रकार के व्यक्ति तथा शोधार्थी आदि शामिल हैं। संस्था स्थानीय समूहों के माध्यम से वर्तमान में लगभग 4000 कैदियों के व्यक्तिगत अधिकारों के संरक्षण के लिए जांच का कार्य कर रही है। संस्था का दूसरा प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को यातनाओं से मुक्ति दिलाना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 1973 में संस्था द्वारा विश्व स्तर पर यातनाओं के उन्मूलन के लिए एक आन्दोलन की शुरूआत की गई। इस आन्दोलन को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1975 में सभी मनुष्यों को अमानवीय एवं क्रूर व्यवहार यातनाओं एवं निम्न स्तरीय दण्ड देने से मुक्ति दिलाने के लिए एक घोषणा की। संस्था द्वारा मानव अधिकारों के संरक्षण में सफलता एवं कार्य कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए 1976 में Eramus Prize तथा 1977 में संस्था को नोबेल पीस प्राइज तथा 1978 में UDHR की तीसवीं वर्षगांठ पर संस्था को मानव अधिकारों के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ संस्था घोषित किया गया।

5.4 संस्था को अधिक प्रभावी बनाने वाले तत्व

वर्तमान में संस्था विश्व स्तर पर मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रभावी रूप से कार्य करती है जिसके पीछे संस्था द्वारा एक निश्चि प्रक्रिया एवं कुछ विशेष तत्वों को समाहित करना है। इन तत्वों को निम्नलिखित बिन्दुओं के मध्य बाँट कर देखा जा सकता है.

1. कार्यों का सीमित दायरा – संस्था द्वारा मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अन्तर्गत दिये गये सभी अधिकारों के हनन के मामलों की जांच करने के स्थान पर उन्हीं मानव अधिकार हनन के मामलों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है जिनमें कि किसी व्यक्ति को या तो राजनीतिक रूप से बन्दी बनाकर रखा गया हो या फिर कैदी के रूप में रखते हुए उसके साथ अमानवीय एवं क्रूर व्यवहार किया जा रहा हो ।

2. कैदियों के व्यक्तिगत मामलों पर केन्द्रित – संस्था की प्रभावशीलता का प्रमुख कारण यह है कि यह मानव अधिकार हनन के व्यक्तिगत मामलों की जांच पूर्ण कर उसके लिए जिम्मेवार व्यक्ति या संस्था को इसकी सूचना देकर पीड़ित व्यक्ति को राहत दिलाने के लिए कार्य करती है। इस हेतु संस्था द्वारा 15–15 सदस्यों के समूह इस क्षेत्र में कार्य करते हैं, जो व्यक्तिगत रूप से बन्दीगृहों में जाकर वहां की भौतिक एवं अन्य सुविधाओं की जानकारी प्राप्त कर बन्दियों के अधिकारों के हनन के मामलों की जांच के आधार पर सरकार के विरूद्ध न्यायालयों में अपील दर्ज कराकर या जनमत के माध्यम से बन्दियों के अधिकारों का संरक्षण करते हैं। संस्था द्वारा जनमत तैयार करने एवं सरकार या अन्य ऐसी ही बड़ी संस्थाओं के विरूद्ध भी कार्य करने के कारण लोगों की संस्था के प्रति विश्वसनीयता बढ़ती जा रही है

3. विश्वसनीय तथ्यों के आधार पर जांच कार्यों की शुरूआत – संस्था द्वारा जांच कार्यों की शुरूआत विश्वसनीय तथा स्वयं की शोध समूहों की रिपोर्टों पर की जाती है। संस्था द्वारा तथ्यों की विश्वसनीयता को अधिक महत्व दिया जाता है, जिसको बढ़ावा देने के लिए संस्था द्वारा 1972 में लन्दन में एक शोध विभाग की स्थापना मानव अधिकार हनन के मामलों में वास्तविक तथ्यों की खोज करने के लिए की गई। इस विभाग को पांच भौगोलिक भागों में विभाजित किया गया है जिसे अफ्रीका, अमेरिका, एशिया, यूरोप तथा मध्य पूर्व भागों में

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

बांटा जाता है जो कि अपने—अपने क्षेत्रों में मानव अधिकार हनन के मामलों की जांच के शोध कार्यों पर नियंत्रण के माध्यम से विश्वसनीय तथ्यों की खोज करती है। इन विश्वसनीय तथ्यों को आधार बनाकर ही संस्था सम्बन्धित राष्ट्रों की सरकारों को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयों एवं देशीय न्यायालयों के माध्यम से बन्दियों के अधिकारों के संरक्षण में सहायता प्रदान करती है ।

4. सदस्यों की प्रतिभागिता को महत्व— संस्था की मान्यता है कि वर्तमान में मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए केवल सरकारों को ही उत्तरदायी नहीं माना जाना चाहिए बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्तर पर मानव अधिकारों के संरक्षण में भूमिका निभानी चाहिए। इस बात का ध्यान रखते हुए ही संस्था द्वारा निरन्तर अपनी सदस्य संख्या में बढ़ोत्तरी की जा रही है। संस्था का प्रमुख उद्देश्य है कि वह विश्व के सभी व्यक्तियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाकर सरकारों एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं पर उनकी निर्भरता में कमी लायी जाये।

5. सरकारों के प्रति नैतिक प्रतिबद्धता—ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल द्वारा न तो किसी राजनीतिक व्यवस्था और सरकार का विरोध किया जाता है और न ही किसी राजनीतिक व्यवस्था और सरकार का समर्थन किया जाता है। संस्था द्वारा उन सरकारी या राजनीतिक संगठनों के कार्यों का विरोध किया जाता है जो कि मानव अधिकारों का उल्लंघन करते हैं। संस्था मानव अधिकार संरक्षण में सहायता प्रदान करने वाली सरकारी एवं राजनीतिक संस्थाओं, नीतियों, कानूनों एवं विधियों आदि को समर्थन प्रदान करती है अर्थात् संस्था किसी एक राजनीतिक विचारधारा एवं सरकारी व्यवस्था से सम्बन्धित न होकर मानव अधिकारों के प्रति लोगों में जागृति उत्पन्न करने का कार्य करती है।

6. कार्यों में निष्पक्षता — संस्था द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यों में निष्पक्षता पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। संस्था कार्यों का प्रति माह चयन किया जाता है जो कि विभिन्न राजनीतिक धार्मिक विचारधाराओं में विश्वास रखते हैं और उनसे सम्बन्धित जांच अपने जांच समूहों के माध्यम से कराकर उनसे सम्बन्धित जानकारी संक्षिप्त में संस्था द्वारा प्रकाशित न्यूज लैटर में प्रकाशित की जाती हैए जिससे विभिन्न देशों के बन्दियों के अधिकारों की स्थिति को दर्शाते हुए उनके अधिकारों के संरक्षण कार्यों में संतुलन बनाये रखा जाता है।

7. नीति बनाने तथा वित्तीय साधनों की स्वतंत्रता— ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल स्वतंत्र रूप में कार्य करने वाली संस्था है। जिस पर किसी राज्य या राज्यों के समूहों, राजनीतिक विचारधारा धार्मिक समूहों एवं विशेष समूहों का कोई प्रभाव नहीं होता है। संस्था द्वारा अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिए संगठन के कुछ नियम बनाये गये हैं। जैसे कि कोई सदस्य जो कि किसी सरकार या राजनीतिक दल में उच्च पद के लिए अयोग्य माना जाता है। वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी कमेटी द्वारा लिए जाने वाले निर्णय में शामिल नहीं नहीं किया जायेगा जिसका सम्बन्ध उसके राष्ट्र से हो। इसी प्रकार किसी भी सदस्य को अपने देश में ही शोध कार्यों की अनुमति प्रदान नहीं की जायेगी ।

वित्तीय सहायता के माध्यम से संस्था के कार्यों को प्रभावित होने से बचाने के लिए संस्था द्वारा दान प्राप्त करने के लिए अपने नियम बनाये गये हैं और कोई भी वित्तीय सहायता इन नियमों के विरूद्ध प्राप्त नहीं की जाती है। संस्था द्वारा कोई भी ऐसा उपहार प्रदान नहीं किया जायेगा जो कि सांविधिक नियमों के विरूद्ध हो। संस्था प्रतिवर्ष अपना वार्षिक वित्तीय विवरण तैयार कर जनता के समक्ष प्रस्तुत करती है जो कि संस्था के कार्यों की परिदर्शिता का सूचक है ।

8. अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वता के प्रति प्रतिबद्धता — संस्था द्वारा अपने पहले ही दिन से मानव अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों के प्रति प्रतिबद्धता जाहिर की गई है। संस्था किसी विशेष राजनीतिक एवं भौगोलिक क्षेत्रों में मानव अधिकारों के हनन से सम्बन्धित न होकर विश्व के सभी क्षेत्रों में कार्य करती है। इसकी मान्यता है कि मानव अधिकार हनन किसी विशेष राजनीतिक व्यवस्था, धार्मिक परिप्रेक्ष्य एवं भौगोलिक स्थिति विशेष से सम्बन्धित है बल्कि इनका मानना है कि मानव अधिकारों का उल्लंघन किसी भी परिस्थिति में होना सम्भव है। संस्था मानव अधिकारों की संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टरए सार्वभौमिक घोषणाए अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार बिल आदि में पूर्ण आस्था रखती है।

5.5 एमनेस्टी इण्टरनेशनल का संगठन

ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल संगठन की सदस्यता स्वैच्छिक सदस्यता होती है। कोई भी व्यक्ति जो समाज सेवा

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

से जुड़ना चाहता है वह इस संगठन की सदस्यता प्राप्त कर सकता है। संगठन के अन्तर्गत सेक्शन, सम्बद्ध समूह एवं व्यक्तिगत सदस्य होते हैं। संस्था के सैक्शन से तात्पर्य किसी देश में स्थापित संस्था के कार्यालय से होता है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी कमेटी की स्वीकृति से स्थापित किया जा सकता है ।

अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी कमेटी द्वारा सैक्शन को निम्नलिखित आधारों पर ही मान्यता प्राप्त की जाती है–

1. ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल की कार्यकारी गतिविधियों को पूर्ण करने में सक्षम हो ।
2. इसके अन्तर्गत कम से कम दो समूह दो जिनमें 20 सदस्य हों
3. इसके द्वारा संविधि को अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद् के पास स्वीकृत करने के लिए भेजना अनिवार्य होता है ।
4. अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् द्वारा निश्चित की हुई फीस का भुगतान समय–समय पर करते रहना।
5. इन सेक्शनों का पंजीकरण अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद् के निर्णय पर किया जाता है

5.6 सम्बद्ध समूह

सम्बद्ध समूह की मान्यता के लिए समूह में पांच सदस्यों का होना अनिवार्य होता है। अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् द्वारा निश्चित की हुई राशि का भुगतान करने पर ही समूह को संस्था की मान्यता प्राप्त होती है। सम्बद्ध समूहों से सम्बन्धित मामलों पर विवादों का निपटारा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद् द्वारा किया जता है। समूह को केवल उन्हीं कार्यों को करने की अनुमति होती है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय द्वारा सौंपे जाते हैं ।

5.7 व्यक्तिगत सदस्यता

किसी भी सदस्य को व्यक्तिगत सदस्यता केवल उसी स्थिति में प्रदान की जाती है जबकि उस देश में संस्था का सम्बन्धित कोई सेक्शन कार्यरत नहीं होता है। व्यक्तिगत सदस्यता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद् की पूर्वानुमति पर अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय को निश्चित राशि जमा करानी होती है। परन्तु जिन देशों में सेक्शन कार्यरत होते हैं उन देशों के व्यक्तियों को व्यक्तिगत सदस्यता प्राप्त करने के लिए सैक्शन से पूर्वानुमति प्रदान करनी होती है ।

ऐमनेस्टी इण्टनेशनल संगठन के अन्तर्गत तीन अंग प्रमुख होते हैं.

1. अन्तर्राष्ट्रीय परिषद्
2. अन्तर्राष्ट्रीय कमेटी
3. अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय

5.8 अन्तर्राष्ट्रीय परिषद्

अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद् के सदस्य एवं विभिन्न देशों में कार्यरत सैक्शन के प्रतिनिधि होते हैं जिसमें प्रत्येक सैक्शन को कम से कम एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होता है। परन्तु सैक्शन के सदस्यों की संख्या के आधार पर एक से अधिक प्रतिनिधि भी हो सकते हैं। इनका आधार निम्नलिखित प्रकार से होता है–

10–49 सदस्यों के समूह पर 1 प्रतिनिधि

50–99 सदस्यों के समूह पर 2 प्रतिनिधि

100–199 सदस्यों के समूह पर 3 प्रतिनिधि

200–399 सदस्यों के समूह पर 4 प्रतिनिधि

400 एवं इससे अधिक सदस्यों के समूह पर 5 प्रतिनिधि

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की बैठक 2 वर्ष में एक बार होनी अनिवार्य है, जो अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद् द्वारा निश्चित दिनांक एवं स्थान पर होती है। परिषद् द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों पर सैक्शन के प्रतिनिधियों को ही मतदान का अधिकार होता है। परिषद् की (कोरम की पूर्ति) गणपूर्ति के लिए सैक्शन के प्रतिनिधियों के एक चौथाई प्रतिनिधियों का उपस्थित होना अनिवार्य होता है।

5.9 परिषद् के कार्य

1. ऐमनेसटी इण्टरनेशनल द्वारा 6 वर्ष के लिए तैयार की जाने वाली एकीकृत अन्तर्राष्ट्रीय रणनीति पर ध्यान केन्द्रित करना ।
2. ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल के लक्ष्य, उद्देश्य एवं मूल्यों का निर्धारण करना ।
3. शासन के लिए व्यवस्था करना तथा विभिन्न अंगों की स्थापना के लिए व्यवस्था करना। इनके अंगों के सदस्यों का निर्वाचन करना तथा उन्हें उनके कार्यों के लिए जवाबदेही बनाना ।
4. इसके द्वारा निश्चित की गई स्ट्रैटेजी के क्रियान्वयन का परीक्षण करना ।
5. सेक्शन, संरचनाओं एवं अन्य अंगों की जवाबदेहिता निश्चित करना ।

5.10 अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी कमेटी

अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी कमेटी के अन्तर्गत कुल 9 सदस्य होते हैं। जिनमें से एक ट्रेजरार, अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय का एक प्रतिनिधि एवं 7 नियमित सदस्य होते हैं। 7 सदस्य या तो ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल का व्यक्तिगत सदस्य का सैक्शन या प्रतिनिधि या सम्बद्ध समूहों के सदस्यों में से होते है। नियमित सदस्यों तथा ट्रेजरार का चुनाव अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् द्वारा किया जाता है। एक सेक्शन समूह में से एक से अधिक व्यक्ति को नियमित सदस्य के रूप में नहीं चुना जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय के स्टॉफ में से चुने गए प्रतिनिधि के अतिरिक्त अन्य सदस्यों का कार्यकाल 2 वर्ष का होता है। कमेटी के अध्यक्ष के रूप में सदस्यों में से किसी एक को एक वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है। कमेटी की मीटिंग के लिए 5 सदस्यों का कोरम पूरा करना अनिवार्य होता है ।

5.11 अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी कमेटी के कार्य

1. ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल की अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, सदस्यों एवं विभिन्न अंगों के लिए नेतृत्व प्रदान करना कमेटी का प्रमुख कार्य होता है।
2. ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल के लिए अन्तर्राष्ट्रीय निर्णय लेना।
3. एक सक्षम वित्तीय नीति का निर्धारण करना जो कि ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल के अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक हो ।
4. मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों के क्रियानवयन को सुनिश्चित करना।

5.12 ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल का अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय

ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल के दैनिक कार्यों के संचालन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय का गठन किया गया है। जिसका प्रमुख महासचिव कहलाता है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी कमेटी के दिशा–निर्देशन में कार्य करता है। इसका मुख्यालय लन्दन में बनाया गया है। महासचिव के अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति महासचिव द्वारा की जाती है। महासचिव का पद खाली होने की स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारी कमेटी का अध्यक्ष उसके सदस्यों की सहमति पर महासचिव के रूप में कार्य करता है ।

5.13 सचिवालय के कार्य

ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल के सचिवीय कार्यों को पूर्ण करने का प्रमुख दायित्व सचिवालय का होता है। ऐसे क्षेत्रों में शोध कार्य कराती है। जहां पर मानव अधिकारों के हनन के अधिक मामले सामने आते हैं संस्था द्वारा विभिन्न देशों में भेजे जाने वाले कर्मचारियों की नियुक्ति सचिवालय द्वारा की जाती है ।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

5.14 ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल की कार्यप्रणाली

संस्था द्वारा मानव अधिकार हनन के मामलों की जांच तीन बातों स्वतंत्रता, सार्वभौमिकता तथा निष्पक्षता को ध्यान में रखकर की जाती है। इसके लिए जांच समूहों के सदस्यों में उसी ही देश के किसी को समूह में नहीं रखा जाता है। जिसके पीछे निष्पक्ष जांच करने का संस्था का उद्देश्य होता है। जांच समूहों की रिपोर्ट के आधार पर संस्था द्वारा उस देश की सरकार पर दबाव डाला जाता है और मानव अधिकार संरक्षण के लिए प्रयासों को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सरकार के साथ–साथ संस्था विभिन्न देशों की जनता में जागरूकता लाकर उसे अपने अधिकारों के लिए लड़ना सिखाती है। मानव अधिकार हनन के मामलों को सुलझाने के लिए संस्था द्वारा जनता के माध्यम से सरकारों पर दबाव बनाया जाता है। संस्था के कार्यों को देखते हुए संस्था को संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् में परामर्शदात्री संस्था का स्तर दिया गया है। इसी के साथ संस्था यूनेस्को, यूरोपीय परिषद, अमेरिकी मानव अधिकार आयोग एवं अफ्रीकी संघ संगठन आदि की सहायक संस्था के रूप में कार्य करती है।

सन् 2002 में ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल के पास 468 मामले आये जो कि 83 देशों से सम्बन्धित थे। इनका सम्बन्ध यातनाओं, गुमशुदाओं, मृत्युदण्ड, हिरासत में मौंते आदि से सम्बन्धित थे।

5.15 पी0यू0सी0एल0

पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज एवं डेमोक्रेटिक राइट्स की स्थापना श्री जय प्रकाश नारायण द्वारा 1976 जनता को उसके प्रजातांत्रिक अधिकारों को प्रदान करने के लिए की गई। इस संगठन को बनाये रखने के पीछे उद्देश्य था कि सभी राजनीतिक दल मानव अधिकार एवं नागरिक स्वतंत्रताओं के लिए एक स्तर पर कार्य करें। प्रारम्भ में इस संस्था में सामान्य सदस्यता के लिए प्रावधान नहीं किये गये थे।

संगठन को प्रभावी बनाने, सदस्यता के प्रावधान करने और संविधान निर्माण के लिए नवम्बर 1980 में एक सम्मेलन का आयोजन नई दिल्ली में किया गया। सम्मेलन में संस्था की सदस्यता के लिए प्रावधान निश्चित किये गये जिसमें कहा गया है कि किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्धित व्यक्ति को संस्था में कोई उच्च पद पर नहीं रखा जायेगा। किसी भी दशा में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर की कार्यकारी कमेटियों के सदस्यों में 50 प्रतिशत से अधिक सदस्य राजनीतिक दलों से नहीं होंगे। इसी के साथ इन कमेटियों में सदस्य संख्या का 10 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति एक ही राजनीतिक दल से नहीं होंगे। इस सम्मेलन में संस्था का प्रथम संवैधानिक अध्यक्ष श्री वी0एम0 तारकुण्डे को तथा श्री अरूण शौरी को महासचिव नियुक्त किया गया। संस्था द्वारा किये जाने वाले कार्यों के लिए किसी भी बाहरी एजेन्सी से वित्तीय सहायता नहीं ली जाती है। यह संस्था अपने सदस्यों से सदस्यता शुल्क के माध्यम से ही वित्तीय साधन एकत्रित करती है

देश के विभिन्न क्षेत्रों में मानव अधिकार संरक्षण एवं प्रजातांत्रिक अधिकार दिलाने के लिए कार्य करने हेतु संस्था की राज्य एवं स्थानीय स्तरों पर यूनिटों की स्थापना की गई है। जिसके अन्तर्गत दिल्ली में प्रो० रजनी कोठारी की अध्यक्षता में, बम्बई यूनिटों की स्थापना एच0 एम0 सीरवी0 बिहार यूनिट की स्थापना राधा रमन द्वारा मध्य प्रदेश यूनिट की स्थापना, भवानी प्रसाद मिश्रा की अध्यक्षता में, उत्तर प्रदेश की यूनिट लक्ष्मीकांत की अध्यक्षता, गुजरात यूनिट न्यायाधीश श्री सकल चन्द सेठ की अध्यक्षता में स्थापित की गई। इनके अलावा उड़ीसा, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, जम्मू कश्मीर, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान आदि में भी संस्था की यूनिट स्थापित की जा चुकी है।

संस्था द्वारा प्रतिमाह पी0एस0सी0एल0 नामक बुलेटिन प्रकाशित किया जाता है जो कि मानव अधिकार एवं नागरिक स्वतंत्रताओं से सम्बन्धित है। संस्था द्वारा प्रतिवर्ष 23 मार्च को जे0पी0 मेमोरियल व्याख्यान आयोजित किया जाता है जिसमें मानव अधिकारों पत्रकारिता के क्षेत्र में पुरस्कार दिया जाता है। पुरस्कार में 20 हजार रूपये की राशि दी जाती है ।

5.16 पी0यू0सी0एल0 के कार्य

संस्था द्वारा राज्य इकाईयों के माध्यम से देश के विभिन्न हिस्सों में मानव अधिकार हनन से सम्बन्धित मामलों की जांच कराकर सरकार को एवं मानव अधिकार को सूचित कर जनता के मानव अधिकारों की सुरक्षा का कार्य करती है। संस्था द्वारा विशेषतः बन्दियों के लिए नये जेल मैनुअल्स एवं बन्दी कानूनों के निर्माण में

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

सहायता प्रदान की जाती है। पी0यू0सी0एल0 की राजस्थान इकाई द्वारा अजमेर के दरगाह क्षेत्र में हुए दंगों की जांच कराकर उससे सम्बन्धित रिपोर्ट सरकार एवं राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को प्रस्तुत कीए जिस पर कार्यवाही करते हुए राज्य सरकार को कारण बताओ नोटिस जारी किया। इसी प्रकार अजमेर जिले के किशनगढ़ कस्बे में हुए साम्प्रदायिक झगड़े की जांच पीण् यूण्सीण्एल इकाई द्वारा कराई गयी। जिसमें पाया गया कि साम्प्रदायिक झगड़े का कारण आपसी लड़ाई थी। इस प्रकार संस्था द्वारा देश में मानव अधिकारों के हनन के मामलों की जांच कराने एवं साम्प्रदायिक झगड़ों की वास्तविकता को जनता के सामने उजागर करने का कार्य किया जाता है।

5.17 पी0यू0डी0आर0

पब्लिक यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राईट की स्थापना 1980 में जनता में लोकतांत्रिक अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए की गई। इससे पहले इसे पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज एण्ड डेमोक्रेटिक राइटए दिल्ली इकाई के नाम से जाना जाता था जिसकी स्थापना आपातकाल के समय की गई थी। इसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य शामिल थे। जिसमें विशेषतः जनता पार्टी के लोग थे जो कि श्री जय प्रकाश नारायण की अध्यक्षता में कार्य करने के लिए एकत्रित हुए थे। आपातकाल की समाप्ति पर तथा जनता पार्टी के शासनकाल में इस इकाई की उपयोगिता नहीं होने के कारण इसे समाप्त करने के लिए कहा गया। इसकी राष्ट्रीय इकाई को समाप्त कर दिया गया परन्तु दिल्ली इकाई के साथ–साथ अन्य क्षेत्रीय इकाईयां अभी कार्य कर रही हैं। इन्हीं इकाईयों को पी0यू0डी0आर0 के नाम से जाना जाता है। इस संस्था का प्रमुख कार्य जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा करना है। यह संस्था जनता में लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति जागृति लाने हेतु समय–समय पर सम्मेलन, वर्कशॉप, सेमीनार, लेख प्रतियोगिता, वाद–विवाद प्रतियोगिता आदि के माध्यम से जनता में लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रचार–प्रसार करती है।

5.18 एशिया वॉच

मानव अधिकार वॉच (हयूमन राइट्स वॉच) की स्थापना 1978 में हैलसिंकी वॉच के रूप में की गई थी जिसका प्रारम्भिक उद्देश्य हैलसिंकी एकार्डस के द्वारा निश्चित किये गये मानव अधिकारों का उल्लंघन सोवियत संघ के राज्यों द्वारा तो नहीं किया जा रहा है, की जांच करना था। इसी दिशा में 1980 में अमेरिकी वॉच की स्थापना अमेरिका में मानव अधिकारों के हनन की जांच के लिए की गई। इसी आधार पर अन्य देशों में मानव अधिकारों की निगरानी के लिए एशिया वॉच की स्थापना 1985 में की गई। लेकिन 1988 में मानव अधिकार वॉच के अन्तर्गत सभी क्षेत्रीय इकाईयों को सम्मिलित कर लिया गया।

वर्तमान में मानव अधिकार वॉच लगभग 70 देशों में कार्यरत है जिसका मुख्यालय न्यूयार्क में है मुख्यालय के साथ.साथ ब्रेसेल्सए लन्दनए मॉस्कोए हांगकांगए लांसएंजेल्स, सैन्फ्रांसिस्को एवं वाशिंगटन में भी इसके कार्यालय हैं। इसी के साथ अन्य क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थापित हुए हैं। इसका मुख्य कार्य महिला अधिकारोंए बाल अधिकारों, कैदियों के अधिकारों, शरणार्थियों के अधिकारों, अल्पसंख्यकों के अधिकारों आदि के अधिकारों के संरक्षण से सम्बन्धित जांच करने का है। इसके द्वारा सैनिक बल एवं पुलिस आदि सरकारी एजेन्सियों द्वारा मानव अधिकारों के हनन के मामलों पर निगरानी रखी जाती है ।

मानव अधिकार वॉच इस बात में विश्वास करती है कि अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार स्तरों को भी सभी देशों के सभी लोगों को प्रदान कराया जाना चाहिए। 21वीं शताब्दी में होने वाले मानव अधिकारों के हनन पर नियंत्रण रखने के लिए अनिवार्य है कि तीखी निगरानी रखी जाये और सही समय पर मानव को उसके प्रति जागरूक किया जाना चाहिए अर्थात् सही समय पर मनुष्यों को संगठित एवं जागृत किया जा सकेगा तभी विकास की संकल्पना करना उचित होगा। बच्चों को सैनिकों के रूप में नियुक्ति करने से सम्बन्धित सन्धि के लिए संस्था द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय पर दबाव डाला गया और संधि को स्वीकृति प्रदान की गई है। जिसके अन्तर्गत व्यवस्था की गई है कि किसी भी व्यक्ति को जो कि 18 वर्ष से कम का है। उसे सैनिक के रूप में नियुक्त नहीं किया जायेगा। इस प्रकार विश्व के लगभग 3,00,000 बच्चों को सैनिक ज्यादतियों से बचाना संभव हो गया है। संस्था द्वारा भूमिगत खदानों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अभियान के माध्यम संधि की गई। जिसके लिए संस्था को वर्ष 1997 का नोबल शांति पुरस्कार दिया गया है। विश्व इतिहास में भूमिगत खदान प्रतिबन्ध संधि एक ऐसी संधि है जिसे सबसे कम समय में सबसे अधिक राष्ट्रों द्वारा स्वीकार किया गया है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

एशिया वॉच के द्वारा भारत के जम्मू–कश्मीर, पंजाब, बिहार, गुजरात, असम, तमिलनाडू आदि राज्यों में समय–समय पर मानव अधिकार हनन के मामलों के समाचारों के माध्यम से प्राप्त जानकारी के आधार पर निगरानी रखी जाती रही है। संस्था द्वारा राज्य एवं केन्द्र सरकारों पर मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रावधान करने हेतु दबाव डाला जाता रहा है। एशिया वॉच के कार्य भारत के अतिरिक्त अन्य एशियाई देशों में मानव अधिकार हनन के मामलों पर निगरानी रखने का है। संस्था भारत के जम्मू–कश्मीर, पाकिस्तान, तिब्बत, श्रीलंका में लिट्टे, बांग्लादेश आदि में आतंककारी गतिविधियों के माध्यम से मानव अधिकार हनन के मामलों पर निगरानी रखने का कार्य करती है। संस्था इन देशों की केन्द्रीय सरकारों पर विश्व संस्थाओं के माध्यम से मानव अधिकार संरक्षण के लिए दबाव डालने का कार्य करती है

5.19 मानव अधिकार संवर्धन में गैर–सरकारी संगठनों की भूमिकाः

देश के राज्यों में मानवाधिकारों की स्थिति अच्छी नहीं है जिसको सुधारने में गैर–सरकारी संगठनों द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही है। परन्तु अभी भी इन के कार्यों को पूर्णतः सन्तुष्टिदायक नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार गैर सरकारी संगठन द्वारा निभाई जा रही भूमिका को निम्नलिखित बिन्दुओं में बांट कर देखा जा सकता है –

1. जागरूकता लाने के रूप में– राज्य ही नहीं बल्कि देश व विश्व में गैर–सरकारी संगठनों द्वारा जनता में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता लाने के लिए विशेष रूप से कार्य किये जा रहे हैं। गैर–सरकारी सगठनों की शुरूआत ही इस रूप में हुई थी देश में स्वतंत्रता आन्दोलन के समय भी एक स्वैच्छिक संगठन की स्थापना जनता के राष्ट्रीय हित के संरक्षण के लिए की गई थी। जिसने बाद में राष्ट्रीय कांग्रेस दल का रूप ले लिया। इसी प्रकार देश में व राज्य में गैर–सरकारी संगठनों का शुरूआती समय जनता को उसके अधिकारों की जानकारी देने व उनके लिए मांग करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करने तक सीमित था। इसका कारण यह था कि उस समय तक इन संगठनों के पास विकास के कार्य करने के लिए वित्त की व्यवस्था नहीं होती थी परन्तु ये संगठन सरकार से अपने अधिकारों के संरक्षण के लिए जनता के साथ होते हैं। ग्रामीण जनता में अधिकारों के प्रति जागरूकता लाने के लिए जनता के साथ होते हैं। ग्रामीण जनता में अधिकारों के प्रति जागरूकता लाने के लिए इन संगठनों द्वारा नुक्कड़ नाटकों के आयोजनए स्थानीय भाषा के गीत तैयार कर कॉमिक्स किताबों, पोस्टर प्रतियोगिताओं, वाद–विवाद प्रतियोगिता आदि का आयोजन कर ग्रामीण जनता में जागरूकता लाने के प्रयास किये जाते हैं। इस क्षेत्र में सभी संगठनों द्वारा समय–समय पर इस प्रकार के आयोजन किये जाते हैं। जिनमें कुछ संगठनों जैसे एस0डब्ल्यू0आर0सी0 तिलौनिया, उरमूल सेतु लूणकरसर, आदि द्वारा नाटकों के लिए स्थायी मंच बना रखे हैं तथा इनके अपने खुद के प्रकाशन निकलते हैं। इसका उदाहरण चिपको आन्दोलन के रूप में देखा जा सकता है। जिसमें ग्रामीणों द्वारा पेड़ों को काटते समय पेड़ों से चिपक कर उनके काटने का विरोध किया गया। जिसमें बहुत से लोगों की जानें गईं परन्तु अन्त में सरकार को अपनी परियोजना को रोकना पड़ा। इसी प्रकार राजस्थान के उदयपुर जिले की आस्था संस्था द्वारा आदिवासी ग्रामीणों के अधिकारों के लिए उन्हें संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस संस्था द्वारा इस क्षेत्र के लोगों के गिरवी रखें जेवरों को मुक्त कराने में, तेंदू पत्ते से बीड़ी बनाने की मजदूरी दर को बढ़ाने में, सीमेन्ट फैक्ट्री लगाने से होने वाले नुकसान को ध्यान में रखते हुए फैक्ट्री लगाने का विरोध करने आदि कार्यों में सहायता प्रदान कर उन्हें अपने अधिकारों की सुरक्षा में योगदान दिया गया ।

2. मानवाधिकार मानक निश्चित करने में– गैर–सरकारी संगठनों द्वारा एक अन्य भूमिका अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय व राज्य सभी स्तरों पर मानवाधिकारों के मानक स्तर निश्चित करने में निभाई जाती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार आयोग द्वारा भी मानक निश्चित करते समय विश्व स्तर के गैर–सरकारी संगठन जैसे ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल, रेडक्रास, अमेरिकन वॉच एशिया वॉच, आदि से विचार विमर्श किया जाता है। इसी प्रकार मानवाधिकार के मामलों पर राज्य मानवाधिकार आयोग द्वारा भी राज्य में कार्यरत गैर–सरकारी संगठनों की सहायता की जाती है। बाल शिक्षा को अनिवार्य करने व शिक्षा के नये तरीकों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए बीकानेर जिले में कार्यरत संस्था उरमूल ट्रस्ट से सरकार द्वारा समय–समय पर विचार–विमर्श किया जाता है। इसी संस्था के सहयोग से राज्य में लोक जुम्बिश परियोजना व शिक्षा कर्मी योजनाओं का संचालन किया जा रहा है ।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

3. मॉनीटरिंग करने के रूप में– गैर–सरकारी संगठनों की एक महत्वपूर्ण भूमिका निश्चित किये गये मानकों के लागू करने वाली मॉनीटरिंग करने की एक संस्था के रूप भी निभाई जाती हैं। इन संगठनों के माध्यम से ही राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोगों द्वारा निरीक्षण का कार्य कराया जाता है। राज्य के अजमेर जिले में कार्यरत पी0यू0सी0एल0 इकाई द्वारा बाहर के दरगाह क्षेत्र में भड़के सम्प्रदायिक दंगों की जांच कर रिपोर्ट राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को प्रस्तुत की गई जिसमें आयोग द्वारा सरकार एवं अन्य सम्बन्धित संगठनों को कारण बताओ नोटिस जारी किये गये।

4. मानवाधिकार मानकों को लागू कराने में– गैर–सरकारी संगठन राज्य/देश में अन्तर्राष्ट्रीय/ राष्ट्रीय स्तर पर निश्चित किये गये मानकों को लागू करने के लिए दबाव समूहों के रूप में कार्य करते है। ये संगठन सरकारी मशीनरी पर न्यायालयों व अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को रिपोर्ट कर अपने यहां इन मानकों को लागू करने के लिए दबाव डालते हैं ।

5. मानवाधिकार सम्बन्धित कानून बनाने के लिए दबाव समूहों के रूप में– गैर–सरकारी संगठनों द्वारा सरकार को मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए नये–नये कानून बनाने के लिए दबाव डाला जाता है। इसका अच्छा उदाहरण राज्य में कार्यरत किसान मजदूर शक्ति संगठन अधिकार के लिए किया गया आन्दोलन को देखा जा सकता है। जिसको मानते हुए राज्य सरकार द्वारा सूचना के अधिकार अधिनियम को पारित कर 26 जनवरी 2000 से लागू करना पड़ा ।

6. स्थानीय संगठनों के निर्माण में सहायता–गैर–सरकारी संगठनों द्वारा मानवाधिकार संरक्षण हेतु स्थानीय स्तर के संगठनों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है। इन संगठनों द्वारा स्थानीय सतर पर कार्यरत संगठनों को सभी प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है। जिसमें इन संगठनों द्वारा समय–समय पर सही सूचना प्रदान करना व अन्य सामाजिक दबाव के माध्यम से मानवाधिकार संगठनों के नियमों के पालन के लिए जनता को मजबूर किया जाता है। राज्य के अजमेर जिले की मदनगंज तहसील के गांव तिलौनिया में कार्यरत गैर–सरकारी संगठन एस0डब्ल्यू0आर0सी0 द्वारा विभिन्न स्थानों पर इस प्रकार के संगठनों का संचालन किया जा रहा है जो कि देश की जनता के जीवन स्तर को उठाने में सहायक हैं ।

7. मध्यस्थता की भूमिका– गैर–सरकारी संगठनों द्वारा जनता व सरकार के मध्य मध्यस्थता की भूमिका निभाई जाती है। एक ओर ये संगठन जनता की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को सरकार तक पहुंचाते हैं तथा उन्हें पूरा करने के लिए सरकार के प्रयासों में सहायता प्रदान करते हैं। वहीं दूसरी तरफ वह सरकारों द्वारा लिए गए निर्णयों की जानकारी ग्रामीण जनता तक पहुंचाते हैं तथा जनता को उन नीतियों व निर्णयों के पालन के लिए प्रोत्साहित करते हैं ।

गैर–सरकारी संगठन एवं मानव अधिकार संरक्षण (भारतीय परिप्रेक्ष्य)– भारत में 1800–1850 का काल समाज सुधार के कार्यों का समय माना जाता है जबकि क्रिश्चियन मिशनरियों द्वारा कार्य करना आरम्भ किया गया था। इस समय में ब्रिटिश सरकार द्वारा मिशनरियों के कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। परन्तु सन 1813 के अधिनियम द्वारा इन सभी प्रतिबन्धों को खत्म कर दिया गया जिससे ये मिशनरी शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में कार्य करने लगी तथा परिणामस्वरूप लोगों का इन मिशनरियों पर विश्वास बढ़ने लगा।

इस प्रकार इन धार्मिक सामाजिक संगठनों द्वारा जन्म लिंग के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव के विरूद्ध आवाज उठाई गई जिसके अन्तर्गत 1815 में राजाराम मोहन राय द्वारा आत्मीय सभा की स्थापना 1829 में ब्रह्म समाज व 1840 में ध्यान प्रकाश सभा की स्थापना आदि को माना जा सकता है। इन समाओं के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में सुधार किए गए। जैसे महिला शिक्षा को बढ़ावा देना, छुआछूत को मिटाना, कार्य के प्रति लगाव बढ़ाना व महिलाओं व निम्न जातियों पर किए जाने वाले अत्याचारों को दूर करने का बीड़ा इन संगठनों द्वारा उठाया गया। इसी क्रम में अगले कदम के रूप में 1875 में आर्य समाज, 1897 में इण्डियन नेशनल रिफार्म एसोसिएशन की स्थापना की गई। इसी समय में कुछ राजनीतिक संगठनों की स्थापना की गई। उदाहरणार्थ महाराष्ट्र में पूणे सार्वजनिक सभा व कलकत्ता में ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन आदि। इसी समय में 1860 में सोसायटी रजिस्ट्रेशन अधिनियम लागू किया गया। कर्मचारियों के अपने एसोसिएशन की स्थापना भी इस समय में की गई। जिनके अन्तर्गत बॉम्बे मिल मजदूर संघ प्रमुख था। सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र में नेशनल कांग्रेस जैसे संगठनों की स्थापना भी की गई इन सामाजिक राजनीतिक संगठनों का प्रारम्भिक उददेश्य राष्ट्रीय भावना का प्रसार करना एवं स्वयं सहायता आदि था। 1922 से 1928 के मध्य गांधी का राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रभाव रहा,

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

जिसके कारण खादी एवं ग्रामोद्योगों को बढ़ावा दिया गया। यही वह समय था, जबकि स्वैच्छिक संगठनों द्वारा सामाजिक आर्थिक रूप से जनता को विकसित करने हेतु प्रयास आरम्भ किए गए।

स्वतंत्रता के तुरन्त बाद ग्रामीण क्षेत्र की हस्तकला के पुनर्निर्माण एवं पुनः स्थापना हेतु प्रयासों के साथ–साथ शिक्षा स्वास्थ्य एवं समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए प्रयास किए जाने लगे। बाढ़, अकाल एवं अन्य प्राकृतिक विपदाओं के समय बहुत से गैर–सरकारी संगठनों द्वारा सहायता प्रदान करने, पुर्नस्थापन, कल्याण एवं सुधार के कार्य किए गए। 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में इन संगठनों द्वारा सहायता एवं सुधार सम्बन्धित कार्यों पर विशेषतः ध्यान दिया जाने लगा। इस समय में गैर–सरकारी संगठनों द्वारा शिक्षाए स्वास्थ्य, कृषि एवं सामुदायिक विकास आदि के क्षेत्र में कार्य किया जाने लगा। बॉम्बे में एस0एन0डी0टी0 व डी0टी0 एवं टी0आई0एस0एस0 जैसे उच्च शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई। जिनमें युवा लोगों को समाज कल्याण से सम्बन्धित कार्यो हेतु प्रशिक्षण दिया जाने लगा। स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका के परीक्षण को निम्न चार चरणें में बांट कर देखा जा सकता है ।

1. नियोजित विकास के प्रारम्भिक चरण में सामुदायिक विकास एवं भूमि सुधार कार्यक्रमों के माध्यम से जनता की विकास में सहभागिता का काल ।
2. क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों जैसे गहन कृषि जिला परियोजना, सूखा प्रभावित क्षेत्र परियोजनाए जनजातीय विकास कार्यक्रम आदि का काल ।
3. तकनीकी विकास का काल ।
4. विशेष लक्षित समूहों के विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों का काल ।

इन सभी कार्यक्रमों में परियोजना निर्माण एवं उनके क्रियान्वयन में जनता की सम्पूर्ण सहभागिता प्राप्त नहीं हो पायी। सहभागिता बढ़ाने हेतु सरकार द्वारा विभिन्न समूहों को प्रभावित करने वाले कई कार्यक्रम चलाये गये, परन्तु यह महसूस किया गया कि बिना जनता के सहयोग से सरकार अकेले विकास के कार्यों को पूर्ण करने में सक्षम नहीं है। इसलिए स्वतंत्रता के बाद से ही स्वैच्छिक संगठनों को ग्रामीण विकास हेतु प्रोत्साहित करने की तरफ सरकार का ध्यान रहा है ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत स्वैच्छिक संगठनों को सार्वजनिक सेवा संगठन के रूप में परिभाषित किया गया। इसी समय में इन संगठनों को संगठनात्मक रूप देने एवं सहयोग प्राप्त करने हेतु नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक कॉर्पोरेशन की स्थापना की गई। इस संस्था की स्थापना के पीछे प्रमुख उद्देश्य गैर–सरकारी संगठनों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने, उनके कार्यों को सहायता प्रदान करने तथा सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठनों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का। तृतीय पंचवर्षीय योजना में गैर.सरकारी संगठन प्रतिनिधियों द्वारा ऑल इण्डियन कोआपरेटिव यूनियन, ऑल इण्डियन वूमैन्स कॉन्फ्रेन्स, भारत लघु समाज, भारत स्काउट एण्ड गाईड, भारत सेवक समाज, सेन्ट्रल सोशल वेलफेयर बोर्ड, हरिजन सेवक संघ, नेशनल कैडेट कोर्स, रेड क्रॉस सोसाइटी आदि को सम्मिलित कर लिया गया जो कि सभी वर्तमान में भारत में सामाजिक आर्थिक विकास के क्षेत्र में प्रभावशाली रूप से कार्यरत है ।

भारत में गैर–सरकारी संगठनों की संख्या एवं गुणवत्ता में वृद्धि मुख्यतः 1979 के बाद ही आ पायी जब सरकार के विकास कार्यक्रम एवं नीतियां सफल नहीं हो पायीं। स्वैच्छिक संगठनों द्वारा अधिक जनता की सहभागिता प्राप्त करने हेतु विकास कार्यों को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित किया गया, जिसमें स्वास्थ्यए शिक्षा कृषि, निरक्षरता आदि प्रमुख हैं। इन कार्यों हेतु सहभागिता द्वारा लक्षित समूहों का चयन कर उनके लिए कार्य किये गए जिसके अन्तर्गत भूमिहीन, श्रमिकों, बन्धुआ मजदूरों, जनजातीय लोगों, छोटे किसानों, महिलाओं, दलितों आदि को लक्ष्य बनाया गया।

अस्सी के दशक में स्वैच्छिक संगठनों द्वारा ग्रामीण विकास के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवाएं देना प्रारम्भ कर दिया। अब इनका दायरा प्रशिक्षण देने, शोध कार्य करने, वैधानिक सहायता प्रदान करने, महिला विकास करने, पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धित कार्य, वन संरक्षण सम्बन्धी कार्य आदि तक विस्तृत हो गया। इसी के साथ आठवें दशक से विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, सेवानिवृत्त सरकारी सेवक आदि आदि इन संस्थाओं को अपनी सेवाएं प्रदान करने लगे हैं। जिससे गैर–सरकारी संगठनों के विकास को बल मिला है। पर्यावरण

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

संरक्षण से सम्बन्धित प्रमुख आन्दोलनों में चिपको आन्दोलन, उत्तराखण्ड सूचना के अधिकार हेतु आन्दोलन, केरल आदि प्रमुख हैं। इसी के साथ सूचना के अधिकार हेतु आन्दोलन, मानवाधिकारों की प्राप्ति हेतु प्रयास एवं महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण हेतु प्रयास भी गैर–सरकारी संगठनों द्वारा किए जाने लगे हैं।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में सर्वप्रथम गैर–सरकारी संगठनों को अपने स्वयं के कार्यक्रमों के निर्धारण एवं उन्हें पूरा करने हेतु कार्यप्रणाली के बारे में निर्णय लेने हेतु स्वतंत्रता दी गई। यही योजना थी जिसमें गैर–सरकारी संगठनों को ग्रामीण विकास में सहयोग हेतु सरकार द्वारा गम्भीर प्रयास किए गए तथा जिसके अन्तर्गत 150 करोड़ रूपये का प्रावधान गैर–सरकारी संगठनों को बढ़ावा देने हेतु किया गया। इसी के साथ राज्य स्तर पर एक फोरम बनाने का प्रावधान किया गया जो कि राज्य के सभी गैर–सरकारी संगठनों की सूची सरकारी दायित्वों के निर्वहन हेतु संक्षमता के आधार पर तैयार करे। परियोजना में वैचारिक समूहों की स्थापना ऐसी एजेन्सियों जिनके लिए सरकार सहायता प्रदान की जा रही है के कार्यों की निगरानी रखने एवं कोड ऑफ कन्डक्ट का प्रावधान भी किया गया ।

वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार के कार्यों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के गैर–सरकारी संगठन संचालित किए जा रहे हैं, जिससे गैर–सरकारी संगठनों की पहचान करना कठिन होता है परन्तु केन्द्र सरकार द्वारा सातवीं पंचवर्षीय योजना में निम्नलिखित सात कारकों का वर्णन किया है। जिनके आधार पर गैर–सरकारी संगठनों को पहचाना जा सकता है–

1. किसी एजेन्सी की वैधानिक पहचान हो ।
2. संस्था ग्रामीण क्षेत्र में कम से कम 3 वर्ष से कार्य कर रही हो ।
3. संस्था के उद्देश्य विस्तृत आधार वाले होने चाहिए जिसके अन्तर्गत जनता की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति सामूहिक रूप से हो सके। संगठन लाभ के उद्देश्य से कार्यरत नहीं होना चाहिए।
4. संस्था द्वारा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में आवश्यक लचीलापन, व्यवसायिक कुशलता एवं संगठनात्मक कार्य क्षमता होनी चाहिए ।
5. संस्था के कार्य देश की सम्पूर्ण जनता के लिए खुले होने चाहिए, जिनमें जाति, लिंग, भाषा एवं वेशभूषा आदि के आधार पर कोई अन्तर नहीं किया जाता हो ।
6. संस्था के पदाधिकारी किसी राजनीतिक पार्टी के निर्वाचित सदस्य नहीं होने चाहिए ।
7. संस्था द्वारा ग्रामीण विकास के संवैधानिक एवं अहिंसात्मक तरीकों को अपनाया जाना चाहिए।

स्वतंत्रता से पूर्व देश में कार्यरत स्वैच्छिक संगठनों को कोई सरकारी, विदेशी व दाता एजेन्सियों से वित्तीय सहायता प्राप्त नहीं होती थी। उस समय जनसहभागिता की भावना के माध्यम से ही ऐसे संगठनों के लिए धन इकट्ठा किया जाता था। उदाहरणस्वरूप 1920 में गांधी जी द्वारा तिलक स्वराज फण्ड हेतु एक आना प्रत्येक नागरिक के हिसाब से एक करोड़ रूपये एकत्रित किए। परन्तु स्वतंत्रता के बाद इस प्रकार की सामुदायिक वित्तीय सहायता की कमी देखने को मिलती है तथा गैर–सरकारी संगठन अब सरकारी एजेन्सी /विदेशी दाता एजेन्सियों पर अधिक निर्भर रहने लगे हैं। 1980 में कुदाल आयोग की स्थापना वित्त के उपयोग का परीक्षण करने हेतु की गई थी जिसे 1986 में समाप्त कर दिया गया। 1988 में स्थापित कृष्णास्वामी आयोग द्वारा गैर–सरकारी संगठनों को दी जाने वाली सहायता से सम्बन्धित कई सिफारिशें भी की परन्तु इन्हें लागू नहीं किया जा सका।

वर्तमान समय में देश में गैर–सरकारी संगठनों की संख्या काफी अधिक है जो कि पिछले 10–15 वर्षों में अधिक तेजी से बढ़ी है। इसके पीछे कई कारण रहे हैं जिनमें जनता में जागरूकता आना, गरीबी में वृद्धि, सरकारी मशीनरी का कमजोर होना, लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास होना तथा अधिक से अधिक वित्तीय सहायता प्राप्त होना प्रमुख है। अधिक वित्तीय सहायता प्राप्त होने के पीछे प्रमुख कारण भारतीय आयकर अधिनियम 1977 की धारा 35 सी सी व 35 सीसीए में परिवर्तन किया जाना है जिसके माध्यम से ऐसे धन को जो कि सीधे व अन्य किसी एजेन्सी के माध्यम से ग्रामीण विकास के कार्यों में लगाया जाता है उसे आयकर से मुक्त रखा गया है।

भारत में मानवाधिकारों के लिए बहुत से गैर–सरकारी संगठन कार्य कर रहे हैं जिनमें से कुछ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के हैं जैसे रेड क्रास, ऐमनेस्टी, इण्टरनेशनल एशिया वॉच आदि। इनमें से एमनेस्टी इण्टरनेशनल द्वारा भारत

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

के जम्मू–कश्मीर, पंजाब, आसाम एवं आन्ध प्रदेश आदि राज्यों में प्रमुख रूप से राजनीतिक बन्दियों के अधिकारों के लिए कार्य किया गया है। रेड क्रास द्वारा समय–समय पर आने वाली राष्ट्रीय विपदाओं के वक्त पीड़ित लोगों की रक्षा एवं उन्हें भोजन कपड़े रहने आदि की व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। जबकि एशिया वॉच देश में सम्पूर्ण मानवाधिकारों की स्थिति से सम्बन्धित अध्ययन कर सरकार को उचित सुझाव एवं सिफारिशें देती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के संगठनों के साथ–साथ राष्ट्रीय स्तर के बहुत से गैर–सरकारी संगठन भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

1. आन्ध प्रदेश सिविल लिबर्टीज कमेटी ।
2. एशोसिएशन फॉर दी प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट मुम्बई।
3. सिटीजन्स कमेटी फॉर सिविल लिबर्टीज एण्ड डेमोक्रेटिक राइट मुम्बई ।
4. सिटीजन्स कमेटी फॉर सिविल लिबर्टीज एण्ड डेमोक्रेटिक राइट गोवा।
5. लोक अधिकार संगठन गुजरात।
6. पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट दिल्ली।
7. कमेटी फॉर डेमोक्रेटिक राईट नई दिल्ली।
8. कर्नाटक सिविल लिबर्टीज कमेटी–बैंगलौर।
9. ऑर्गनाइजिंग कमेटी फॉर डेमोक्रेटिक राईट त्रिचूर।
10. पीपुल्स युनियन फॉर सिविल लिबर्टी (राष्ट्रीय) दिल्ली।
11. ऑल इण्डियन फेडरेशन ऑर्गेनाइजेशन फॉर डेमोक्रेटिक राईट।
12. इण्डियन पीपुल्स हयूमन राईट् कमेटी मुम्बई।

5.20 सुझाव

राज्य में गैर–सरकारी संगठनों द्वारा मानवाधिकार संरक्षण के क्षेत्र में किये जा रहे कार्यों की समीक्षा की जाये तो सपष्ट होता है कि उनके इन कार्यों को दो भागों में बाटा जा सकता है।

1. मानवाधिकार संरक्षण मशीनरी के रूप में– इस रूप में गैर–सरकारी संगठन मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए स्वयं प्रयास करते हैं और सरकारी मानवाधिकार व्यवस्था को सूचना प्रदान करए कानूनों को लागू कराने के लिए दबाव डालकर, मध्यस्थता की भूमिका निभाते हैं, परन्तु संरक्षण व्यवस्था के प्रभावी व अप्रभावी होने की बात तो तब आती है जबकि राज्य की जनता इतनी जागरूक हो कि वह अपने सभी मानवाधिकारों की जानकारी रखती हो और उनके हनन होने पर उनके प्राप्त करने के लिए प्रयास करती हो। राज्य की स्थिति से स्पष्ट होता है कि जहां की जनता आज भी अपने अधिकारों के प्रति इतनी जागरूक नहीं है जितनी कि अन्य विकासशील देशों की जनता होती है। आज भी राज्य की आधी से अधिक जनता से सरकारी कानूनों के बारे में जानने की अपेक्षा करना तो निरर्थक है ही, साथ ही उनसे अपने अधिकारों के हनन के समय उनके संरक्षण के तरीकों के बारे में जानने की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती हैं। इसी स्थिति में गैर–सरकारी संगठनों को अपना ध्यान मानवाधिकारों के संरक्षण की मशीनरियों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए किये जा रहे प्रयासों के साथ–साथ दूसरे अधिक महत्वपूर्ण पहलू मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता पर अधिक देने की आवश्यकता है।

2. मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता लाने के हेतु प्रोत्साहक के रूप में– गैर–सरकारी संगठनों द्वारा राज्य ही नहीं बल्कि देश व विश्व में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता लाने के क्षेत्र में बहुत ही सराहनीय कार्य किये जा रहे हैं। राज्य की जनता के शिक्षा स्तर एवं परम्परागत कुरीतियों के प्रचलन के साथ.साथ आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह और भी अनिवार्य हो जाता है कि यहां पर कार्यरत गैर–सरकारी संगठनों को अपने उद्देश्यों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूता कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जाये।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

5.21 सारांश

उपर्युक्त स्थिति से निपटने के लिए अनिवार्य हो जाता है कि राज्य सरकार द्वारा भी मानवाधिकार संरक्षण के क्षेत्र में कार्य करने वाले गैर–.सरकारी संगठनों को प्रोत्साहित किया जाये। इसके लिए इन संगठनों द्वारा उठाये जाने वाले मामलों को सरकार द्वारा गम्भीरता से लिया जाना चाहिए। संगठनों को भी चाहिए कि वह अपनी केवल लोकप्रियता के लिए ही सरकार की उचित कार्यवाहियों का विरोध न करें कि जिससे जनता का विश्वास संगठनों पर बना रहे। सरकार को चाहिए कि वह इन गैर–सरकारी संगठनों की सहायता से राज्य के विभिन्न हिस्सों में मानवाधिकारों की स्थिति की जांच समय–समय पर कराती रहे और समस्याओं से निपटने के लिए गैर–सरकारी संगठनों के साथ विचार–विमर्श किया जाए तो शायद अधिक कारगर उपाय निकाल पाना सम्भव हो सकेगा। जनता का ध्यान रखना चाहिए तथा जनता की इच्छाओं की उपेक्षा सरकार द्वारा नहीं की जानी चाहिए और गैर–सरकारी संगठनों पर भी एक उचित माध्यम से पर्यवेक्षण किय जाने की व्यवस्था करनी चाहिए ।

5.22 बोध प्रश्न

1. गैर–सरकारी संगठन व संयुक्त राष्ट्र संघ का आपस में क्या सम्बन्ध है?
2. मानव अधिकार क्षेत्र में कार्यरत प्रमुख गैर.सरकारी संगठन के बारे में क्या जानते हैं?
3. एमनेस्टी इण्टरनेशनल क्या है?
4, एमनेस्टी इण्टरनेशनल की कार्यप्रणाली बतायें।
5. पी0यू0सी0एल0 के बारे में बतायें।
6. एशिया वॉच से क्या समझते हैं?
7. मानव अधिकार संवर्धन में गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका का वर्णन करें।

5.23 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. देखें भाग 2.2
2. देखें भाग 2.3
3. देखें भाग 2.5
4. देखें भाग 2.14
5. देखें भाग 2.15
6. देखें भाग 2.18
7. देखें भाग 2.19

5.24 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. नबी पब्लिकेशन 2012, एन0जी0ओ0 हैण्डबुक, नबी।
2. सूर्यामूर्थी, आर, एन.जी.ओ. इन इण्डिया, रावत पब्लिशर्स, जयपुर ।
3. वाजपेयी, अरुणोदय (2012) : समकालीन विश्व एवं भारत, डार्लिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा0लि0 दिल्ली।
4. डॉ0 शुक्ला, शशि (2009) : अर्न्तराष्ट्रोय संगठन, भारत प्रकाशन लखनऊ।
5. डॉ0 वीर, गौतम (2009) : अर्न्तराष्ट्रोय संगठन, विश्व भारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई–3 (क) प्रान्तीय स्तर पर (राज्य महिला आयोग एवं लोकायुक्त की भूमिका)

(क) राज्य महिला आयोग

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 राज्यों में महिला आयोग एवं उनके कार्य

5.4 महिला सशक्तिकरण के लिए आयोग द्वारा किये गये प्रयास

5.5 सारांश

5.6 बोध प्रश्न

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

इस अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी समझ सकेंगे कि–

- राज्य महिला आयोग की किस राज्य में सर्वप्रथम स्थापना हो पाई।
- कुछ राज्यों के आयोगों की संरचना व कार्यविधि से भी परिचित हो सकेंगे।
- साथ ही महिला सशक्तिकरण हेतु आयोग के प्रयासों को जान सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

प्रांतीय स्तर पर राज्य महिला आयोग का गठन महिलाओं से सम्बन्धित विशिष्ट समस्याओं की जांच करने के अलावा राज्य में महिलाओं से सम्बन्धित मुद्दों का अध्ययन करने के उददेश्य से किया गया। राज्य महिला आयोग महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने और परिवार तथा समुदाय में किसी भी प्रकार के उत्पीड़न और मुद्दों के खिलाफ उनकी सुरक्षा और बराबरी का अधिकार सुनिश्चित करने की शक्तियाँ धारित करता है।

भारत में राजस्थान में राज्य महिला आयोग की स्थापना के लिए राजस्थान सरकार द्वारा 23 अप्रैल 1999 को एक विधेयक राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किया गया। इस विधेयक के पारित होने पर दिनांक 15 मई 1999 को राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसार राजस्थान राज्य महिला आयोग का गठन किया गया। राज्य में महिला नीति 8 मार्च 2000 को जारी की गई। केरल के बाद राजस्थान ही देश का दूसरा राज्य है जिसमें राज्य महिला आयोग को अभियोजन करने का अधिकार प्राप्त है।

आयोग को महिलाओं के सम्बन्ध में विशिष्ट समस्याओं से सम्बन्धित किसी भी जांच के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त हैं।

यदि आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मामले में अनुचित व्यवहार किया गया है तो वह मामले में कार्यवाही करने की और अभियोजन प्रारंभ करने की सिफारिश कर सकता है।

आयोग की सिफारिशों की प्राप्ति की तारीख से तीन माह के भीतर राज्य सरकार उन्हें विनिश्चित करने व आयोग को उसकी सूचना देने के लिए प्रतिबद्ध है

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

5.3 राज्यों के महिला आयोग

i. राजस्थान राज्य महिला आयोग

- **राजस्थान राज्य महिला आयोग 1999 के अधिनियम की धारा 3 के अनुसार आयोग में निम्नानुसार सदस्य हैं।**
- **सदस्यों में से एक अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति की और एक अन्य पिछड़ी जाति की महिला होनी अनिवार्य है।**
- **अध्यक्ष–1 राज्य सरकार द्वारा 3 वर्ष के लिए मनोनीत किए जाते हैं।**
- **सदस्य 3**
- **सदस्य सचिव–1**

ii. मध्य प्रदेश राज्य महिला आयोग

राज्य महिला आयोग के गठन का उद्देश्य :–

1. **प्रदेश में महिलाओं को सशक्त बनाने, महिलाओं के हितों की देखभाल व उनका संरक्षण करने, महिलाओं के प्रति भेदभाव मूलक व्यवस्था, स्थिति और प्रावधानों को समाप्त करने हेतु पहल कर उनकी गरिमा व सम्मान सुनिश्चित करने, हर क्षेत्र में उन्हें विकास के समान अवसर दिलाने, महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों एवं अपराधों पर त्वरित कार्यवाही करने के लिए प्रदेश में राज्य महिला आयोग का गठन किया गया है।**
2. **राज्य महिला आयोग महिलाओं के मित्र, शिक्षक, शुभचिंतक और संकल्पशील परामर्शदाता के रूप में कार्यरत है। यह आयोग एक संवैधानिक निकाय है जिसे सिविल अदालत के अधिकार प्राप्त हैं। इस आयोग को सतर्क जांचकर्ता, परीक्षणकर्ता और प्रेक्षक की हैसियत प्राप्त है। आयोग ऐसा अधिकारपूर्ण निकाय है जिसकी सिफारिशों को सरकार अनदेखा नहीं कर सकती है।**
3. **यह आयोग का सदस्य है छः सदस्य अशासकीय व एक सदस्य शासकीय है। राज्य सरकार ने अशासकीय में से अध्यक्ष को मंत्री तथा अन्य सदस्यों को राज्यमंत्री का दर्जा दिया है। मध्यप्रदेश राज्य महिला आयोग का प्रथम गठन राज्य सरकार द्वारा दिनांक 23 मार्च 1998 को मध्यप्रदेश राज्य महिला आयोग अधिनियम 1935 (क्र0 20 सन 1996) की धारा 3 के तहत किया गया।**
4. **मध्य प्रदेश शासन महिला एवं बाल विकास विभाग मंत्रालय, वल्लभ भवन, भोपाल की अधिसूचना क्रमांक एफ 9–1/2016/50–1 भोपाल दिनांक 20 जनवरी 2016 मध्य प्रदेश राज्य महिला आयोग अधिनियम 1995 (क्रमांक 20 सन 1996) की धारा 3 की उपधारा (2) (क) सहपठित धारा 4 की उपधारा (4) के द्वारा प्रदत्त शक्तियों को प्रयोग में लाते हुए राज्य शासन एतद द्वारा मध्यप्रदेश राज्य महिला आयोग का छठवां गठन करते हुए अध्यक्ष पद पर श्रीमती लता वानखेड़े अध्यक्ष कैबिनेट मंत्री दर्जा, मध्यप्रदेश राज्य महिला आयोग नियुक्त किया गया है।**
5. **मध्यप्रदेश शासन महिला एवं बाल विकास विभाग मंत्रालय वल्लभ भवन भोपाल की अधिसूचना क्रमांक एफ–9–1/2016/50–1 भोपाल दिनांक 13 जुलाई 2016 मध्य प्रदेश राज्य महिला आयोग अधिनियम 1995 (क्रमांक 20 सन 1996) की धारा –3 की उपधारा (2)(क) सपठित धारा–4 की उपधारा (4) के द्वारा प्रदत शक्तियों को प्रयोग में लाते हुए राज्य शासन एतद् द्वारा मध्यप्रदेश राज्य महिला आयोग मैं सदस्य पद पर श्रीमती गंगा उईके, को नियुक्त किया गया है।**
6. **मध्यप्रदेश शासन महिला एवं बाल विकास विभाग मंत्रालय वल्लभ भवन भोपाल की अधिसूचना क्रमांक एफ 9–1/2016/50–1 भोपाल दिनांक 25 जनवरी 2017 मध्य प्रदेश राज्य महिला आयोग अधिनियम 1995 (क्रमांक 20 सन 1996) की धारा 3 की उपधारा (2) (क) सहपठित धारा 4 की उपधारा (4) के द्वारा प्रदत्त शक्तियों को प्रयोग में लाते हुए राज्य शासन द्वारा मध्यप्रदेश राज्य महिला आयोग में सदस्य पद पर नियुक्ति कर सकता है।**

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

iii. उत्तराखंड में महिला आयोग

उत्तराखंड महिला आयोग की तत्कालीन अध्यक्ष सरोजिनी कैंत्यूरा ने कहा कि महिलाओं की समस्याएं सुनने के लिए महिला आयोग हर जिले में खुली अदालत लगाएगी। इसी कड़ी में उधम सिंह नगर के मुख्यालय रुद्रपुर में बुधवार को खुली अदालत लगाई जाएगी।

उन्होंने बताया कि जिले से लेकर ग्रामसभा स्तर पर शिखा समितियों का गठन किया जाएगा। इन समितियों में आशा कार्यकत्री और ग्राम प्रधान शामिल होंगे। समितियां महिला उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, दहेज, उत्पीड़न, बाल विवाह, भ्रूण हत्या जैसे मामलों पर नजर रखेंगी।

समितियों को हर महीने महिला आयोग को रिपोर्ट देनी होगी। हर सीओ क्षेत्र में महिला हेल्पलाइन स्थापित की जा रही है। हर थाना में महिला उपनिरीक्षक की नियुक्ति अनिवार्य करने के लिए सरकार को निर्देश दिया गया है।

राज्य के सभी सरकारी और पब्लिक विद्यालयों में स्कूल खुलने पर प्रार्थना के समय छात्र–छात्राओं को स्कूल में पढ़ाने, लड़के–लड़कियों में भेदभाव नहीं करने, भ्रूण हत्या, बाल विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा का विरोध करने की शपथ दिलाई जाएगी।

उत्तराखण्ड महिला आयोग के कार्य

- **अधिनियम की धारा 11 में आयोग के कार्यों का विस्तृत उल्लेख किया गया है।**
- **महिलाओं के खिलाफ होने वाले किसी भी प्रकार के अनुचित व्यवहार की जांच कर, उस मामले में सरकार को सिफारिश करना।**
- **प्रवृत्ति विधियों का उनके परिवर्तन को महिलाओं के हित में प्रभावी बनाने के लिए कदम उठाना।**
- **राज्य लोक सेवाओं और राज्य लोक उपक्रमों में महिलाओं के विरुद्ध किसी भी भेदभाव को रोकना।**
- **महिलाओं की दशा में सुधार करने की दृष्टि से कदम उठाना आयोग की दृष्टि में यदि किसी भी लोकसेवक ने महिलाओं के हितों का संरक्षण करने में अत्यधिक उपेक्षा या उदासीनता बरती है, तो उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए सरकार से सिफारिश करना।**
- **महिलाओं से संबंधित विद्यमान कानूनों की समीक्षा करना तथा महिलाओं को समुचित न्याय मिले इस दृष्टि से कानून में आवश्यक संशोधन की सरकार से सिफारिश करना।**

iv. उत्तर प्रदेश राज्य महिला आयोग

उत्तर प्रदेश में महिलाओं के उत्पीड़न संबंधी शिकायतों के निस्तारण, महिलाओं के विकास की प्रक्रिया में सरकार को सलाह देने तथा उनके सशक्तिकरण हेतु आवश्यक कदम उठाने के उद्देश्य को लेकर 2002 में महिला आयोग का गठन किया गया था। वर्ष 2004 में आयोग के क्रियाकलापों को कानूनी आधार प्रदान करने के लिए उ0प्र0 राज्य महिला आयोग 2004 अस्तित्व में आया। तत्पश्चात पुनः जून 2007 में अधिनियम में कतिपय संशोधन कर आयोग का पुनर्गठन किया गया। अन्ततः दिनांक 26 अप्रैल 2013 को अधिनियम में पुनः आवश्यक संशोधन कर उत्तर प्रदेश राज्य महिला आयोग का गठन किया गया है।

आयोग का उद्देश्य–

- **महिलाओं के कल्याण, सुरक्षा, संरक्षण के अधिकारों की रक्षा करना।**
- **महिलाओं के शैक्षिक, आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए निरन्तर प्रयासरत रहना।**
- **महिलाओं को दिये गये संवैधानिक एवं विधिक अधिकारों से सम्बद्ध उपचारी उपायों के लिए अनुश्रवण के उपरान्त राज्य सरकार को सुझाव एवं संस्तुतियां प्रेषित करना।**
- **प्रासंगिक कानूनों के उल्लंघन या किसी भी अधिकार से महिलाओं को वंचित करने या अवसर से वंचित**

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

करने के मामले में समय पर हस्तक्षेप के माध्यम से लिंग आधारित मुददों को संभालना।

- आयोग द्वारा समय–समय पर राज्य में महिला आधारित कानून के बारे में जनता में जागरूकता पैदा करने के लिए कदम उठाना।

आयोग की भाक्तियाँ–

- किसी वाद का विचारण करने के लिए सिविल न्यायालय को प्राप्त शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार।
- सम्मन करना।
- दस्तावेज मंगाना।
- लोक अभिलेख प्राप्त करना।
- साक्ष्यों और अभिलेखों के परीक्षण के लिए कमीशन जारी करना आदि।

आयोग के कार्य :–

- महिलाओं के विरूद्ध किसी भी प्रकार की घरेलू हिंसा/उत्पीड़न सम्बन्धी समस्याओं पर समुचित कार्यवाही कराया जाना।
- कार्यस्थल पर महिलाओं के शोषण सम्बन्धी शिकायतों का संज्ञान लेते हुए त्वरित कार्यवाही किया जाना।
- महिलाओं से सम्बन्धित विषयों पर गोष्ठियों, सेमिनारों व अन्य लाभप्रद कार्यक्रमों का आयोजन कराया जाना।
- दहेज उत्पीड़न/दहेज हत्या, बलात्कार एवं यौन हिंसा से पीड़ित महिलाओं के सम्बन्ध में तत्काल विधिक कार्यवाही कराया जाना।
- घरेलू हिंसा, दहेज उत्पीड़न, यौन उत्पीड़न, एसिड अटैक तथा महिलाओं से सम्बन्धित अन्य कानूनों की जानकारी महिलाओं तक पहुँचाने हेतु जागरूकता अभियान का चलाया जाना।

आयोग की कार्यशैली :–

- महिलाओं की विभिन्न समस्याओं की सुनवाई हेतु आयोग कार्यालय में हस्ताक्षरित शिकायती प्रार्थना पत्र (पहचान पत्र व पूर्ण पते के साथ) दो प्रतियों में प्राप्त किये जायेंगे। जिसके साथ किसी प्रकार के शुल्क/कोर्ट फीस/स्टैम्प पेपर की आवश्यकता नहीं है।
- शिकायतों की सुनवाई आयोग में केवल सम्बन्धित पक्षों से ही की जायेगी। सुनवाई में प्रतिनिधि/अधिवक्ता की उपस्थिति मान्य नहीं है।
- पीड़ित महिलायें आयोग द्वारा संचालित टोल–फ्री (निःशुल्क) महिला हेल्प लाइन नम्बर 1800–180–5220 पर आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकती हैं।
- महिलायें अपनी शिकायतें स्वयं उपस्थित होकर, डाक द्वारा, फैक्स, ई–मेल अथवा व्हाट्सएप के माध्यम से दर्ज करा सकती हैं।

5.4 महिला सशक्तिकरण के लिए आयोग द्वारा किए गए प्रयास

- सीधा जनता से जुड़कर सुनवाई व जनसंवाद के माध्यम से सहायता करना।
- डाक द्वारा प्राप्त प्रतिवेदन जिलों में जनसुनवाई के माध्यम से निस्तारित करना।
- व्यक्तिगत सुनवाई

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

- समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचारों पर संज्ञान लेकर आवश्यक कार्यवाही करना।

5.5 सारांश

उपरोक्त कुछ राज्यों के महिला आयोगों का अध्ययन करने के बाद सारांश रूप में कह सकते हैं कि कुछ महिला आयोग महिलाओं के उत्थान हेतु अच्छा काम कर रहे हैं। यद्यपि दूसरी ओर महिलाओं के प्रति अत्याचार/अपराध की घटनाएं भी बढ़ती जा रही हैं। ऐसी परिस्थिति में त्वरित न्याय दिलाने हेतु राज्यों को 21वीं शताब्दी की प्रौद्योगिकी का सहारा लेने की आवश्यकता है। साथ ही नागरिकों को जागरूक करने हेतु सोशल मीडिया का भी प्रयोग किया जाना महत्वपूर्ण होगा।

5.6 बोध प्रश्न

1. कुछ राज्यों के महिला आयोग की संरचना को बतायें।
2. महिला सशक्तिकरण के लिए आयोग क्या प्रयास कर रहा है?

5.7 वस्तुनिश्ठ बोध प्रश्न

1. उत्तर प्रदेश राज्य महिला आयोग का कार्यालय कहाँ अवस्थित है।

   (a) इलाहाबाद (b) वाराणसी

   (c) लखनऊ (d) बाराबंकी

   उत्तर– c

2. उत्तर प्रदेश राज्य महिला आयोग का गठन किया जाता है–

   (a) केन्द्र सरकार द्वारा (b) राज्य सरकार के अधिनियम द्वारा

   (c) स्थानीय निकाय द्वारा (d) उपरोक्त सभी द्वारा

   उत्तर– b

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. राज्य महिला आयोग 1993 द महाराष्ट्र स्टेट कमीशन फॉर वुमन एक्ट, करेन्ट पब्लिकेशन, एमेजॉन एशिया–पेशिफिक होल्डिंग्स प्राइवेट लिमिटेड।
2. जैन, पुखराज, फाडिया बी0एल0 (1998), भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
3. मेल्लल्ली प्रवीन कुमार, 'भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार', सेज पब्लिकेशन इण्डिया प्रा0लि0, नई दिल्ली।
4. http://www.mahilaatig.up.gov.in/Aboutus.html

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

इकाई–3 (ख) लोकायुक्त की भूमिका

रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 लोकायुक्त संस्था का विकास

6.4 लोकायुक्त का ढांचा

6.5 लोकायुक्त की ताकत

6.6 कार्य

6.7 लोकायुक्त व भ्रष्टाचार

6.8 सारांश

6.9 बोध प्रश्न

6.10 वस्तुनिष्ठ बोध प्रश्न

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् विद्यार्थी जान सकेंगे कि–

- भ्रष्टाचार विरोधी संस्था का निर्माण किस तर्ज पर किया गया।
- लोकायुक्त संस्था का विकास कैसे व कब हुआ।
- लोकायुक्त का संगठनात्मक ढांचा, ताकत, कार्य क्या हैं।
- लोकायुक्त संस्था की भ्रष्टाचार कम करने में भूमिका बचा है।

6.2 प्रस्तावना

लोकायुक्त (लोक+आयुक्त) भारतीय राज्यों में एक भ्रष्टाचार–विरोधी संगठन है। इसका गठन स्कैंडिनेवियन देशों में प्रचलित 'अंबुडसमैन' सम्मान की तर्ज पर किया गया था। भारत में लोकायुक्त का नाम 1963 में मशहूर कानूनविद डॉ0 एम0एम0 सिंधवी ने दिया था। यद्यपि इसका प्रारंभिक श्रेय 1713 में किंगचार्ल्स–12 को जाता है। 1809 में स्वीडन के संविधान में ऑक्बुडसमैन फॉर जस्टिस' के रूप में प्रथम बार इस संस्था की व्यवस्था हुई जो लोकसेवकों द्वारा कानूनों तथा विनियमों के उल्लंघन के प्रकरणों की जांच करेगा। एक बार नियुक्त होने के बाद, लोकायुक्त को सरकार द्वारा खारिज स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है, और केवल राज्य विधानसभा द्वारा महाभियोग प्रस्ताव पारित करके हटाया जा सकता है।

लोकायुक्त, आयकर विभाग और भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो के साथ, मुख्य रूप से लोगों को राजनेताओं और सरकारी अधिकारियों के बीच भ्रष्टाचार को सार्वजनिक करने में मदद करता है। लोकायुक्त के कई कृत्यों के परिणामस्वरुप आरोप लगाने वालों के लिए आपराधिक या अन्य परिणाम हुए हैं।

6.3 लोकायुक्त संस्था का विकास

1971 में लोकायुक्त और उप–लोकायुक्त अधिनियम के माध्यम से लोकायुक्त की संस्था शुरू करने वाला महाराष्ट्र पहला राज्य था। इसके बाद ओडिशा, राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश,

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

गुजरात, केरल, तमिलनाडु और दिल्ली के केंद्र शासित प्रदेशों द्वारा इसी तरह के कृत्य किए गए।

महाराष्ट्र लोकायुक्त को शक्तियों, कर्मचारियों, निधियों और एक स्वतंत्र जांच एजेंसी की कमी के कारण सबसे कमजोर लोकायुक्त माना जाता है। दूसरी ओर कर्नाटक लोकायुक्त को देश का सबसे शक्तिशाली लोकायुक्त माना जाता है।

इस एक्ट की सबसे बड़ी खासियत यह है कि सीएम और उसके मंत्री भी इसके दायरे में होंगे। 2012 में उत्तराखंड में विजय बहुगुणा की सरकार ने अपने हिसाब से लोकायुक्त एक्ट पारित किया था, जिसमें सीएम को इसके दायरे से बाहर कर दिया गया था। मगर त्रिवेंद्र सरकार ने सीएम को उसके अधीन रखकर यह जाहिर करने का इरादा जताया है कि वह भ्रष्टाचार के खिलाफ वाकई में सख्त कदम उठाना चाहती है।

6.4 लोकायुक्त का ढांचा

- एक अध्यक्ष, जो उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश या न्यायाधीश है या रहा हो। या फिर कोई विख्यात व्यक्ति, जिसके पास भ्रष्टाचार विरोधी नीति, लोक प्रशासन, सतर्कता, वित्त, विधि और प्रबंधन से संबंधित विषयों में 25 साल से ज्यादा की विशेषज्ञता हो।
- अधिकतम चार सदस्य, जिसमें 50 प्रतिशत न्यायिक सदस्य होंगे मगर लोकायुक्त के सदस्यों में से न्यूनतम 50 प्रतिशत सदस्य एससी, एसटी, ओबीसी, अल्पसंख्यक वर्ग और महिला में से होंगे।

6.5 लोकायुक्त की ताकत

- किसी मामले में प्रारंभिक जांच या निरीक्षण कराने के लिए निर्देश दे सकता है।
- जांचकर्ता अधिकारी को लोकायुक्त की अनुमति बगैर ट्रांसफर करना संभव नहीं।
- किसी मामले में सरकारी वकीलों से इतर वकीलों का पैनल बना सकता है।
- जांच करते वक्त सिविल कोर्ट की सभी शक्तियां लोकायुक्त को प्राप्त होंगी।
- लोकायुक्त का कार्यकाल 8 वर्ष का होता है।

जम्मू और कश्मीर, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, पांडुचेरी—वेटिंग में राष्ट्रपति की मंजूरी, सिक्किम, तेलंगाना और त्रिपुरा में कोई लोकायुक्त नहीं है। तमिलनाडु में लोकायुक्त की स्थापना 9 जुलाई 2018 को हुई थी, अरूणाचल प्रदेश में विधानसभा ने एक लोकायुक्त बिल पारित किया था। 28 फरवरी 2019 को, मिजोरम विधानसभा ने एक लोकायुक्त विधेयक पारित किया।

6.6 कार्य

सार्वजनिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार पदीय दुरुपयोग एवं अकर्मण्यता से संबंधित परिवादों पर स्वतंत्र एवं निष्पक्ष अन्वेषणों के माध्यम से पीड़ित की व्यथा का निराकरण एवं आरोपी के विरुद्ध कार्रवाई की अनुशंसा करना है।

- अन्वेषणों में तत्परता एवं निष्पक्षता को बनाए रखना।
- अधिकार क्षेत्र में आने वाले संगठनों विभागों में जवाबदेही सुनिश्चित करना है।
- अपने कार्य के निष्पादन में निपुणता को बनाए रखना।
- जन—जन की समस्याओं से स्वयं को सम्बद्ध लक्ष्य के प्रति समर्पित रहना।

6.7 लोकायुक्त व भ्रष्टाचार

लोकायुक्त भ्रष्टाचार के मामले की जांच करता है, जहां कार्रवाई की सिफारिश की जाती है। यह भ्रष्टाचार पर एक महान जांच है, जो प्रणाली में पारदर्शिता लाता है, प्रशासनिक मशीनरी को नागरिक के अनुकूल बनाता है।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

उनके कार्य काफी हद तक निहित अधिकार क्षेत्र पर निर्भर करते हैं और नागरिकों की शिकायतों का तुरंत, निपुणता से और तेजी से सरल, अनौपचारिक तंत्र से रहित तकनीकी के माध्यम से संज्ञान लेने के लिए प्रदान की जाने वाली सुविधाएं प्रयुक्त कर निर्धारित लक्ष्य को पूरा करते हैं।

भ्रष्टाचार को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक बड़ी समस्या माना जाता है, जो समाज की स्थिरता और सुरक्षा को खतरे में डालने में सक्षम है, जो सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक विकास को खतरे में डालता है और लोकतंत्र और नैतिकता के मूल्यों को कम करता है। इसके परिणाम स्वरूप आनुपातिक रूप से सार्वजनिक धन निजी हाथों में जा रहा है, जिससे रिश्वत लेने वालों के संवर्धन में मदद मिली है। अंतिम परिणाम, जैसा कि पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने कहा है, केवल 15 पैसे, रुपए में से आबादी के सबसे निचले स्तर पर पहुंच जाते हैं। भ्रष्टाचार, अक्षमता, देरी लोगों की शिकायतों के प्रति संवेदनशीलता को राष्ट्र को घेरने वाली प्रमुख समस्याओं की पहचान की जा सकती है। नागरिक कड़वेपन को महसूस करते हैं जो उन्हें निर्णय निर्माताओं से अलग करता है। यह दूरी, उन्हें परित्यक्त या अस्वीकृत होने का एहसास कराती है और वे अन्ततः सार्वजनिक मामलों में रुचि खो देते हैं और हाशिए पर चले जाते हैं। भ्रष्टाचार का मतलब केवल रिश्वत लेना नहीं है। इसका उपयोग बहुत बड़े अर्थों में किया जाता है, "आचरण" जो नैतिक रूप से निराधार और दुर्लभ है। इसमें वह आचरण शामिल है जो दोष योग्य या अनुचित है (डॉ. एस. दत्त बनाम स्टेट ऑफ यूपी0 बनाम स्टेट ऑफ यूपी AIR 1966 SC 523 देखें), बी0 गुप्ता बनाम द किंग ILR (1949)2CAL 440)A भ्रष्टाचार और गैर–प्रशासन जुड़वां बहनों की तरह हैं जो प्रत्येक दूसरे के पूरक है। भ्रष्टाचार ने साम्राज्यों को बर्बाद कर दिया है। अपनी पुस्तक के पूरा होने के बाद, 'द डिक्लाइन ऑफ रोम एंपायर एडवर्ड गिब्बन, द ग्रेट हिस्टोरियन, राइटर और फिलॉसफर से एक शब्द में जवाब देने के लिए कहा गया कि रोमन साम्राज्य में गिरावट का कारण क्या है, उन्होंने टिप्पणी की "भ्रष्टाचार।" एक सभ्य समाज में भ्रष्टाचार का वर्णन "कैंसर जैसी बीमारी जिसका अगर समय पर पता नहीं लगाया जाता है तो विनाशकारी परिणामों के लिए अग्रणी देश की राजनीति को खराब करना निश्चित है।

"नौकरशाही के स्तर पर भ्रष्टाचार एक भूमिगत राक्षस की तरह संचालित होता है। राजनीतिक मालिकों के साथ सहयोग, घृणा और टकराव होता है। जनता ने लंबे समय से नागरिकों को विषयों के रूप में व्यवहार करने वाली 19वीं सदी की लोकतंत्र की कार्य संस्कृति के साथ कैरियरवाद का रास्ता दिया है।" आगाह किया, "लोगों के बीच, आम तौर पर भ्रष्ट, स्वतंत्रता लंबे समय तक नहीं रह सकती है"।

सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा कि एक शब्द समाज में भ्रष्टाचार कैंसर जैसी बीमारी है और अगर समय रहते इसका पता नहीं लगाया गया तो इससे देश की राजनीति में खौफ पैदा होगा। यह प्लेग की तरह है या संक्रामक है और नियंत्रित नहीं होने पर जंगल में आग की तरह फैलता है। इसके वायरस की तुलना एचआईवी से एड्स की तुलना में की जा रही है, जो लाइलाज है (देखें राज्य व अन्य राज्य बनाम रामसिंह (2000) 5 एससीसी 88, और आंध्र प्रदेश राज्य बनाम वी। वासुदेव राव 2003 (9) स्केल 959)। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार मानव अधिकारों का घोर उल्लंघन है। यह जन–विरोधी, विकास–विरोधी और राष्ट्र–विरोधी है। व्याप्त भ्रष्टाचार प्रमुख राष्ट्रीय दुर्भावना है। यह हमारे देश की प्रगति को प्रभावित करने वाला एकमात्र बड़ा कारक है, जो विकास पर खर्च की जा रही खगोलीय राशि के बावजूद लाखों लोगों को गरीबी रेखा से नीचे जीने के लिए जिम्मेदार है। या कचरा है जिसे हटाया जाना आवश्यक है अन्यथा यह देश के विकास को बाधित करेगा और देश का नाम खराब करेगा।

सुप्रीम कोर्ट ने लखनऊ विकास प्राधिकरण बनाम एम.के. गुप्ता (AIR 1994 SC 787) : के संदर्भ में निम्न टिप्पणी की है–

सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा एक आम आदमी का उत्पीड़न सामाजिक रुप से घृणित और कानूनी रूप से अक्षम है। यह व्यक्तिगत रूप से उसे नुकसान पहुंचा सकता है, लेकिन समाज के लिए चोट कहीं अधिक दुखदाई है। सार्वजनिक प्रतिरोध की कमी के कारण समाज में अपराध और भ्रष्टाचार पनपते हैं और समृद्धि होते हैं। असहायता की भावना से ज्यादा नुकसानदायक कुछ भी नहीं है। एक आम आदमी एक आम नागरिक शिकार करने के बजाय इसके खिलाफ खड़े होने के बजाय कार्यालयों में आवांछीय कामकाज के दबाव के कारण होता है.... ।

'एक ईमानदार आदमी भगवान का रईस है–पोप। 'जब पुरुष शुद्ध होते हैं, तो कानून बेकार होते हैं। जब पुरुष भ्रष्ट होते होते हैं तो कानून तोड़े जाते हैं– बेंजामिन डिजरायली। नागरिकों को एहसास है कि भारत को

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

गरीब देश रखने के लिए भ्रष्टाचार प्रमुख कारक है इसलिए समृद्धि की ओर मार्च में देरी हो रही है। एक नागरिक को जीवन के हर स्तर और हर क्षेत्र में व्यवहारिक रूप से भ्रष्टाचार का सामना करना पड़ता है। भ्रष्टाचार राष्ट्र विरोधी गरीब विरोधी, आर्थिक विरोधी, विकास और जीवन–विरोधी है। व्याप्त भ्रष्टाचार एक प्रमुख राष्ट्रीय दुर्भावना है। केंद्र सरकार के साथ–साथ राज्य सरकारें इसे मिटाने के लिए बेचैन हैं क्योंकि इस बात का एहसास है कि या प्रगति के रास्ते पर एक बड़ी बाधा है क्योंकि विशाल योजना से बाहर निकलकर बहुत लोगों के पास जाता है जिसका उत्थान आवश्यक है। समतावादी समाज की स्थापना में। इसके अलावा अन्य क्षेत्रों में भी विकास की गति को रोकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि भ्रष्टाचार को एक लोहे के हाथ से मिटा दिया जाए अन्यथा प्रगति और समृद्धि की ओर अग्रसर होने में काफी देरी होगी। जब देश में भ्रष्टाचार करने वाले व्यक्तियों की संख्या मुश्किल से दो प्रतिशत है, तो इसे मिटाया नहीं जा सकता।

इसके व्यापक अर्थ में भ्रष्टाचार में एक सार्वजनिक कार्यालय से जुड़ी शक्ति और प्रभाव का अनुचित और स्वार्थी अभ्यास शामिल है, जो विशेष स्थिति के कारण सार्वजनिक जीवन में व्याप्त है। भारत जैसे विकासशील देश इस समस्या का सामना करते हैं परिणामस्वरुप यह मेगा उद्योग की स्थिति को मानता है, जहां कुछ लोग सरकारी खजाने की लागत पर फलते फूलते हैं, जिसके परिणामस्वरुप राज्य की विकासात्मक गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है। भ्रष्टाचार के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन (2003) ने भ्रष्टाचार से निपटने के लिए सदस्य देशों द्वारा हस्ताक्षरित/पुष्टि की। महासचिव ने जोर देकर कहा कि भ्रष्टाचार विशेष रूप से विकासशील देशों में लोगों के सामाजिक–आर्थिक मानवाधिकारों का उल्लंघन करता है, क्योंकि सड़क, कुंओं, अस्पताल, स्कूलों और अन्य बुनियादी आवश्यकताओं के लिए निधियों को बंद कर दिया जाता है और विदेशों में विदेशों में सुरक्षित ठिकानों में जमा किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम महामहिम राष्ट्रपति, भारत के राष्ट्रपति डॉ एपीजे अब्दुल कलाम के सहयोग से सर्वोच्च न्यायालय अधिवक्ताओं, ऑन–रिकॉर्ड एसोसिएशन द्वारा आयोजित 'न्याय पर पहुंच' पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए डॉ0 अब्दुल कलाम ने कहा कि चौतरफा जागरूकता और स्वच्छ और भ्रष्टाचार मुक्त सार्वजनिक जीवन की मांग के साथ सार्वजनिक जीवन में प्रोबिटी का ज्वलंत मुद्दा तेजी से ध्यान में आ रहा है। सार्वजनिक जीवन में आचरण और व्यवहार बहुत करीबी जांच के तहत पहले की तरह नहीं है। यह आवश्यक है कि लोकतंत्र के तीन स्तंभ– विधानमंडल, न्यायपालिका और कार्यपालिका–संरचना में मजबूत शुद्ध रूप में और गैर भ्रष्ट और आचरण में दोषमुक्त हों। राष्ट्रपति ने स्पष्ट किया कि, "यदि हम भारत को भ्रष्टाचार मुक्त नहीं बना सकते हैं तो 2020 तक राष्ट्र को विकसित करने का सपना एक सपना ही रहेगा"।

नतीजतन, मौजूदा परिदृश्य, सार्वजनिक आक्रोश, पारदर्शिता इंटरनेशनल, अन्य गैर–सरकारी संगठनों और मीडिया द्वारा चेतावनी के संदर्भ में भ्रष्टाचार के खतरे और इसके साथ निपटने के लिए तत्काल आवश्यकता को समझते हुए सरकार कुछ अतीत के लिए कदम उठाकर इसे मिटाने का प्रयास कर रही है। स्वर्गीय श्री मोरारजी देसाई की अध्यक्षता वाले पहले प्रशासनिक सुधार आयोग ने प्रशासन, केंद्र और राज्यों के सभी क्षेत्रों में गिरावट के कारणों का अध्ययन किया और उपचारात्मक उपायों की सिफारिश की। अपनी रिपोर्ट (1966) में, अन्य बातों के अलावा केंद्र में लोकपाल की नियुक्ति और राज्य में लोकायुक्त की नियुक्ति की गई। दूसरा प्रशासनिक सुधार आयोग श्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में, प्रशासन में भ्रष्टाचार को खत्म कर और लोकपाल और लोकायुक्त के सुदृढ़ीकरण के लिए बड़े पैमाने पर जानबूझकर दो दिवसीय राष्ट्रीय बोलचाल में "शासन में नैतिकता : बयानबाजी से बढ़ते हुए परिणाम" सितंबर, 2006 Commission राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी, भोपाल में। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भ्रष्टाचार के बढ़ते संकट को समझा था और भविष्यवाणी की थी कि जनता भ्रष्ट आचरण को उजागर करने और उन लोगों को काम में लेने में सबसे आगे होगी जो इसमें शामिल थे। उन्होंने 1928 में यंग इंडिया में लिखा :

भ्रष्टाचार एक दिन बाहर हो जाएगा, हालांकि बहुत कुछ इसे छुपाने की कोशिश कर सकता है, और जनता अपने अधिकार और कर्तव्य के रूप में न्यायोचित संदेह के हर मामले में अपने नौकरों को सख्त खाते में बुला सकती है, उन्हें खारिज कर सकती है, उन पर मुकदमा कर सकती है, एक कानून अदालत या आचरण की जांच के लिए एक मध्यस्थ या निरीक्षक नियुक्त करता है जैसा कि यह पसंद करता है। "उन्होंने यह भी कहा" इस धरती पर, हर किसी की जरूरत के लिए पर्याप्त है लेकिन उनके लालच के लिए नहीं।

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

6.8 सारांश

आज भारत की गिनती भले ही बहुत तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था के तौर पर होती है लेकिन भ्रष्टाचार के मुद्दे पर हमें शर्मिंदगी महसूस करनी पड़ती है। इसने हमारी उपलब्धियों को सीमित कर दिया है। राष्ट्रहित व जनहित के कार्यों में लगाई जाने वाली संपत्ति भ्रष्टाचारियों द्वारा हड़प ली जाती है। यह अक्षम्य अपराध है। भ्रष्ट अधिकारियों ने प्रगति की राह रोकी है और जनता का भरोसा तोड़ा है।

प्रतिबद्धता लोकायुक्त शिकायत या स्वप्रेरणा के आधार पर प्रारंभ की गई जांच एवं निवेशक अन्वेषकों के माध्यम से लोक प्रशासन में स्वच्छता–निष्पक्षता एवं संवेदनशीलता हेतु प्रयासरत है। या लोक सेवा में समर्पण, वचनबद्धता, जवाबदेही, पारदर्शिता एवं उच्च गुणवत्ता हेतु प्रतिबंध है।

यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्राप्त शिकायतों की शीघ्र सत्यनिष्ठ, निष्पक्ष एवं न्यायपरक जांच होकर भ्रष्ट आचरण उजागर हो। शासकीय निर्णयों एवं प्रक्रियाओं में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाकर शुचिता का विकास हो और स्वच्छ शासन को पोषण व सम्बल मिल सके।

6.9 बोध प्रश्न

1. लोकायुक्त का विकास, ढांचा व कार्य बतायें।
2. लोकायुक्त व भ्रष्टाचार पर एक लेख लिखें।

6.10 वस्तुनिष्ठ बोध प्रश्न

1. भारत के किस राज्य में सर्वप्रथम लोकायुक्त की स्थापना की गई–

   (a) उत्तर प्रदेश (b) महाराष्ट्र

   (c) मध्य प्रदेश (d) गुजरात

   उत्तर– b

2. राज्यों में लोकायुक्त की नियुक्ति कौन करता है–

   (a) राज्यपाल (b) राष्ट्रपति

   (c) मुख्यमंत्री (d) लोकसभा अध्यक्ष

   उत्तर– a

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. दिव्या चौरसिया, 1999, लोकायुक्त इन इण्डिया, प्रतिभा प्रकाशन नई दिल्ली।
2. जैन, पुखराज, फाडिया बी0एल0 (1998), भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
3. मेल्लल्ली प्रवीन कुमार, 'भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार', सेज पब्लिकेशन इण्डिया प्रा0लि0, नई दिल्ली।
4. http://lokayukta.up.nic.in

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007

Notes

PEPE-158/PEPE-159/PEPE-007